हर जान को मौत का मज़ा चखना है।

अहकाम-ए-मय्यित

लेखक
डा० मुहम्मद अब्दुल हई साहिब सिद्दीक़ी आरिफी
(ख़लीफा : मौलाना अशरफ अली साहिब थानवी रह०)

मुसलमान की ज़िन्दगी के आख़िरी लम्हात से लेकर आलमे बर्ज़ख़ तक, तमाम मरहलों के मुताल्लिक़ नबी-ए-पाक की हदीसों और हनफी फ़िक़्ह के मासईल का निहायत ही तफ़सीली और तहक़ीक़ी मजमूआ

लेखक

डा० मुहम्मद अब्दुल हई साहिब सिद्दीक़ी आरिफी
(ख़लीफा : मौलाना अशरफ अली साहिब थानवी रह०)

समी पब्लिकेशन्ज़ प्रा० लि०

अहकाम-ए-मय्यित

लेखक : डा० मुहम्मद अब्दुल हई साहिब

हिन्दी अनुवाद : मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

ISBN 81-7231-671-2

प्रथम संस्करण : 2010

प्रकाशक :

समी पब्लिकेशन्ज़ प्रा० लि०

2872-74, कूचा चेलान, दरिया गंज, नई दिल्ली-110002 (भारत)

फोन: 011-23253514, 23286551, 23244556

फैक्स: 011-23277913, 23247899

E-mail: islamic@eth.net

Website: www.islamicindia.co.in

Our Associates

- Al-Munna Book Shop Ltd., **(U.A.E.)**
  (Sharjah) Tel.: 06-561-5483, 06-561-4650
  (Dubai) Tel.: 04-352-9294
- Azhar Academy Ltd., **London (United Kingdom)**
  Tel.: 020-8911-9797
- Lautan Lestari (Lestari Books), **Jakarta (Indonesia)**
  Tel.: 0062-21-35-23456
- Husami Book Depot, **Hyderabad (India)**
  Tel.: 040-6680-6285

Printed in India

بِسۡمِ اللّٰهِ الرَّحۡمٰنِ الرَّحِيۡمِ

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيۡنَ اٰمَنُوا اسۡتَعِيۡنُوۡا بِالصَّبۡرِ وَالصَّلٰوةِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ مَعَ الصّٰبِرِيۡنَ ۞ وَلَا تَقُوۡلُوۡا لِمَنۡ يُّقۡتَلُ فِىۡ سَبِيۡلِ اللّٰهِ اَمۡوَاتٌ ؕ بَلۡ اَحۡيَآءٌ وَّلٰـكِنۡ لَّا تَشۡعُرُوۡنَ ۞ وَلَنَبۡلُوَنَّكُمۡ بِشَىۡءٍ مِّنَ الۡخَـوۡفِ وَالۡجُـوۡعِ وَنَقۡصٍ مِّنَ الۡاَمۡوَالِ وَالۡاَنۡفُسِ وَالثَّمَرٰتِ ؕ وَبَشِّرِ الصّٰبِرِيۡنَ ۞ الَّذِيۡنَ اِذَآ اَصَابَتۡهُمۡ مُّصِيۡبَةٌ ۙ قَالُوۡٓا اِنَّا لِلّٰهِ وَاِنَّـآ اِلَيۡهِ رٰجِعُوۡنَ ۞ اُولٰٓـئِكَ عَلَيۡهِمۡ صَلَوٰتٌ مِّنۡ رَّبِّهِمۡ وَرَحۡمَةٌ وَاُولٰٓـئِكَ هُمُ الۡمُهۡتَدُوۡنَ ۞

शुरू करता हूँ अल्लाह के नाम से जो बड़े मेहरबान निहायत रहम वाले हैं।

ऐ ईमान वालो! सब्र और नमाज़ से सहारा हासिल करो, बेशक अल्लाह सब्र करने वालों के साथ (रहते) हैं। (और नमाज़ पढ़ने वालों के साथ तो और भी ज़्यादा) **(153)** और जो लोग अल्लाह की राह में क़त्ल किए जाते हैं उनके बारे में (यूँ भी) मत कहो कि वे (मामूली मुर्दों की तरह) मुर्दे हैं, बल्कि वे तो (एक ख़ास ज़िन्दगी के साथ) ज़िन्दा हैं, लेकिन तुम (इन हवास से उस ज़िन्दगी का) एहसास नहीं कर सकते। **(154)** और (देखो) हम तुम्हारा इम्तिहान करेंगे किसी क़द्र ख़ौफ़ से, और फ़ाक़े से, और माल और जान और फलों की कमी से, और आप ऐसे सब्र करने वालों को ख़ुशख़बरी सुना दीजिए **(155)** (जिनकी यह आदत है) कि उनपर जब कोई मुसीबत पड़ती है तो वे कहते हैं कि हम तो (मय माल व औलाद हक़ीक़त में) अल्लाह तआला ही की मिल्क हैं, और हम सब (दुनिया से) अल्लाह तआला के पास जाने वाले हैं। **(156)** उन लोगों पर (अलग-अलग) ख़ास-ख़ास रहमतें भी उनके रब की तरफ़ से होंगी, और (सब पर मुश्तरका) आ़म रहमत भी होगी, और यही लोग हैं जिनकी (असल हक़ीक़त तक) पहुँच हो गई। **(157)**

मुख़्तसर फ़ेहरिस्त

फ़ेहरिस्ते मज़ामीन

पहला बाब

बीमारी, इलाज और इयादत के मुताल्लिक़ हदीसें और दुआएं

दूसरा बाब

रूह निकलने के वक़्त की हालत, मौत के वक़्त मय्यित के साथ मामला और कफ़न दफ़न का सामान

तीसरा बाब

गुस्ल और कफ़न के मसाईल

चौथा बाब

नमाज़े जनाज़ा और दफ़न

पाँचवाँ बाब

शहीद के अहकाम मुख़्तलिफ़ क़िस्म के हादसों में हलाक होने वाले और बदन के मुतफ़र्रिक़ अंगों के गुस्ल व कफ़न और नमाज़े जनाज़ा के मसाईल

छठा बाब

मौत की इद्दत

सातवाँ बाब

तर्का और उसकी तक़सीम

आठवाँ बाब

बिद्अ़तें और ग़लत रस्में

क्र.स.	क्या?	कहाँ?

नवाँ बाब

मौत के बाद मोमिन के हालात

كل من عليها فان ويبقى وجه ربك ذو الجلال والإكرام

मौत का वक़्त मुक़र्रर है

اِذَا جَآءَ اَجَلُهُمْ لَا يَسْتَأْخِرُوْنَ سَاعَةً وَّلَا يَسْتَقْدِمُوْنَ

यानी जब मौत का वक़्त आता है तो न एक घड़ी पीछे होता है न ही एक घड़ी आगे।

चाहे कोई दौलत में क़ारून, तकब्बुर में फ़िरऔन, ज़ुल्म में ज़ह्हाक, सरकशी में नमरूद, ताक़त में रुस्तम, ख़ूबसूरती में यूसुफ़ अलैहिस्सलाम, सब्र में अय्यूब अलैहिस्सलाम, उम्र के लम्बा होने में नूह अलैहिस्सलाम, बहादुरी में मूसा अलैहिस्सलाम, ख़ामोशी में ज़करिया अलैहिस्सलाम, रोने में याक़ूब अलैहिस्सलाम, रज़ा-जोई में इब्राहीम अलैहिस्सलाम, हुकूमत में सुलैमान अलैहिस्सलाम, सदाक़त में अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु, अदल व सियासत में उमर रज़ियल्लाहु अन्हु, हयादारी में उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु, बहादुरी में अली रज़ियल्लाहु अन्हु, मुल्क गीरी में सिकन्दर, फ़साहत में सहबान, हिक्मत में लुक़मान, समझ व दानिश में अरस्तू, सख़ावत में हातिम, शायरी में फ़िरदौसी व अनवरी व सअदी, मौसीक़ी में तानसैन, ज़हानत में फ़ैज़ी, जहालत में अबू जहल, बदबख़्ती में यज़ीद, तसव्वुफ़ में बायज़ीद, नाज़ुक दिमाग़ी में तानाशाह, ख़ून बहाने में चंगेज़, फ़ल्सफ़ा-ए-इस्लाम में इमाम ग़ज़ाली रहमतुल्लाहि अलैहि, अवामी ख़ैरख़्वाही में शेर शाह सूरी, मुसव्विरी में मानी, दबदबे में जमशेद, अय्याशी में मुहम्मद शाह रंगीला, मर्तबे व इक़बाल में जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर, क़द के लम्बा होने में ओज बिन उनुक़, मोहसिन कुशी में रहीला, फ़िक़्ह में इमाम अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अलैहि, निशानेबाज़ी में बहराम गोर, हलाल कमाने में सुल्तान नासिरुद्दीन, आवाज़ के अच्छा होने में दाऊद अलैहिस्सलाम, निकाह ज़्यादा करने में वाजिद अली शाह, जिहाद में सुल्तान सलाहुद्दीन अय्यूबी, सैर व सियाहत में इब्ने बतूता, इरादे की पुख़्तगी में अलाउद्दीन ख़िल्जी, जंग व जिहाद में महमूद ग़ज़नवी, गुर्बत में यहया अलैहिस्सलाम, शहादत के रुतबे में इमाम हुसैन रज़ियल्लाहु अन्हु ही क्यों न हो। **लेकिन मौत से किसी को छुटकारा नहीं।**

(मख़्ज़ने अख़्लाक़ से लिया गया)

दुनिया

कल की उम्मीदवार है दुनिया
आ़लमे इन्तिज़ार है दुनिया

हस्रतों का मज़ार है दुनिया
कारवाँ का गुबार है दुनिया

उमर बर्क़ व शरार है दुनिया
कितनी बे एतिबार है दुनिया

दाग़ से कोई दिल नहीं ख़ाली
क्या कोई लालाज़ार है दुनिया

हर जगह जंग, हर जगह है निज़ा
अ़र्सा-ए-कारज़ार है दुनिया

गरचे ज़ाहिर में सूरते गुल है
हक़ीक़त में ख़ार है दुनिया

एक झोंके में है इधर से उधर
चार दिन की बहार है दुनिया

जीते जी हैं ग़रीब इसमें दफ़न
बेकसों का मज़ार है दुनिया

कोई राहत में कोई ज़हमत में
मज़हरे नूर व नार है दुनिया

रक़्स बिल्जबर है हर एक तितली
शोबदागर का तार है दुनिया

ज़िन्दंगी नाम रख दिया किसने
मौत का इन्तिज़ार है दुनिया

गुल व बुलबुल भी जिससे नाख़ुश हैं
वह फ़रेबे बहार है दुनिया

बेख़बर रखती है हक़ीक़त से
होश पर मेरे बार है दुनिया

(शायर नामालूम)

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम
नहमदुहू व नुसल्ली अला रसूलिहिल-करीम

पहला बाब

बीमारी, इलाज और इयादत के मुताल्लिक़ हदीसें और दुआएँ

हर बीमारी की दवा है

हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि हर बीमारी की दवा है, जब दवा बीमारी के मुवाफ़िक़ हो जाती है अल्लाह तआला के हुक्म से मरीज़ अच्छा हो जाता है। (मुस्लिम, मिश्कात)

अबू दाऊद शरीफ़ में हज़रत अबूदर्दा रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि जनाब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि बेशक अल्लाह तआला शानुहू ने बीमारी भी नाज़िल की और दवा भी उतारी, और हर बीमारी के लिये दवा भी पैदा की, इसलिये दावा करो लेकिन हराम चीज़ों से दवा मत करो। (ज़ादुल मआद)

इलाज का एहतिमाम और उसमें एहतियात

हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम बीमारी की हालत में खुद भी दवा का इस्तेमाल फ़रमाया करते और लोगों को इलाज करवाने की तलक़ीन भी फ़रमाते। इर्शाद फ़रमाया कि ऐ ख़ुदा के बन्दो! दवा किया करो, ख़ुदा ने हर बीमारी की शिफ़ा मुक़र्रर की है सिवाय एक बीमारी के, लोगों ने पूछा कि वह क्या है? आपने फ़रमाया- बहुत ज़्यादा बुढ़ापा।

(तिर्मिज़ी, ज़ादुल मआद)

हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम बीमार को माहिर तबीब से इलाज कराने का हुक्म फ़रमाते और परहेज़ करने का हुक्म देते। (ज़ादुल मआद)

हराम चीज़ों को बतौर दवा भी इस्तेमाल करने से मना फ़रमाते।

इरशाद फ़रमाते कि अल्लाह तआ़ला ने हराम चीज़ों में तुम्हारे लिये शिफ़ा नहीं रखी। (ज़ादुल मआ़द)

फ़रमाया रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने कि बीमारी आने से पहले तन्दुरुस्ती से कुछ फ़ायदे ले लो, और मरने से पहले अपनी ज़िन्दगी के फल उठा लो।

फ़ायदाः मतलब यह है कि तन्दुरुस्ती और ज़िन्दगी को ग़नीमत समझो और नेक काम में उसको लगाये रखो, वरना बीमारी और मौत में फिर कुछ न हो सकेगा।

मौत की याद और उसका शौक़

हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि लोगो! मौत को याद करो और उसको याद रखो जो दुनिया की लज़्ज़तों को ख़त्म कर देने वाली है।

(तिर्मिज़ी शरीफ़, इब्ने माजा शरीफ़, मआ़रिफ़ुल-हदीस)

हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हुमा से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि मौत मोमिन का तोहफ़ा है। (शुअ़बुल ईमान- बैहक़ी, मआ़रिफ़ुल-हदीस)

मौत की तमन्ना और दुआ़ करने की मनाही

हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि तुममें से कोई किसी तकलीफ़ और दुख की वजह से मौत की तमन्ना न करे और न दुआ़ करे, अगर अन्दर के जज़्बे और तक़ाज़े से बिल्कुल ही मजबूर हो तो यूँ दुआ़ करेः

اَللّٰهُمَّ اَحْیِنِیْ مَا كَانَتِ الْحَیٰوةُ خَیْرًا لِّیْ وَتَوَفَّنِیْ اِذَا كَانَتِ الْوَفَاةُ خَیْرًا لِّیْ ۔

(حصن حصین)

तर्जुमाः ऐ अल्लाह जब तक मेरे लिये ज़िन्दगी बेहतर हो उस वक़्त तक मुझे ज़िन्दा रख, और जब मेरे लिये मौत बेहतर हो उस वक़्त मुझे दुनिया से उठा ले। (बुख़ारी शरीफ़, मुस्लिम शरीफ़, मआ़रिफ़ुल-हदीस)

बीमारी में तन्दुरुस्ती के ज़माने के आमाल का सवाब

हज़रत अबू मूसा अश्अ़री रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः जब बन्दा बीमार हो या सफ़र में जाये और उस बीमारी या सफ़र की वजह से अपनी इबादत वग़ैरह के मामूलात पूरा करने से मजबूर हो जाये तो अल्लाह तआ़ला के यहाँ उसके आमाल उसी तरह लिखे जाते हैं जिस तरह वह सेहत व तन्दुरुस्ती की हालत में और वतन में क़ियाम के ज़माने में किया करता था।

(बुख़ारी शरीफ़, मआ़रिफ़ुल-हदीस)

तकलीफ़ दरजात की बुलन्दी का सबब

मुहम्मद बिन ख़ालिद असलमी रज़ियल्लाहु अ़न्हु अपने वालिद से रिवायत करते हैं और वह उनके दादा से कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि किसी मोमिन बन्दे के लिये अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से ऐसा बुलन्द मक़ाम तय हो जाता है जिसको वह अपने अ़मल से नहीं पा सकता, तो अल्लाह तआ़ला उसको किसी जिस्मानी या माली तकलीफ़ में या औलाद की तरफ़ से किसी सदमे या परेशानी में मुब्तला कर देता है, फिर उसको सब्र की तौफ़ीक़ दे देता है, यहाँ तक कि उन मुसीबतों और तकलीफ़ों (और उन पर सब्र) की वजह से उस बुलन्द मक़ाम पर पहुँचा दिया जाता है जो उसके लिये पहले से तय हो चुका था।

(मआ़रिफ़ुल-हदीस, मुस्नद अहमद, अबू दाऊद शरीफ़)

हज़रत अबू सईद ख़ुदरी रज़ियल्लाहु अ़न्हु रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से रिवायत करते हैं कि मोमिन को जो भी बीमारी, जो भी परेशानी, जो भी रंज व ग़म और जो भी तकलीफ़ पहुँचती है यहाँ तक कि काँटा भी उसके चुभता है तो अल्लाह तआ़ला इन चीज़ों के ज़रिये उसके गुनाहों की सफ़ाई फ़रमा देता है। (बुख़ारी शरीफ़, मुस्लिम शरीफ़, मआ़रिफ़ुल-हदीस)

बीमारी की हालत की दुआ़

जो शख़्स बीमारी की हालत में यह दुआ़ चालीस बार पढ़े, अगर मरा

तो शहीद के बराबर सवाब मिलेगा और अगर अच्छा हो गया तो तमाम गुनाह बख़्शे जायेंगे।

لَآ اِلٰـهَ اِلَّآ اَنْتَ سُبْحَانَكَ اِنِّیْ كُنْتُ مِنَ الظّٰلِمِیْنَ.

"ला इला-ह इल्ला अन्-त सुब्हान-क इन्नी कुन्तु मिनज़्ज़ालिमीन"

और अगर बीमारी में यह दुआ पढ़े और मर जाये तो उसको दोज़ख़ की आग न लगेगी:

لَآ اِلٰـهَ اِلَّا اللّٰـهُ اَللّٰـهُ اَكْبَرُ لَآ اِلٰـهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ لَآ اِلٰـهَ اِلَّا اللّٰهُ لَهُ

الْمُلْكُ وَلَهُ الْحَمْدُ لَآ اِلٰـهَ اِلَّا اللّٰهُ وَلَا حَوْلَ وَلَا قُوَّةَ اِلَّا بِاللّٰهِ (ترمذی، نسائی، ابن ماجہ)

"ला इला-ह इल्लल्लाहु अल्लाहु अक्बरु ला इला-ह इल्लल्लाहु वह्दहू ला शरी-क लहू ला इला-ह इल्लल्लाहु लहुल-मुल्कु व लहुल-हम्दु ला इला-ह इल्लल्लाहु व ला हौ-ल व ला क़ुव्व-त इल्ला बिल्लाहि"

बीमारी के ज़माने में सच्चे दिल और सच्चे शौक़ से यह दुआ पढ़ा करे:

اَللّٰهُمَّ ارْزُقْنِیْ شَهَادَةً فِیْ سَبِيْلِكَ وَاجْعَلْ مَوْتِیْ بِبَلَدِ رَسُوْلِكَ (حصن حصین)

तर्जुमाः ऐ अल्लाह मुझे अपने रास्ते में शहादत अ़ता फ़रमा और मुझे अपने रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के शहर में मौत नसीब फ़रमा।

बीमारों की इयादत और उसके फ़ज़ाईल

फ़रमाया रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने- एक मुसलमान दूसरे मुसलमान की मिज़ाज-पुर्सी अगर सुबह के वक़्त करे तो शाम तक उसके लिये सत्तर हज़ार फ़रिश्ते दुआ़ करते हैं और अगर शाम को इयादत करे तो सुबह तक सत्तर हज़ार फ़रिश्ते उसके लिये दुआ़ करते हैं।

सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम में जो बीमार हो जाता हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम उसकी इयादत के लिये तशरीफ़ ले जाते थे। (ज़ादुल-मआ़द)

हज़रत सोबान रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि मोमिन बन्दा जब अपने ईमान वाले भाई की इयादत करता है तो वापस आने तक वह गोया जन्नत के बाग़ में होता है। (मुस्लिम शरीफ़)

हज़रत उम्मे सलमा रज़ियल्लाहु अ़न्हा कहती हैं कि जनाब रसूलुल्लाह

सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि जब तुम मरीज़ के पास जाओ या किसी ऐसे शख़्स के पास जाओ जो मरने के क़रीब हो तो उसके सामने भलाई का कलिमा ज़बान से निकालो, क्योंकि तुम जो कुछ कहते हो फ़रिश्ते उस पर आमीन कहते हैं। (मुस्लिम, मिश्कात)

हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि तुम किसी मरीज़ की इयादत को जाओ तो उससे कहो कि वह तुम्हारे लिये दुआ़ करे, इसलिये कि उसकी दुआ़ फ़रिश्तों की दुआ़ की तरह होती है। (इब्ने माजा, मिश्कात)

तसल्ली और हमदर्दी

हज़रत अबू सईद ख़ुदरी रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि जब तुम किसी मरीज़ के पास जाओ तो उसकी उम्र के बारे में उसके दिल को ख़ुश करो (यानी उसकी ज़िन्दगी के बारे में उम्मीद पैदा करने वाली बातें करो) इस तरह की बातें किसी होने वाली चीज़ को रद्द तो न कर सकेंगी लेकिन उससे उसका दिल ख़ुश होगा और यही इयादत का मक़सद है। (तिर्मिज़ी, इब्ने माजा, मआ़रिफ़ुल-हदीस)

हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि मरीज़ों के पास इयादत करने में शोर व शग़ब न करना और कम बैठना भी सुन्नत है। (मिश्कात)

मरीज़ की इयादत के लिये कोई दिन या वक़्त मुक़र्रर करना आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नते तैयबा में से नहीं था, बल्कि आप (ज़रूरत के मुताबिक़) दिन रात तमाम वक़्तों में मरीज़ों की इयादत फ़रमाते।

(ज़ादुल मआ़द)

हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम मरीज़ के क़रीब तशरीफ़ ले जाते तो उसके सिरहाने बैठते, उसका हाल पूछते और पूछते तबीयत कैसी है?

(ज़ादुल मआ़द)

नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम इयादत के लिए तशरीफ़ ले जाते तो बीमार की पेशानी और नब्ज़ पर हाथ रखते और वह कुछ माँगता तो उसके लिये वह चीज़ मंगवाते और फ़रमाते- जो माँगे वह इसको दो बशर्ते कि नुक़सान देने वाली चीज़ न हो (हिस्ने हसीन)

और कभी आप मरीज़ की पेशानी पर हाथ मुबारक रखते, फिर उसके सीने और पेट पर हाथ फेरते और दुआ करते- ऐ अल्लाह! इसे शिफ़ा दे। और जब आप मरीज़ के पास तशरीफ़ ले जाते तो फ़रमाते- कोई फ़िक्र की बात नहीं इन्शा-अल्लाह तआला सब ठीक हो जायेगा, बहुत सी बार आप फ़रमाते- यह बीमारी गुनाहों का कफ़्फ़ारा और पाक करने वाली बन जायेगी। (ज़ादुल मआद)

मरीज़ पर दम करना और उसके लिये सेहत की दुआ

आप मरीज़ के लिये तीन बार दुआ फ़रमाते, जैसा कि आपने हज़रत सअ़द रज़ियल्लाहु अ़न्हु के लिये दुआ फ़रमाई- ऐ अल्लाह! सअ़द को शिफ़ा दे, ऐ अल्लाह! सअ़द को शिफ़ा दे, ऐ अल्लाह! सअ़द को शिफ़ा दे।

(ज़ादुल मआद)

हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम मरीज़ की पेशानी या दुखी हुई जगह पर दाहिना हाथ रखकर फ़रमाते:

اَللّٰهُمَّ اَذْهِبِ الْبَاسَ رَبَّ النَّاسِ اِشْفِ اَنْتَ الشَّافِیْ لَاشِفَآءَ اِلَّا شِفَآءُكَ شِفَآءً لَّايُغَادِرُسَقَمًا.

तर्जुमाः ऐ अल्लाह! ऐ लोगों के रब! तकलीफ़ को दूर फ़रमा और शिफ़ा दे, तू ही शिफ़ा देने वाला है, तेरी शिफ़ा के अ़लावा कोई शिफ़ा नहीं है। ऐसी शिफ़ा दे जो ज़रा भी बीमारी न छोड़े।

यह दुआ भी नक़ल की गयी है:

اَللّٰهُمَّ اشْفِهٖ اَللّٰهُمَّ عَافِهٖ.

तर्जुमाः ऐ अल्लाह! इसको शिफ़ा दे, ऐ अल्लाह! इसको आ़फ़ियत दे।

या सात बार यह दुआ पढ़े:

اَسْاَلُ اللّٰهَ الْعَظِيْمَ رَبَّ الْعَرْشِ الْعَظِيْمِ اَنْ يَّشْفِيَكَ.

तर्जुमाः मैं सवाल करता हूँ अल्लाह तआ़ला से जो बड़ा है और अ़र्शे अ़ज़ीम का रब है कि तुझे शिफ़ा बख़्शे।

जिस शख़्स ने किसी ऐसे मरीज़ की इयादत की जिसकी मौत का वक़्त

न आया हो और यह दुआ पढ़े तो अल्लाह तआला उस मरीज़ को उस बीमारी से ज़रूर शिफ़ा देगा। (अबू दाऊद, तिर्मिज़ी)

हज़रत उस्मान बिन अबुल-आस रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि उन्होंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से दर्द की शिकायत की जो उनके जिस्म के किसी हिस्से में था, तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया- तुम उस जगह पर अपना हाथ रखो जहाँ तकलीफ़ है और तीन बार कहो- "बिस्मिल्लाहि" और सात बार कहो:

اَعُوْذُ بِعِزَّةِ اللّٰهِ وَقُدْرَتِهٖ مِنْ شَرِّ مَآاَجِدُ وَاُحَاذِرُ.

तर्जुमाः मैं पनाह लेता हूँ अल्लाह तआला की बड़ाई और उसकी क़ुदरत की उस तकलीफ़ के शर से जो मैं पा रहा हूँ और जिसका मुझको ख़तरा है।

कहते हैं कि मैंने ऐसा ही किया तो अल्लाह तआला ने मेरी वह तकलीफ़ दूर फ़रमा दी। (मुस्लिम शरीफ़)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम यह दुआ पढ़कर हज़राते हसन व हुसैन रज़ियल्लाहु अन्हुमा को अल्लाह तआला की पनाह में देते थे:

اُعِيْذُ بِكَلِمَاتِ اللّٰهِ التَّآمَّةِ مِنْ شَرِّ كُلِّ شَيْطٰنٍ وَّهَآمَّةٍ وَّمِنْ كُلِّ عَيْنٍ لَّآمَّةٍ.

तर्जुमाः मैं तुम्हें पनाह में देता हूँ अल्लाह के कलिमाते ताम्मा की हर शैतान के शर से और हर ज़हरीले जानवर से और असर डालने वाली आँख से।

और फ़रमाते थे कि तुम्हारे दादा बुज़ुर्गवार इब्राहीम अलैहिस्सलाम अपने दोनों साहिबज़ादों इस्माईल व इस्हाक़ अलैहिमस्सलाम पर इन कलिमात से दम करते थे। (मआरिफ़ुल-हदीस, बुख़ारी शरीफ़)

और जिसके ज़ख़्म या फोड़ा या कोई तकलीफ़ होती आप उस पर दम करते। चुनाँचे शहादत की उंगली ज़मीन पर रख देते, फिर यह दुआ पढ़ते और उस जगह उंगली फेरते। (ज़ादुल मआद)

बिस्मिल्लाहि तुर्बतु अर्ज़िना बिरीक़ति-बअ्ज़िना यश्फ़ी सक़ी-मना बि-इज़्नि रब्बिना।

तर्जुमाः मैं अल्लाह के नाम से बरकत हासिल करता हूँ। यह हमारी

ज़मीन की मिट्टी है जो हममें से किसी के थूक में मिली हुई है ताकि हमारे बीमार को हमारे रब के हुक्म से शिफ़ा दे।

हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम जब खुद बीमार होते तो मुअव्वज़ात (1) पढ़कर अपने ऊपर दम फ़रमाया करते और खुद अपना मुबारक हाथ अपने जिस्म पर फेरते, फिर जब आपको वह बीमारी लाहिक़ हुई जिसमें आपकी वफ़ात हुई तो मैं वही मुअव्वज़ात पढ़कर आप पर दम करती जिनको आप पढ़कर दम किया करते थे और आपका हाथ मुबारक आपके जिस्म मुबारक पर फेरती।

दूसरा बाब

रूह निकलने के वक़्त की हालत, मौत के वक़्त मय्यित के साथ मामला और कफ़न दफ़न का सामान

जब मौत के आसार ज़ाहिर होने लगें

हज़रत अबू सईद खुदरी रज़ि. से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि मरने वालों को कलिमा 'ला इला-ह इल्लल्लाहु' की तलक़ीन करें। (मुस्लिम शरीफ़, मआरिफ़ुल-हदीस)

हज़रत मअक़ल बिन यसार रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत किया गया है कि रसूलुल्लाह सल्ल. ने फ़रमाया तुम अपने मौत से क़रीब मरीज़ों पर सूरः यासीन पढ़ा करो। (मआरिफ़ुल-हदीस, मुस्नद अहमद, अबू दाऊद, इब्ने माजा)

(1) मुअव्वज़ात से सूरः इख़्लास, सूरः फ़लक़ और सूरः नास मुराद हैं, उनको पढ़कर हथेलियों पर दम किया जाये फिर उनको सर से लेकर पाँव तक ताम जिस्म पर फेर लिया जाये, तीन बार ऐसा किया जाये।

मौत के वक़्त की सख़्ती

मरने वाले का मुँह मरते वक़्त क़िब्ले की तरफ़ कर दें और ख़ुद वह यह दुआ माँगे:

اَللّٰهُمَّ اغْفِرْلِىْ وَارْحَمْنِىْ وَاَلْحِقْنِىْ بِالرَّفِيْقِ الْاَعْلٰى (اور) لَا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ (پڑھے اور) اَللّٰهُمَّ اَعِنِّىْ عَلٰى غَمَرَاتِ الْمَوْتِ وَسَكَرَاتِ الْمَوْتِ پڑھے

अल्लाहुम्मग़फ़िर् ली वर्हम्नी व अल्हिक़्नी बिर्रफ़ीक़िल-आला (और) **ला इला-ह इल्लल्लाहु** (पढ़े, और) **अल्लाहुम्-म अअिन्नी अला ग़-मरातिल-मौति व स-करातिल मौति** (पढ़े)।

तर्जुमाः ऐ अल्लाह! मेरी मग़फ़िरत फ़रमा, और मुझ पर रहम फ़रमा और मुझे ऊपर वाले साथियों में पहुँचा दे। अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं। ऐ अल्लाह मौत की सख़्तियों (के इस मौक़े) में मेरी मदद फ़रमा।

(तिर्मिज़ी शरीफ़)

मसलाः जब किसी पर मौत का असर ज़ाहिर हो तो उसको चित लिटा दो इस तरह कि क़िब्ला उसके दाहिनी तरफ़ हो और सर को ज़रा क़िब्ले की तरफ़ घुमा दो, या उसके पाँव क़िब्ले की तरफ़ कर दो और सर के नीचे तकिया वग़ैरह रखकर ज़रा ऊँचा कर दो, इस तरह भी क़िब्ला-रुख़ हो जायेगा। (मुसाफ़िरे आख़िरत)

लेकिन अगर मरीज़ को क़िब्ला-रुख़ करने से तकलीफ़ हो तो उसके हाल पर छोड़ दो, फिर उसके पास बैठकर कलिमा-ए-शहादत की तलक़ीन इस तरह करें कि कोई उसके पास बुलन्द आवाज़ से कहे:

اَشْهَدُ اَنْ لَّآ اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَاَشْهَدُ اَنَّ مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ.

अश्हदु अल्ला इला-ह इल्लल्लाहु वह्दहू ला शरी-क लहू व अश्हदु अन्-न मुहम्मदन् अब्दुहू व रसूलुहू।

और उसको कलिमा पढ़ने का हुक्म न करो, क्योंकि वह वक़्त बड़ा मुश्किल है, न मालूम उसके मुँह से क्या निकल जाये। (बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः जब वह एक बार कलिमा पढ़ ले तो चुप रहो। यह कोशिश न करो कि बराबर कलिमा जारी रहे और पढ़ते-पढ़ते दम निकले, क्योंकि मतलब तो फ़क़त इतना है कि सब से आख़िरी बात जो उसके मुँह से

निकले कलिमा होना चाहिये, इसकी ज़रूरत नहीं कि दम टूटने तक कलिमा बराबर जारी रहे। हाँ अगर कलिमा पढ़ लेने के बाद फिर कोई दुनिया की बात-चीत करे तो फिर कलिमा पढ़ने लगो, जब वह पढ़ ले तो फिर चुप हो रहो। (बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः जब साँस उखड़ जाये और जल्दी-जल्दी चलने लगे और टाँगें ढीली पड़ जायें कि खड़ी न हो सकें और नाक टीढ़ी हो जाये और कनपटियाँ बैठ जायें तो समझो कि उसकी मौत का वक़्त आ गया, उस वक़्त कलिमा ज़ोर से पढ़ना शुरू कर दो। (बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः सूरः यासीन पढ़ने से मौत की सख़्ती कम हो जाती है, उसके सिरहाने या और कहीं उसके पास बैठकर पढ़ दो या किसी से पढ़वा दो।

मसलाः उस वक़्त कोई बात ऐसी न करो कि उसका दिल दुनिया की तरफ़ माईल हो जाये, क्योंकि यह वक़्त दुनिया से जुदाई और अल्लाह तआ़ला की बारगाह में हाज़िरी का वक़्त है, ऐसी बातें करो कि दुनिया से दिल फिरकर अल्लाह तआ़ला की तरफ़ माईल हो जाए कि मुर्दे की भलाई इसी में है। ऐसे वक़्त मैं बाल-बच्चों को सामने लाना या और कोई जिससे उसको ज़्यादा मुहब्बत थी उसे सामने लाना, ऐसी बातें करना कि उसका दिल उनकी तरफ़ माईल हो जाये और उनकी मुहब्बत उसके दिल में समा जाये, बड़ी बुरी बात है कि दुनिया की मुहब्बत लिये रुख़्सत हो।

(बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः मरते वक़्त अगर उसके मुँह से ख़ुदा न करे कुफ़्र की कोई बात निकले तो उसका ख़्याल न करो, न उसका चर्चा करो, बल्कि यह समझकर मौत की सख़्ती की वजह से अ़क़्ल ठिकाने नहीं रही इस वजह से ऐसा हुआ और अ़क़्ल जाते रहने के वक़्त जो कुछ हो सब माफ़ है, और अल्लाह से उसकी बख़्शिश की दुआ़ करते रहो। (बहिश्ती ज़ेवर)

जब मौत हो जाये तो ताल्लुक़ वाले यह दुआ पढ़ें:

اِنَّا لِلّٰہِ وَاِنَّـآ اِلَیْہِ رَاجِعُوْنَ.

"इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन"

तर्जुमाः बेशक हम अल्लाह ही के लिये हैं और अल्लाह ही की तरफ़ लौटने वाले हैं।

اَللّٰھُمَّ اَجِرْنِیْ فِیْ مُصِیْبَتِیْ وَاخْلُفْ لِیْ خَیْرًا مِّنْھَا. (ترمذی شریف)

तर्जुमाः ऐ अल्लाह! मेरी मुसीबत में अज्र दे और उसके बदले मुझे अच्छा बदला इनायत फ़रमा।

मसलाः जब मौत वाक़े हो जाये तो कपड़े की एक चौड़ी पट्टी लेकर मय्यित की ठोड़ी के नीचे से निकाल कर सर पर लाकर गिरह लगा दें और नर्मी से आँखें बन्द कर दें और उस वक़्त यह दुआ पढ़ेः

بِسْمِ اللّٰهِ وَعَلٰى مِلَّةِ رَسُوْلِ اللّٰهِ، اَللّٰهُمَّ يَسِّرْ عَلَيْهِ اَمْرَهٗ وَ سَهِّلْ عَلَيْهِ مَا بَعْدَهٗ وَاَسْعِدْهُ بِلِقَآئِكَ وَاجْعَلْ مَاخَرَجَ اِلَيْهِ خَيْرًا مِّمَّا خَرَجَ عَنْهُ.

तर्जुमाः शुरू करता हूँ अल्लाह के नाम से और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के दीन पर। ऐ अल्लाह पाक इस मय्यित पर इसका काम आसान फ़रमा और इस पर वे हालात आसान फ़रमा जो अब इसके बाद आयेंगे और इसको अपने दीदारे मुबारक से मुशर्रफ़ (सम्मानित) फ़रमा और जहाँ गया है (यानी आख़िरत) उसको बेहतर कर दे उस जगह से जहाँ से गया है (यानी दुनिया से)। (दुर्रे मुख़्तार)

मसलाः फिर उसके हाथ-पाँव सीधे कर दें और पैरों के अंगूठे मिलाकर कपड़े की कत्‌रन वग़ैरह से बाँध दें, फिर उसे एक चादर ओढ़ाकर चारपाई या चौकी पर रखें, ज़मीन पर न छोड़ें और पेट पर कोई लम्बा लोहा या भारी चीज़ रख दें ताकि पेट न फूले। गुस्ल की हाजत वाले आदमी और हैज़ या निफ़ास वाली औ़रत को उसके पास न आने दो।

(मुसाफ़िरे आख़िरत, दुर्रे मुख़्तार, बहिश्ती ज़ेवर)

फिर उसके दोस्त अहबाब को ख़बर दो ताकि उसकी नमाज़े जनाज़ा में ज़्यादा से ज़्यादा शरीक हों और उसके लिये दुआ करें।

मसलाः अगर मयस्सर हो तो ख़ुशबू (अगर बत्ती वग़ैरह) जलाकर मय्यित के क़रीब रख दो। (मुसाफ़िरे आख़िरत)

मसलाः गुस्ल से पहले मय्यित के पास क़ुरआन पढ़ना दुरुस्त नहीं।

(बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः कफ़नाने दफ़नाने में बहुत जल्दी की जाये, सब से पहले क़ब्र का बन्दोबस्त करो और गुस्ल, कफ़न, जनाज़ा और दफ़न का सामान मुहैया कर लो, जिसे अपने अपने मौक़े पर इस्तेमाल किया जायेगा। (बहिश्ती ज़ेवर)

नोटः इस पूरे सामान की फ़ेहरिस्त आगे आ रही है।

मसलाः अगर जुमा के दिन किसी का इन्तिक़ाल हुआ तो अगर जुमा की नमाज़ से पहले कफ़न दफ़न हो सके तो ज़रूर कर लें, सिर्फ़ इस ख़्याल से जनाज़ा रोके रखना कि जुमा के बाद मजमा ज़्यादा होगा, मक्रूह है।

(बहिश्ती गौहर व शामी)

जो शख़्स एहराम की हालत में इन्तिक़ाल कर जाये उसका कफ़न दफ़न

मसलाः जो शख़्स हज या उमरे के लिये गया हो और एहराम की हालत में फ़ौत हो जाये तो उसका कफ़न दफ़न और ग़ुस्ल वग़ैरह सब उसी तरह किये जायेंगे जिस तरह दूसरे लोगों के लिये किये जाते हैं, क्योंकि मौत से उसका एहराम ख़त्म हो जाता है, इसलिये उसका सर ढाँकना और ख़ुशबू लगाना वग़ैरह सब उसी तरह होगा जिस तरह आ़म मुसलमानों का होता है।

(फ़तहुल-मुल्हिम जिल्द 3 पेजः441, शामी जिल्द 1 पेज 803)

जो शख़्स समुद्री जहाज़ में वफ़ात पा जाये

मसलाः अगर कोई शख़्स पानी के जहाज़ या कश्ती वग़ैरह में फ़ौत हो जाये और ख़ुश्की वहाँ से इस क़द्र दूर हो कि लाश के ख़राब होने का अन्देशा हो तो उस वक़्त चाहिये कि ग़ुस्ल, कफ़न और नमाज़े जनाज़ा से फ़ारिग़ होकर उसके कफ़न को उस पर अच्छी तरह बाँधकर दरिया में डाल दें और उसके साथ कोई वज़नी पत्थर या लोहा वग़ैरह भी बाँध दें ताकि नीचे बैठ जाये।

और अगर किनारा इतनी दूर न हो और लाश के ख़राब होने का ख़तरा न हो तो नमाज़े जनाज़ा पढ़कर लाश को रख छोड़ें और किनारे पर पहुँचकर ज़मीन में दफ़न कर दें। (बहिश्ती गौहर व आ़लमगीरी)

ग़ुस्ल व कफ़न वग़ैरह में काफ़िर के साथ मामला

यहाँ तक तमाम मसाईल मुसलमान मय्यित के मुताल्लिक़ लिखे गये हैं। मय्यित अगर काफ़िर हो और उसकी लाश ठिकाने लगानी पड़े, या मुसलमान मय्यित के रिश्तेदारों में कोई शख़्स काफ़िर हो तो उसके मसाईल यहाँ लिखे

जाते हैं।

मसलाः मरने वाला अगर मुर्तद हो, यानी पहले मुसलमान था फिर काफ़िर हो गया और काफ़िर ही मरा तो उसका गुस्ल व कफ़न और नमाज़े जनाज़ा कुछ न होगी, न मुसलमानों के तरीक़े से उसका जनाज़ा उठाया जाये, न उसके मज़हब वाले काफ़िरों तक उसकी लाश पहुँचाने की कोशिश की जाये, बल्कि किसी गढ़े में कुत्ते की लाश की तरह डाल दिया जाये।

(दुर्रे मुख़्तार व शामी जिल्द 1 पेज 833)

मसलाः जो काफ़िर मुर्तद नहीं बल्कि शुरू से ही काफ़िर था और उसी हालत में मर गया तो अगर उसका कोई रिश्तेदार उसका हम-मज़हब मौजूद हो तो बेहतर यह है कि उसकी लाश उसी के लिये छोड़ दी जाये ताकि वह जिस तरह चाहे उसे दफ़न वग़ैरह करे। और अगर उसका कोई रिश्तेदार उसके मज़हब का न हो तो उसके मुसलमान रिश्तेदारों पर उसको गुस्ल व कफ़न तो वाजिब नहीं अलबत्ता उनके लिये इतना जायज़ है कि गुस्ल व कफ़न और दफ़न का जो सुन्नत तरीक़ा आगे मुसलमानों के लिये आ रहा है उसकी रियायत किये बग़ैर उसे नापाक कपड़े की तरह धोकर किसी कपड़े में लपेटकर किसी गढ़े में दबा दें। (दुर्रे मुख़्तार व शामी)

मसलाः अगर किसी मुसलमान मय्यित के सब रिश्तेदार काफ़िर हों तो उसके कफ़न वग़ैरह की तैयारी, नमाज़े जनाज़ा और दफ़न करना मुसलमानों के ज़िम्मे फ़र्ज़े किफ़ाया है, उसकी लाश काफ़िर रिश्तेदारों के हवाले न की जाये, काफ़िर रिश्तेदारों को उसे गुस्ल देने का हक़ भी नहीं। (दुर्रे मुख़्तार व शामी)

मसलाः किसी मुसलमान को दफ़न करने के लिये उसके काफ़िर रिश्तेदार को क़ब्र में दाख़िल न किया जाये। (दुर्रे मुख़्तार व शामी)

मसलाः अगर किसी मुसलमान मर्द का इन्तिक़ाल ऐसी जगह हो जाये कि कोई मुसलमान मर्द वहाँ मौजूद न हो, न उसकी बीवी हो जो उसे गुस्ल दे सके, बल्कि सिर्फ़ मुसलमान औरतें और काफ़िर मर्द हों तो ऐसी मजबूरी में मुसलमान औरतों को चाहिये कि वे किसी काफ़िर मर्द को गुस्ल देने का तरीक़ा बतला दें, क्योंकि किसी मर्द को गुस्ल देना बीवी के सिवा किसी औरत को जायज़ नहीं, वह काफ़िर उसे गुस्ल दे दे फिर मुसलमान औरतें उस पर नमाज़े जनाज़ा पढ़ लें। (शामी जिल्द 1 पेज 833)

मय्यित पर बयान करके रोना पीटना और मातम नहीं करना चाहिये

हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि एक बार सअ़द बिन उबादा रज़ियल्लाहु अ़न्हु बीमार हुए तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम अपने चन्द सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को साथ लिये हुए उनकी इयादत के लिये आये। आप जब अन्दर तशरीफ़ लाये तो उनको बड़ी सख़्त हालत में पाया। आपने उनको इस हालत में देखा कि उनके गिर्द आदमियों की भीड़ लगी हुई थी, तो आपने फ़रमाया- ख़त्म हो चुके? (बतौर मायूसी या हाज़िरीन से पूछने के तौर पर आपने यह बात फ़रमाई) तो लोगों ने अ़र्ज़ किया- नहीं! अभी ख़त्म नहीं हुए। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को उनकी यह हालत देखकर रोना आ गया। जब दूसरे लोगों ने आप पर रोने के आसार देखे तो वे भी रोने लगे। आपने इरशाद फ़रमाया- "लोगो! अच्छी तरह सुन लो और समझ लो कि अल्लाह तआ़ला आँख के आँसू और दिल के ग़म पर तो सज़ा नहीं देता, क्योंकि इस पर बन्दे का इख़्तियार और क़ाबू नहीं है" फिर ज़बान की तरफ़ इशारा करके फ़रमाया "लेकिन इसकी ग़लती पर यानी ज़बान से नौहा व मातम करने पर सज़ा देता है, और 'इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन' पढ़ने और दुआ़ व इस्तिग़फ़ार करने पर रहमत फ़रमाता है"।

(बुख़ारी व मुस्लिम, मआ़रिफ़ुल-हदीस)

हज़रत उम्मे सलमा रज़ियल्लाहु अ़न्हा से रिवायत है कि उनके शौहर अबू सलमा रज़ियल्लाहु अ़न्हु की वफ़ात के वक़्त रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम तशरीफ़ लाये, उनकी आँखें खुली रह गयी थीं। आपने उनको बन्द किया और फ़रमाया- जब रूह जिस्म से निकल जाती है तो बीनाई भी उसके साथ चली जाती है, इसलिये मौत के बाद आँखों को बन्द ही कर देना चाहिये। आपकी यह बात सुनकर उनके घर के आदमी चिल्ला चिल्ला कर रोने लगे और उस रंज व सदमे की हालत में उनकी ज़बान से ऐसी बातें निकलने लगीं जो ख़ुद उन लोगों के हक़ में बद-दुआ़ थीं तो आपने फ़रमाया- "लोगो! अपने हक़ में ख़ैर और भलाई की दुआ़ करो,

इसलिये कि तुम जो कह रहे हो फ़रिश्ते उस पर आमीन कहते हैं'' फिर आपने इस तरह दुआ फ़रमाई:

''ऐ अल्लाह! अबू सलमा की मग़फ़िरत फ़रमा और अपने हिदायत पाने वाले बन्दों में उनका दर्जा बुलन्द फ़रमा, और इसके बजाय तू ही निगरानी फ़रमा उनके पस्माँदगान (यानी जिनको वह अपने पीछे छोड़कर गये हैं) की, और रब्बुल-आलमीन! बख़्श दे हमको और उसको और उसकी क़ब्र को कुशादा (खुली) और मुनव्वर फ़रमा''। (मुस्लिम, मआरिफ़ुल-हदीस)

मय्यित के लिये आँसू बहाना जायज़ है

आपने अपनी उम्मत के लिये 'इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन' कहना और अल्लाह की क़ज़ा पर राज़ी रहना मसनून क़रार दिया है। और ये बातें आँख के रोने और दिल के ग़मगीन होने के ख़िलाफ़ नहीं। यही वजह है कि आप तमाम मख़्लूक़ में सब से ज़्यादा अल्लाह की तक़दीर पर राज़ी रहने वाले और सब से ज़्यादा अल्लाह की तारीफ़ करने वाले थे, और इसके बावजूद अपने साहिबज़ादे इब्राहीम रज़ियल्लाहु अन्हु पर मुहब्बत व शफ़क़त के ज़्यादा होने की वजह से रिक़्क़त के सबब रो दिये, मगर उस हालत में भी आपका दिल अल्लाह तआला की रज़ा व शुक्र से भरा हुआ और ज़बान उसके ज़िक्र व तारीफ़ में मशग़ूल थी। (ज़ादुल मआद)

मय्यित का बोसा लेना

ग़ुस्ल देने के बाद मय्यित को मुहब्बत या अक़ीदत की वजह से बोसा देना जायज़ है, जैसा कि आँ हज़रत सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने उस्मान बिन मज़ऊन रज़ियल्लाहु अन्हु का बोसा लिया और रोये, इसी तरह हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ रज़ियल्लाहु अन्हु ने नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की वफ़ात के बाद आपकी पेशानी का बोसा लिया। (ज़ादुल मआद)

कफ़नाने और तैयार करने में जल्दी करना

हसीन बिन वहवा रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि तलहा बिन बरा रज़ियल्लाहु अन्हु बीमार हुए तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम उनकी इयादत (हाल पूछने) के लिये तशरीफ़ लाये। उनकी हालत नाज़ुक

देखकर आपने दूसरे आदमियों से फ़रमाया- में महसूस करता हूँ कि उनकी मौत का वक़्त आ ही गया है। अगर ऐसा हो जाये तो मुझे ख़बर की जाये और उनको कफ़नाने दफ़नाने में जल्दी की जाये, क्योंकि किसी मुसलमान की मय्यित के लिये मुनासिब नहीं कि वह देर तक अपने घर वालों के बीच में रहे। (अबू दाऊद शरीफ़, मआरिफ़ुल-हदीस)

हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सुना, आप फ़रमाते थे कि जब तुम्हारा कोई आदमी इन्तिक़ाल कर जाये तो उसको देर तक घर में मत रखो और क़ब्र तक पहुँचाने और दफ़न करने में जल्दी करो।

(बैहक़ी, शुअ़बुल-ईमान, मआरिफ़ुल-हदीस)

कफ़न वग़ैरह और दफ़न के ख़र्चे किसके ज़िम्मे हैं?

गुस्ल, ख़ुशबू, कफ़न, जनाज़ा और दफ़न के ख़र्चे किसके ज़िम्मे हैं? इसकी तफ़सील इस तरह है।

1. अगर मय्यित ने अपनी मिल्कियत में इतना माल (तर्का) छोड़ा हो कि इन ख़र्चों के लिये काफ़ी हो तो यह ख़र्च मय्यित के तर्के में से किया जायेगा। (शामी) लेकिन अगर कोई और शख़्स अपनी ख़ुशी से ये ख़र्चे अपने पास से अदा कर दे तो इसमें भी कोई हर्ज नहीं, चाहे यह शख़्स मय्यित का वारिस हो या अजनबी, लेकिन आ़क़िल, बालिग़ होना ज़रूरी है।

2. जिस मय्यित ने माल बिल्कुल नहीं छोड़ा उसके कफ़न दफ़न वग़ैरह के ख़र्चे उस शख़्स के ज़िम्मे हैं जिस पर मय्यित की ज़िन्दगी में उसका ख़र्च वाजिब था। अगर मय्यित का ख़र्च उसकी ज़िन्दगी में शरई तौर पर एक से ज़्यादा अफ़राद (वारिसों वग़ैरह) पर मुश्तरका तौर पर वाजिब था तो कफ़न दफ़न वग़ैरह के ख़र्चे भी उन पर मुश्तरका तौर पर वाजिब होंगे, यानी उन वारिसों से उनके मीरास के हिस्से के मुताबिक़ चन्दा जमा किया जाये। यानी अगर यह मय्यित कुछ माल छोड़कर मरता तो जिस शख़्स को ज़्यादा मीरास मिलती उससे उसी हिसाब से कफ़न दफ़न का ख़र्च ज़्यादा लिया जायेगा और जिस शख़्स को कम मीरास मिलती उससे उसी हिसाब से कफ़न दफ़न

का ख़र्च कम लिया जायेगा। (शामी जिल्द 1 पेज 810, मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 36)

3. मय्यित अगर शादीशुदा औ़रत हो तो उसके कफ़न दफ़न के ख़र्चे उसके शौहर के ज़िम्मे हैं चाहे औ़रत ने माल छोड़ा हो या न छोड़ा हो।

(दुर्रे मुख़्तार, शामी, इम्दादुल-फ़तावा)

4. अगर मय्यित ने माल नहीं छोड़ा और ऐसा भी कोई शख़्स ज़िन्दा नहीं जिस पर उसका नफ़्क़ा यानी ख़र्च वाजिब होता, तो इस्लामी हुकूमत का फ़र्ज़ है कि वह कफ़न-दफ़न के ख़र्चे बैतुल-माल (सरकारी ख़ज़ाने) से अदा करे। अगर हुकूमत भी यह फ़रीज़ा अदा नहीं करती तो जिन-जिन मुसलमानों को ऐसी मय्यित की इत्तिला हो उन सब पर फ़र्ज़े किफ़ाया के तौर पर लाज़िम है कि मिलकर यह ख़र्च बरदाश्त करें, अगर इत्तिला पाने वालों में से किसी ने भी यह काम न किया तो वे सब गुनाहगार होंगे।

(दुर्रे मुख़्तार, शामी)

5. अगर किसी ने मय्यित के वारिसों के मौजूद न होने की सूरत में उनकी या हुकूमत की इजाज़त के बग़ैर अपने पास से यह ख़्याल करके ख़र्च कर दिया कि बाद में वारिसों से ले लूँगा तो अगर बाद में वारिस ख़ुशी से दे दें तो ठीक, वरना वह उनसे ज़बरदस्ती वसूल नहीं कर सकता, क्योंकि यह उसका एहसान था जो उसने अपनी तरफ़ से ख़ुद किया है, वारिस उसके ज़िम्मेदार नहीं। (शामी)

6. यहाँ कफ़न दफ़न के जिन ख़र्चों का हुक्म लिखा गया है उनसे मुराद गुस्ल, ख़ुशबू, कफ़न और ले जाने व दफ़न के वे ख़र्चे हैं जो शरई तरीक़े के मुताबिक़ हों, जिनकी तफ़सील आगे आ रही है। बहुत सी रस्में जो नावाक़िफ़ लोगों ने अपनी तरफ़ से ईजाद कर रखी हैं उनके ख़र्चों का यह हुक्म नहीं, उन ज़ायद ख़र्चों का ज़िम्मेदार वही शख़्स होगा जो यह ज़ायद ख़र्च करेगा। (शामी)

मसलाः याद रहे कि ज़कात की रक़म किसी के कफ़न दफ़न में ख़र्च करने से ज़कात अदा नहीं होती अगरचे मय्यित फ़क़ीर ही हो, क्योंकि ज़कात की अदाएगी के लिये ज़रूरी है कि वह किसी फ़क़ीर के क़ब्ज़े में मालिकाना तौर पर दे दी जाये और मय्यित किसी चीज़ का न मालिक हो सकता है न उस पर क़ब्ज़ा कर सकता है।

लेकिन अगर किसी फ़क़ीर को ज़कात मालिकाना तौर पर किसी शर्त

के बग़ैर क़ब्ज़े में दे दी जाये, फिर वह फ़क़ीर अपनी ख़ुशी से किसी के कफ़न दफ़न में ख़र्च कर दे तो फ़क़ीर को कफ़न दफ़न का इन्तिज़ाम करने का सवाब होगा और ज़कात देने वाले की ज़कात अदा हो जायेगी।

कफ़न-दफ़न वग़ैरह के सामान की मुकम्मल फ़ेहरिस्त

मय्यित के ग़ुस्ल, कफ़न, जनाज़ा और दफ़न का तफ़सीली तरीक़ा और ज़रूरी मसाईल आगे अपने-अपने मौक़े पर तफ़सील से बयान होंगे, मगर उन कामों के लिये जिस जिस सामान की ज़रूरत होती है, सहूलत के लिये उसकी मुफ़स्सल फ़ेहरिस्त यहाँ दर्ज की जा रही है ताकि सब सामान एक साथ जमा कर लिया जाये। हर चीज़ के लिये अलग अलग न जाना पड़े। उनमें से जो चीज़ें घर में मौजूद हों, बाज़ार से नई मंगाना ज़रूरी नहीं, अक्सर उन रिफ़ाही अन्जुमनों (यानी उन संगठनों से जो आ़म फ़ायदे और भलाई के लिये क़ायम किये जाते हैं) से भी तैयार मिल जाती हैं जो कफ़न दफ़न और मय्यित के लिए गाड़ी का इन्तिज़ाम करती हैं, उन चीज़ों के इस्तेमाल का तरीक़ा आगे अपने अपने मौक़े पर तफ़सील से बयान होगा।

ग़ुस्ल का सामान

1. **नहलाने के लिये पानी के बरतनः** ज़रूरत के मुताबिक़ (अगरचे इस्तेमाल शुदा हों)।

2. **लौटाः** एक (अगरचे इस्तेमाल शुदा हो)।

3. **ग़ुस्ल का तख़्ताः** एक, अक्सर मस्जिदों में रहता है, या कोई और तख़्ता जिस पर मय्यित को लिटाकर ग़ुस्ल दिया जा सके मुहैया कर लिया जाये।

4. **इस्तिन्जे के ढेलेः** तीन या पाँच अ़दद।

5. **बेरी के पत्तेः** दो मुट्ठी (अगर न मिलें तो कोई हर्ज नहीं)।

6. **लोबानः** एक तौला।

7. **इत्रः** तीन माशे।

8. **रूईः** आधी छटाँक।

9. **गुले ख़ैरूः** एक छटाँक, यह न हो तो नहाने का साबुन भी काफ़ी है।

10. **काफ़ूरः** छह माशे।

11. **तहबन्दः** दो अ़दद, घर में मौजूद न हों तो बालिग़ (मर्द व औ़रत के लिये) सवा गज़ लम्बा कपड़ा जिसका अ़र्ज़ पन्द्रह गिरह से कम न हो एक तहबन्द के लिये काफ़ी है। दो तहबन्द के लिये चौदह गिरह अ़र्ज़ का ढाई गज़ कपड़ा मंगा लें।

12. **दस्तानेः** दो अ़दद, किसी पाक साफ़ मोटे कपड़े की दो अ़दद थेलियाँ सीकर इतनी बड़ी बना लें कि नहलाने वाले का हाथ उसमें पहुँचे से कुछ ऊपर कलाई तक आसानी से आ जाये, यही थेलियाँ दस्तानों के तौर पर इस्तेमाल होंगी। एक थेली के लिये कपड़ा छह गिरह लम्बा और तीन गिरह चौड़ा काफ़ी है।

कफ़न का सामान

13. **कफ़न का कपड़ाः** मर्द के पूरे कफ़न के लिये एक गज़ अ़र्ज़ का तक़रीबन दस गज़ कपड़ा सफ़ेद, औ़रत के लिये (मय चादर गहवारा) साढ़े इक्कीस गज़ कपड़ा सफ़ेद, बच्चों के कफ़न के कपड़े भी बड़ों की तरह होते हैं, लेकिन उनमें कपड़ा कम ख़र्च होगा, उनके हाल के मुताबिक़ कमी कर ली जाये।

जनाज़े का सामान

14. **जनाज़े की चारपाईः** एक, अक्सर मस्जिदों में या मय्यित-गाड़ी वालों से मिल जाती है वरना घर की चारपाई भी जो पाक साफ़ हो काफ़ी है।

15. **गहवारा (सिर्फ़ औ़रतों के लिये):** एक औ़रत के जनाज़े पर एक चीज़ क़ब्र की तरह उभरी हुई रखी जाती है जिस पर चादर डाली जाती है ताकि पर्दा रहे, उसे गहवारा कहते हैं, यह भी उमूमन मस्जिदों या मय्यित-गाड़ी वालों से मिल जाता है। अगर यह न हो तो बाँस की शाख़ जनाज़े पर रखकर उसपर चादर डाल दी जाये। (मुसाफ़िरे आख़िरत)

16. **जनाज़ा की चादरः** एक, जो चादर जनाज़े के ऊपर उढ़ा देते हैं

यह भी आ़म तौर पर मस्जिदों या मय्यित-गाड़ी वालों से मिल जाती है। मर्द के जनाज़े पर अगर यह न हो तो कुछ हर्ज नहीं, और मर्द के तर्के से उसको ख़रीदना जायज़ नहीं, लेकिन औ़रत के जनाज़े के लिये चादर ज़रूरी है ताकि पर्दा रहे। अगर घर में कोई चादर ऐसी मौजूद न हो जो औ़रत के जनाज़े पर डाली जा सके तो उसके तर्के से ख़रीद ली जाये, क़ब्र पर जाकर उतार लें और वापस लाकर तर्के में रख दें। (इस्लाहुर्रुसूम पेजः 170)

इसी लिये इससे पहले मर्द के कफ़न के लिये जो कपड़ा लिखा गया है उसमें यह चादर शुमार नहीं की गयी है और औ़रत के लिये जो साढ़े इक्कीस गज़ कपड़ा लिखा गया है उसमें साढ़े तीन गज़ लम्बी और दो गज़ चौड़ी चादर आसानी के लिये शुमार कर ली गयी है, वरना यह भी कफ़न का हिस्सा नहीं। इसलिये उसका रंग कफ़न के रंग के जैसा होना ज़रूरी नहीं, पर्दे के लिये कोई सा कपड़ा हो काफ़ी है, बल्कि कोई शख़्स अपनी चादर जनाज़े पर डाल दे और क़ब्र पर जाकर उतार ले तो यह भी काफ़ी है। (बहिश्ती ज़ेवर व मुसाफ़िरे आख़िरत)

17. तख़्ते या लम्बे चौड़े पत्थर, या सीमेंट के बने हुए सलेबः क़ब्र की पैमाइश के मुताबिक़ ये क़ब्र को पाटने के लिये इस्तेमाल होंगे। आ़म तौर पर क़ब्रिस्तान वाले मुहैया कर देते हैं वरना उनसे तायदाद और साईज़ पूछकर ख़ुद मंगा लें।

तीसरा बाब

गुस्ल और कफ़न के मसाईल

मय्यित को नहलाने और कफ़नाने का सवाब

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है कि जो शख़्स मय्यित को गुस्ल दे वह गुनाहों से ऐसा पाक हो जाता है जैसे अब माँ के पेट से पैदा हुआ हो। और जो मय्यित पर कफ़न डाले अल्लाह तआ़ला उसको जन्नत का जोड़ा पहनायेंगे।

मय्यित को कौन नहलाये?

मय्यित को नहलाने का हक़ सबसे पहले तो उसके सबसे क़रीबी रिश्तेदारों को है। बेहतर है कि वे ख़ुद नहलायें और औरत की मय्यित को क़रीबी रिश्तेदार औरत नहलाये, क्योंकि यह अपने अ़ज़ीज़ की आख़िरी ख़िदमत है। (दुर्रे मुख़्तार)

कोई दूसरा शख़्स भी नहला सकता है लेकिन मर्द को मर्द और औरत को औरत नहलाये, जो ज़रूरी मसाईल से भी वाक़िफ़ और दीनदार हो।

(शामी)

किसी को उजूरत देकर भी मय्यित को गुस्ल दिलाया जा सकता है लेकिन उजूरत लेकर गुस्ल देने वाला सवाब का मुस्तहिक़ नहीं होता अगरचे उजूरत लेना जायज़ है। (बहिश्ती गौहर)

अगर मय्यित मर्द है और मर्दों में से कोई नहलाने वाला नहीं है तो बीवी के अ़लावा किसी औरत के लिये उसको गुस्ल देना जायज़ नहीं, अगरचे वह मेहरम ही हो, अगर बीवी भी न हो तो उसको तयम्मुम करा दो गुस्ल न दो, लेकिन तयम्मुम कराने वाली औरतें अगर मय्यित के लिये ग़ैर-मेहरम हों तो उसके बदन को हाथ न लगायें बल्कि अपने हाथ में दस्ताने पहनकर तयम्मुम करायें। (बहिश्ती ज़ेवर)

किसी का शौहर मर गया तो बीवी को उसका चेहरा देखना, नहलाना और कफ़नाना दुरुस्त है, और अगर बीवी मर जाये तो शौहर को उसे नहलाना, उसका बदन छूना और हाथ लगाना दुरुस्त नहीं लेकिन देखना दुरुस्त है और कपड़े के ऊपर से हाथ लगाना और जनाज़ा उठाना भी जायज़ है। (बहिश्ती ज़ेवर, मुसाफ़िरे आख़िरत)

अगर किसी नाबालिग़ लड़के का इन्तिक़ाल हो जाये और वह अभी इतना छोटा था कि उसे देखने से शहवत नहीं होती (यानी जिन्सी इच्छा पैदा नहीं होती) तो मर्दों की तरह औरतें भी ऐसे लड़के को गुस्ल दे सकती हैं, और अगर नाबालिग़ लड़की का इन्तिक़ाल हो जाये और इतनी कम उम्र हो कि उसे देखने से शहवत नहीं होती तो ऐसी लड़की को औरतों की तरह मर्द भी गुस्ल दे सकते हैं, अलबत्ता नाबालिग़ लड़का और लड़की इतने बड़े हों कि उन्हें देखने से शहवत होती है तो लड़के को मर्द और लड़की को औरत

ही गुस्ल दें। (आ़लमगीरी)

गुस्ल देने वाला बा-वुज़ू हो तो बेहतर है

जो शख़्स नापाकी की हालत में हो या जो औ़रत हैज़ (माहवारी) या निफ़ास (ज़च्चा होने की हालत) में हो वह मय्यित को गुस्ल न दे, क्योंकि उसका गुस्ल देना मक्रूह है। (शामी, बहिश्ती ज़ेवर)

गुस्ल देने वालों के लिये चन्द हिदायतें

1. इस किताब में आगे जो तरीक़ा लिखा है उसके मुताबिक़ गुस्ल दिया जाये।

2. गुस्ल के लिये जिस सामान की फ़ेहरिस्त पीछे लिखी गयी है वह सब सामान अपने पास जमा कर लें।

3. गुस्ल देने के लिये बेरी के पत्ते डालकर गर्म पानी तैयार कर लें, जब नीम-गर्म रह जाये उससे गुस्ल दें। अगर बेरी के पत्ते मयस्सर न हों तो यही सादा नीम-गर्म पानी काफ़ी है। (बहिश्ती ज़ेवर)

4. बहुत तेज़ गर्म पानी से गुस्ल न दें। (बहिश्ती ज़ेवर)

5. गुस्ल देने के लिये घर के बरतन इस्तेमाल किये जा सकते हैं, अगरचे वे पहले से इस्तेमाल हुए हुए हों, नये बरतन मंगाना ज़रूरी नहीं। (बहिश्ती ज़ेवर)

6. जिस जगह गुस्ल दिया जाये वह ऐसी हो कि पानी बहकर फैल न जाये वरना लोगों को चलने फिरने में तकलीफ़ होगी। (बहिश्ती ज़ेवर)

7. जिस जगह गुस्ल दिया जाये वहाँ पर्दा होना चाहिये।

8. मय्यित के बालों में कंघी न करो, न नाखुन काटो, न कहीं के बाल काटो, सब उसी तरह रहने दो। (मुसाफ़िरे आख़िरत)

9. अगर नहलाने में मय्यित का कोई ऐब देखें तो किसी से न कहें, अगर खुदा न करे मरने से उसका चेहरा बिगड़ गया या काला हो गया तो यह भी न कहें और बिल्कुल इसका चर्चा न करें, कि यह सब नाजायज़ है। (बहिश्ती ज़ेवर)

10. और अगर कोई अच्छी निशानी देखें जैसे चेहरे की नूरानियत और तबस्सुम वग़ैरह तो उसे ज़ाहिर कर देना अच्छा और पसन्दीदा है। (शामी)

11. जो शख़्स पानी में डूबकर या आग में जलकर हलाक हुआ, या काफ़िरों से जंग में शहीद हुआ या नाहक़ क़त्ल कर दिया गया, या किसी हादसे में टुक्ड़े टुक्ड़े हो गये हों या हमल (गर्भ) गिर गया हो, या बच्चा मुर्दा पैदा हुआ हो तो उसको नहलाने और कफ़न दफ़न वग़ैरह के मसाईल इसी किताब के पाँचवे बाब में देख लिये जायें।

12. अगर पानी न होने के सबब किसी मय्यित को तयम्मुम कराया गया हो और फिर पानी मिल जाये तो उसको ग़ुस्ल दे देना चाहिये।

मय्यित को ग़ुस्ल देने का तफ़सीली तरीक़ा

जिस तख़्ते पर ग़ुस्ल दिया जाये उसको तीन बार या पाँच या सात बार लोबान की धूनी दे लो, और मय्यित को उस पर इस तरह लिटाओ कि क़िब्ला उसके दायें तरफ़ हो, अगर मौक़ा न हो और कुछ मुश्किल हो तो जिस तरफ़ चाहो लिटा दो। (फ़त्हुल-क़दीर जिल्द 1 पेज 449, शामी जिल्द 1 पेज 800, मुसाफ़िरे आख़िरत)

फिर मय्यित के बदन के कपड़े (कुर्ता, शेरवानी, बनियान वग़ैरह) चाक कर लो और एक तहबन्द उसके सतर पर डालकर अन्दर ही अन्दर वे कपड़े उतार लो। यह तहबन्द मोटे कपड़े का नाफ़ से पिंडली तक होना चाहिये ताकि भीगने के बाद अन्दर का बदन नज़र न आये।

मसलाः नाफ़ से लेकर ज़ानू (घुटनों) तक देखना जायज़ नहीं, ऐसी जगह हाथ लगाना भी नाजायज़ है। मय्यित को इस्तिन्जा कराने और ग़ुस्ल देने में उस जगह के लिये दस्ताना पहनना चाहिये या कपड़ा हाथ पर लपेट लें, क्योंकि जिस जगह ज़िन्दगी में हाथ लगाना जायज़ नहीं वहाँ मरने के बाद भी बिला दस्तानों के हाथ लगाना जायज़ नहीं और उस पर निगाह भी न डालो। (बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः ग़ुस्ल शुरू करने से पहले बायें हाथ में दस्ताना पहनकर मिट्टी के तीन या पाँच ढेलों से इस्तिन्जा कराओ, फिर पानी से पाक करो। फिर वुज़ू इस तरह कराओ कि न कुल्ली कराओ न नाक में पानी डालो, न गट्टे (पहुँचे) तक हाथ धुलाओ, बल्कि रूई का फाया तर करके होंठों, दाँतों और मसूढ़ों पर फेरकर फेंक दो, इस तरह तीन बार करो, फिर इसी तरह नाक के दोनों सूराख़ों को रूई के फाय से साफ़ करो, लेकिन अगर ग़ुस्ल की ज़रूरत

(यानी नापाकी) की हालत में मौत हुई हो, या औरत का इन्तिक़ाल हैज़ (माहवारी) या निफ़ास (ज़च्चा होने) की हालत में हुआ हो तो मुँह और नाक में पानी डालना ज़रूरी है, पानी डालकर कपड़े से निकाल लो।

फिर नाक और मुँह और कानों में रूई रख दो ताकि वुज़ू और गुस्ल कराते वक़्त पानी अन्दर न जाये, फिर मुँह धुलाओ, फिर हाथ कोहनियों समेत धुलाओ फिर सर का मसह कराओ, फिर तीन बार दोनों पैर धोओ।

जब वुज़ू करा चुको तो सर को (और अगर मर्द है तो दाढ़ी को भी) गुले ख़ैरू से या ख़त्मी या खली या बेसन या साबुन वग़ैरह से कि जिससे साफ़ हो जाये मलकर धो दो।

फिर उसे बाईं करवट पर लिटा दो और बेरी के पत्तों में पका हुआ नीम-गर्म पानी दाईं करवट पर तीन बार सर से पैर तक इतना डालो कि नीचे की जानिब बाईं करवट तक पहुँच जाये..........फिर दाईं करवट पर लिटाकर इसी तरह सर से पैर तक तीन बार इतना पानी डालो कि नीचे की जानिब बाईं करवट तक पहुँच जाये।

उसके बाद मय्यित को अपने बदन की टेक लगाकर ज़रा बिठलाने के क़रीब कर दो और उसके पेट को ऊपर से नीचे की तरफ़ आहिस्ता आहिस्ता मलो और दबाओ, अगर कुछ फ़ुज़्ला (पेशाब या पाख़ाना वग़ैरह) ख़ारिज हो तो सिर्फ़ उसी को पोंछकर धो दो, वुज़ू और गुस्ल को दोहराने की ज़रूरत नहीं, क्योंकि उस नापाकी के निकलने से मय्यित के वुज़ू और गुस्ल में कोई नुक़सान नहीं आता। फिर उसको बाईं करवट पर लिटाकर दाईं करवट पर काफ़ूर मिला हुआ पानी सर से पैर तक तीन बार ख़ूब बहा दो, कि नीचे बाईं करवट भी ख़ूब तर हो जाये, फिर दूसरा दस्ताना पहनकर सारा बदन किसी कपड़े से ख़ुश्क करके तहबन्द दूसरा बदल दो।

फिर चारपाई पर कफ़न के कपड़े इस तरीक़े से ऊपर नीचे बिछाओ जो आगे "कफ़न पहनाने के मसनून तरीक़े" में लिखा है। फिर मय्यित को आहिस्तगी से गुस्ल के तख़्ते से उठाकर कफ़न के ऊपर लिटा दो और नाक, कान और मुँह से रूई निकाल डालो।

(फ़तावा आ़लमगीरी, दुर्रे मुख़्तार, मुसाफ़िरे आख़िरत, बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः नहलाने का जो तरीक़ा ऊपर बयान हुआ सुन्नत है, लेकिन अगर कोई इस तरह तीन बार न नहलाये बल्कि सिर्फ़ एक बार सारे बदन

को धो डाले तब भी फ़र्ज़ अदा हो गया। (बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः अगर मय्यित के ऊपर पानी बरस जाये या और किसी तरह से पूरा बदन भीग जाये तो यह भीग जाना ग़ुस्ल के क़ायम मक़ाम नहीं हो सकता, उसे ग़ुस्ल देना बहरहाल फ़र्ज़ है। इसी तरह जो शख़्स पानी में डूबकर मर गया हो तो वह जिस वक़्त निकाला जाये उसको ग़ुस्ल देना फ़र्ज़ है, इसलिये कि मय्यित को ग़ुस्ल देना ज़िन्दों पर फ़र्ज़ है और ज़िक्र हुई सूरतों में उनका कोई अ़मल नहीं हुआ, हाँ अगर पानी से निकालते वक़्त ग़ुस्ल की नीयत से उसको पानी में हरकत दे दी (उसमें ग़ुस्ल की नीयत से हिला दिया) जाये तो ग़ुस्ल का फ़र्ज़ अदा हो जायेगा। (बहिश्ती ज़ेवर)

मय्यित को नहलाने के बाद ख़ुद ग़ुस्ल करना

मय्यित को ग़ुस्ल देने वाले को बाद में ख़ुद भी ग़ुस्ल कर लेना मुस्तहब (अच्छा और पसन्दीदा) है। (शामी)

हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि जो शख़्स मय्यित को ग़ुस्ल दे तो उसको चाहिये कि ग़ुस्ल करे। (इब्ने माजा)

और दूसरी हदीसों में इज़ाफ़ा है कि जो शख़्स मय्यित का जनाज़ा उठाये उसको चाहिये कि वुज़ू करे। (मआ़रिफ़ुल-हदीस)

मय्यित को नहलाने और कफ़न देने की फ़ज़ीलत

फ़रमाया रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने- जो शख़्स मय्यित को नहलाये वह गुनाहों से ऐसा पाक हो जाता है जैसे अभी माँ के पेट से पैदा हुआ हो, और जो मय्यित पर कफ़न डाले तो अल्लाह तआ़ला उसको जन्नत का जोड़ा पहनायेंगे।

कफ़न का बयान

हज़रत आ़यशा सिद्दीक़ा रज़ियल्लाहु अ़न्हा फ़रमाती हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम तीन यमनी कपड़ों में कफ़नाये गये, उन तीन कपड़ों में न तो (सिला हुआ) कुर्ता था न अ़मामा

(बुख़ारी शरीफ़, मुस्लिम शरीफ़, मआ़रिफ़ुल-हदीस)

हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया- तुम लोग सफ़ेद कपड़े पहना करो, वे तुम्हारे लिये अच्छे कपड़े हैं और उन्हीं में अपने मुर्दों को कफ़नाया करो। (अबू दाऊद शरीफ़, तिर्मिज़ी शरीफ़, इब्ने माजा, मआ़रिफ़ुल-हदीस)

मसलाः जैसा कि मय्यित को नहलाना फ़र्ज़े किफ़ाया है कफ़न देना, उस पर नमाज़े जनाज़ा पढ़ना और दफ़न करना भी फ़र्ज़े किफ़ाया है।

मसलाः कफ़न का कपड़ा भी अगर घर में मौजूद हो और पाक साफ़ हों तो उसके इस्तेमाल में हर्ज नहीं। (बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः कफ़न का कपड़ा उसी हैसियत का होना चाहिये जैसा मुर्दा अक्सर अपनी ज़िन्दगी में इस्तेमाल करता था, तकल्लुफ़ात बेकार हैं।

(बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः मर्द व औ़रत दोनों के लिये सबसे अच्छा कफ़न सफ़ेद कपड़े का है और नया और पुराना बराबर है। (दुर्रे मुख़्तार, इम्दादुल-फ़तावा)

मसलाः मर्द के लिये ख़ालिस रेशमी या ज़ाफ़रान या उसफ़ुर से रंगे हुए कपड़े का कफ़न मक्रूह है, औ़रत के लिये जायज़ है। (दुर्रे मुख़्तार)

मसलाः अपने लिये पहले से कफ़न तैयार रखना मक्रूह नहीं, क़ब्र का तैयार रखना मक्रूह है। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः तबर्रुक के तौर पर आबे ज़मज़म में तर किया हुआ कफ़न देने में भी कोई हर्ज नहीं, बल्कि बरकत का सबब है। (इम्दादुल फ़तावा मय हाशिया)

मसलाः कफ़न में या क़ब्र के अन्दर अ़हद-नामा या किसी बुज़ुर्ग का शजरा या क़ुरआनी आयतें या कोई दुआ़ रखना दुरुस्त नहीं, इसी तरह कफ़न पर या सीने पर काफ़ूर से या रोशनाई से कलिमा वग़ैरह या कोई दुआ़ लिखना भी दुरुस्त नहीं। (बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः किसी बुज़ुर्ग का इस्तेमाल किया हुआ कपड़ा या काबा के ग़िलाफ़ के नीचे का कपड़ा हो तो यह कफ़न के लिये बग़ैर धुले नये कपड़े से भी बेहतर है, उस कपड़े का अगर कुर्ता (जो मय्यित को कफ़न में पहनाया जाता है) हो सके तो कुर्ता दो, और अगर छोटा हो तो कुर्ते में सी दो। (इम्दादुल-फ़तावा जिल्द 1 पेज 488)

मसलाः काबा शरीफ़ के ग़िलाफ़ के ऊपर का कपड़ा जिस पर कलिमा या क़ुरआनी आयतें लिखी हों वह कफ़न या क़ब्र में रखना दुरुस्त नहीं।

(इम्दादुल फ़तावा व शामी)

ग़िलाफ़े काबा अगर ख़ालिस रेशम का हो तो मर्द को उसमें कफ़नाना बहरहाल नाजायज़ है चाहे उस पर कुछ लिखा हुआ न हो, क्योंकि मय्यित को ऐसे कपड़े में कफ़न देना जायज़ नहीं जिसे पहनना उसे ज़िन्दगी में जायज़ न था, और ख़ालिस रेशम का कपड़ा मर्दों को पहनना जायज़ नहीं, औरतों को जायज़ है। (दुर्रे मुख़्तार)

मसलाः बाज़ जगह रिवाज है कि नौजवान लड़की या नयी दुल्हन मर जाती है तो उसके जनाज़े पर सुर्ख़ चादर या ज़री-गोटे का दुपट्टा डालते हैं, यह नाजायज़ है। (दुर्रे मुख़्तार व इम्दादुल-फ़तावा)

मसलाः किसी इनसान की क़ब्र खुल जाये या और किसी वजह से उसकी लाश क़ब्र से बाहर निकल आये और उस पर कफ़न न हो तो उसको भी मसनून कफ़न देना चाहिये, बशर्ते कि वह लाश फटी न हो, और अगर फट गयी हो तो सिर्फ़ किसी कपड़े में लपेट देना काफ़ी है, मसनून कफ़न की हाजत नहीं। (बहिश्ती गौहर)

नोटः जो मय्यित पानी में डूबकर या आग में जलकर हलाक हुआ या काफ़िरों से जंग में शहीद हुआ या नाहक़ क़त्ल कर दिया गया, या किसी हादसे में उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये हों, या हमल (गर्भ) गिर गया हो, या बच्चा मुर्दा पैदा हुआ हो, उसके ग़ुस्ल, कफ़न, नमाज़े जनाज़ा और दफ़न वग़ैरह के मसाईल पाँचवे बाब में देख लिये जायें।

हदीसः हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि तुम लोग सफ़ेद कपड़े पहना करो, वे तुम्हारे लिये अच्छे कपड़े हैं, और उन्हीं (सफ़ेद कपड़ों) में अपने मुर्दों को कफ़नाया करो। (अबू दाऊद, तिर्मिज़ी व इब्ने माजा)

हज़रत अ़ली मुर्तज़ा रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- ज़्यादा क़ीमती कफ़न न इस्तेमाल करो, क्योंकि वह जल्द ही ख़त्म हो जाता है। (अबू दाऊद, मआ़रिफ़ुल-हदीस)

मर्द का कफ़न

मर्द के कफ़न के मसनून कपड़े तीन हैं

1. इज़ारः सर से पाँव तक।

2. लिफ़ाफ़ाः (इसे चादर भी कहते हैं) इज़ार से लम्बाई में 4 गिरह ज़्यादा।

3. कुर्ताः (बग़ैर आस्तीन और बग़ैर कली का, इसे क़मीज़ या कफ़नी भी कहते हैं) गर्दन से पाँव तक।

औरत का कफ़न

औरत के कफ़न के लिये मसनून कपड़े पाँच हैं

1. इज़ारः सर से पाँव तक (मर्द की तरह)।

2. लिफ़ाफ़ाः इज़ार से लम्बाई में 4 गिरह ज़्यादा (मर्द की तरह)।

3. कुर्ताः (बग़ैर आस्तीन और कली का) गर्दन से पाँव तक (मर्द की तरह)।

4. सीना-बन्दः बग़ल से रानों तक हो तो ज़्यादा अच्छा है वरना नाफ़ तक भी दुरुस्त है, और चौड़ाई में इतना हो कि बंध जाये।

5. सरबन्दः (इसे ओढ़नी या ख़िमार भी कहते हैं) तीन हाथ लम्बा।

ख़ुलासा यह कि औरत के कफ़न में तीन कपड़े तो बिल्कुल वही हैं जो मर्द के लिये होते हैं, अलबत्ता दो कपड़े ज़ायद हैं, यानी सीना-बन्द और सरबन्द। (बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः मर्द को तीन और औरत को पाँच कपड़ों में कफ़नाना मसनून है लेकिन अगर मर्द को दो कपड़ों (इज़ार और लिफ़ाफ़ा) में और औरत को तीन कपड़ों (इज़ार, लिफ़ाफ़ा व सरबन्द) में कफ़ना दिया तो यह भी दुरुस्त है और इतना कफ़न भी काफ़ी है।

इससे कम कफ़न देना मक्रूह और बुरा है। हाँ अगर कोई मजबूरी और लाचारी हो तो कम भी दुरुस्त है। (बहिश्ती ज़ेवर)

नोटः कफ़न के कपड़ों की तफ़सीली पैमाईश और कफ़न तैयार करने

और मय्यित को उसमें कफ़नाने का तरीक़ा आगे ज़रा तफ़सील से बयान होगा।

बच्चों का कफ़न

मसलाः अगर नाबालिग़ लड़का या नाबालिग़ लड़की मर जाये जो अभी जवान नहीं हुए लेकिन जवानी के क़रीब पहुँच गये थे तो लड़के के कफ़न में तीन कपड़े देना और लड़की के कफ़न में पाँच कपड़े देना सुन्नत है। अगर लड़की को पाँच के बजाय तीन और लड़के को तीन के बजाय दो ही कपड़े दिये जायें तब भी काफ़ी है। ग़र्ज़ यह कि जो हुक्म बालिग़ मर्द व औरत का है वही हुक्म नाबालिग़ लड़के और लड़की का है, बालिग़ मर्द व औरत के लिये वह हुक्म ताकीदी है और नाबालिग़ के लिये बेहतर है।

(बहिश्ती ज़ेवर व शामी)

मसलाः जो लड़का या लड़की बहुत कम उम्र में फ़ौत हो जायें कि जवानी के क़रीब भी न हुए हों तो बेहतर यह है कि लड़के को मर्दों की तरह तीन कपड़े और लड़की को औरतों की तरह पाँच कपड़े कफ़न में दिये जायें, और अगर लड़के को सिर्फ़ एक और लड़की को सिर्फ़ दो कपड़े कफ़न में दे दिये जायें तो भी दुरुस्त है और नमाज़े जनाज़ा और तदफ़ीन दस्तूर के मुवाफ़िक़ की जाये। (बहिश्ती ज़ेवर, आ़लमगीरी)

मसलाः जो बच्चा ज़िन्दा पैदा हुआ फिर थोड़ी ही देर में मर गया, या फ़ौरन पैदा होने के बाद ही मर गया, तो वह भी इसी क़ायदे से नहला दिया जाये और कफ़ना कर नमाज़ पढ़ी जाये, फिर दफ़न कर दिया जाये और उसका नाम भी कुछ रखा जाये। (बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः जो बच्चा माँ के पेट से मरा हुआ ही पैदा हुआ हो और पैदा होते वक़्त ज़िन्दगी की कोई निशानी नहीं पाई गयी, उसको इसी तरह नहलाओ लेकिन क़ायदे के मुवाफ़िक़ कफ़न न दो बल्कि किसी एक कपड़े में लपेट कर दफ़न कर दो, उस पर नमाज़े जनाज़ा भी नहीं पढ़ी जायेगी, लेकिन उसका भी कुछ न कुछ नाम रख देना चाहिये। (बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः अगर हमल (गर्भ) गिर जाये तो अगर बच्चे के हाथ पाँव, मुँह, नाक वग़ैरह अंग कुछ न बने हों तो न नहलाये और न कफ़नाये कुछ भी न करे बल्कि किसी कपड़े में लपेट कर एक गढ़ा खोदकर गाड़ दो, और अगर

उस बच्चे के कुछ अंग बन गये तो उसका वही हुक्म है जो मुर्दा बच्चा पैदा होने का है, यानी नाम रखा जाये और नहला दिया जाये लेकन क़ायदे के मुवाफ़िक़ कफ़न न दिया जाये, न नमाज़ पढ़ी जाये बल्कि कपड़े में लपेट कर दफ़न कर दिया जाये। (बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः पैदाईश के वक़्त बच्चे का केवल सर निकला, उस वक़्त वह ज़िन्दा था फिर मर गया, तो उसका वही हुक्म है जो मुर्दा बच्चा पैदा होने का हुक्म है, लेकिन अगर ज़्यादा हिस्सा निकल आया उसके बाद मरा तो ऐसा समझेंगे कि वह ज़िन्दा पैदा हुआ, और अगर सर की तरफ़ से पैदा हुआ तो सीने तक निकलने से समझेंगे कि ज़्यादा हिस्सा निकल आया और अगर उल्टा पैदा हुआ तो नाफ़ तक निकलना चाहिये। (बहिश्ती ज़ेवर) (1)

कफ़न की पैमाईश और तैयारी का तरीक़ा

कफ़न की पैमाईश और उसकी तैयारी का तरीक़ा मर्द के लिये यह है कि मय्यित के क़द के बराबर एक लकड़ी लो (2) और उसमें एक निशान कंधे के मुक़ाबिल लगा लो और एक धागा सीने के मुक़ाबिल रखकर जिस्म की गोलाई में को निकालो, कि दोनों सिरे उस धागे के दोनों तरफ़ की पस्लियों पर पहुँच जायें (3) और उसको तोड़कर अपने पास रख लो। फिर एक कपड़ा लो जिसका अ़र्ज़ उस धागे के बराबर या क़रीब के हो। अगर अ़र्ज़ इस क़द्र न हो तो उसमें जोड़ लगाकर पूरा कर लो और उस पूरी लकड़ी के बराबर लम्बी एक चादर फाड़ लो इसको 'इज़ार' कहते हैं।

इसी तरह दूसरी चादर फाड़ लो, जो अ़र्ज़ में तो इसी क़द्र हो लेकिन लम्बाई में इज़ार से चार गिरह ज़्यादा हो, इसको 'लिफ़ाफ़ा' कहते हैं। फिर एक कपड़ा लो जिसका अ़र्ज़ मुर्दे के जिस्म की चौड़ाई के बराबर हो और लकड़ी के निशान से आख़िर तक जिस क़द्र लम्बाई है उसका दोगुना फाड़ लो और दोनों सिरे कपड़े के मिलाकर बीच में से इतना चाक खोल लो कि सर की तरफ़ से गले में आ जाये, इसको 'कमीस' या 'कफ़नी' कहते हैं।

(1) 'रद्दे मोहतार' में इसी तरह बयान किया गया है।

(2) मक़सूद पैमाईश करना है, फ़ीता जिससे दर्ज़ी नापते हैं अगर मौजूद हो तो पैमाईश उससे कर ली जाये। (रफ़ी)

(3) यानी बायाँ सिरा दाईं पस्ली पर और दायाँ सिरा बाईं पस्ली पर। (रफ़ी)

औ़रतों का कफ़न

औ़रत के लिये मर्दों के सब कपड़े तो वही हैं और उन्हें तैयार करने का तरीक़ा भी वही है जो ऊपर बयान हुआ, उसके अ़लावा औ़रतों के लिये दो कपड़े और हैं:

(1) सीना-बन्द।

(2) सर-बन्द, जिसे ओढ़नी कहते हैं।

सीना-बन्दः बग़ल के नीचे से रानों तक और ज़िक्र हुए धागे के बक़द्र चौड़ा।

सर-बन्दः इज़ार के आधे से तीन गिरह ज़्यादा लम्बा और बारह गिरह चौड़ा।

कफ़न से मुताल्लिक़ चीज़ें

ऊपर तो कफ़न का बयान हुआ और कफ़न इसी क़द्र मसनून है, और बाज़ कपड़े कफ़न से मुताल्लिक़ हैं।

यानी नहलाने के लिये तहबन्द दो अ़दद, दस्ताने दो अ़दद और औ़रत के लिये गहवारा की चादर।

इन कपड़ों की तफ़सील जनाज़ा तैयार करने और कफ़नाने के सामान की फ़ेहरिस्त में बयान हो चुकी है।

अब बड़े शख़्स के कफ़न को यकजाई तौर पर लिख दिया जाता है ताकि और आसानी हो।

तफ़सील

क्र. स.	नाम कपड़ा	लम्बाई	चौड़ाई	नाप का अन्दाज़ा	कैफ़ियत
1.	इज़ार	अढ़ाई गज़	सवा गज़ से डेढ़ गज़ तक	सर से पाँव तक	14 या 15 या 16 गिरह अ़र्ज़ का कपड़ा हो तो डेढ़ पाट का होगा

2.	लिफ़ाफ़ा	पौने तीन गज़	सवा गज़ से डेढ़ गज़ तक	इज़ार से चार गज़ ज़्यादा	14 या 15 या 16 गिरह अ़र्ज़ का कपड़ा हो तो डेढ़ पाट का होगा
3.	कुर्ता, कमीज़ या कफ़नी	अढ़ाई गज़ ता पौने तीन गज़	एक गज़	गर्दन से पाँव तक	चौदह गिरह या एक गज़ अ़र्ज़ की तैयार होती है, दोहरा करके और बीच में इतना चाक खोलकर कि उसमें सर आ जाए गले में डालते हैं
4.	सीना बन्द	दो गज़	सवा गज़	बग़ल के नीचे से घुटनों तक	बग़ल से रानों तक बाँधा जाता है
5.	सर बन्द	डेढ़ गज़	12 गिरह	जहाँ तक आ जाए	सर पर और बालों पर डालते हैं, लपेटते नहीं

हिदायतः मुर्दे के मसनून कफ़न में एक गज़ अ़र्ज़ का कपड़ा अन्दाज़न दस गज़ ख़र्च होता है और औ़रत के लिये मय चादर गहवारा साढ़े इक्कीस गज़ और नहलाने के लिये तहबन्द और दस्ताने इससे अलग हैं, और बच्चे का कफ़न उसके हाल के मुनासिब होता है जैसा कि पहले गुज़र चुका है।

ज़ायद कपड़े

बाज़ कपड़े लोगों ने कफ़न के साथ ज़रूरी समझ रखे हैं हालाँकि वे मसनून कफ़न से ख़ारिज हैं। इसलिये मय्यित के तर्के (छोड़े हुए माल) में से जो कि सब वारिसों में मुश्तरक है और मुम्किन है कि उनमें बाज़ नाबालिग़

भी हों, या बाज़ यहाँ हाज़िर न हों उन कपड़ों का ख़रीदना उनके माल में नाजायज़ तसर्रुफ़ करना है। अव्वल तो इन चीज़ों की हाजत नहीं, बल्कि इसकी पाबन्दी बिद्अ़त है क्योंकि शरीअ़त ने इसको लाज़िम नहीं किया है, और अगर बिना पाबन्दी किसी मस्लेहत से उसको रखा जाये तो कोई शख़्स बालिग़ ख़ास अपने माल से ख़रीदे तो हर्ज नहीं। लेकिन औ़रतों के जनाज़े पर (गहवारे की) चादर पर्दे के लिये ज़रूरी है जिसकी तफ़सील जनाज़ा तैयार करने और कफ़नाने के सामान की फ़ेहरिस्त में बयान हो चुकी है।

वे ज़ायद कपड़े ये हैं

जाय-नमाज़ः लम्बाई सवा गज़, चौड़ाई चौदह गरिह, यह सिर्फ़ रस्म है जैसे जनाज़े की नमाज़ में मुक़्तदियों के लिये चटाई या फ़र्श की ज़रूरत नहीं इसी तरह इमाम को जाय-नमाज़ की हाजत नहीं।

पटकाः लम्बाई डेढ़ गज़, चौड़ाई चौदह गिरह, यह मुर्दे को क़ब्र में उतारने के लिये होता है।

बिछौनाः लम्बाई अढ़ाई गज़, चौड़ाई सवा गज़, चारपाई पर बिछाने के लिये होता है।

दामनीः लम्बाई दो गज़, चौड़ाई सवा गज़ हिम्मत और गुंजाईश के मुताबिक़ चार से सात तक मोहताजों को देते हैं, जो सिर्फ़ औ़रत के लिये मख़्सूस है।

बड़ी चादरः मुर्दे के जनाज़े पर लम्बाई तीन गज़, चौड़ाई पौने दो गज़ जो चारपाई को ढाँक लेती है, लेकिन औ़रत के लिये ज़रूरी है जो गहवारे पर डाली जाती है, मगर कफ़न से ख़ारिज, इसलिये उसका कफ़न के रंग का होना ज़रूरी नहीं। पर्दे के लिये कोई सा कपड़ा हो काफ़ी है, इसकी तफ़सील जनाज़ा तैयार करने और कफ़नाने के सामान की फ़ेहरिस्त में आ चुकी है।

कफ़नाने का बयान

जब मय्यित को गुस्ल दे चुको तो चारपाई बिछाकर कफ़न को तीन दफ़ा या पाँच दफ़ा या सात दफ़ा लोबान वग़ैरह की धूनी दो, फिर कफ़न को चारपाई पर बिछाकर मय्यित को उस पर लिटा दो और नाक, कान और मुँह से रूई जो गुस्ल के वक़्त रखी गयी थी निकाल डालो, लेकिन कफ़न बिछाने

और मय्यित को उसमें कफ़नाने का तरीक़ा मर्द व औ़रत के लिये कुछ मुख़्तलिफ़ (अलग) है, इसलिये यहाँ उसकी तफ़सील मर्द व औ़रत के लिये अलग-अलग लिखी जाती है।

मर्द को कफ़नाने का तरीक़ा

मर्द को कफ़नाने का तरीक़ा यह है कि चारपाई पर पहले 'लिफ़ाफ़ा' बिछाकर उस पर 'इज़ार' बिछा दो, फिर कुर्ता (क़मीज़) का निचला आधा हिस्सा बिछाओ और ऊपर का बाक़ी हिस्सा समेटकर सिरहाने की तरफ़ रख दो, फिर मय्यित को गुस्ल के तख़्ते से आहिस्तगी से उठाकर उस बिछे हुए कफ़न पर लिटा दो और क़मीज़ का जो आधा हिस्सा सिरहाने की तरफ़ रखा था उसको सर की तरफ़ उलट दो कि क़मीज़ का सूराख़ (गिरेबान) गले में आ जाए और पैरों की तरफ़ बढ़ा दो। जब इस तरह क़मीज़ (कुर्ता) पहना चुको तो गुस्ल के बाद जो तहबन्द मय्यित के बदन पर डाला गया था वह निकाल दो और उसके सर और दाढ़ी पर इत्र वग़ैरह कोई ख़ुशबू लगा दो। याद रहे कि मर्द को ज़ाफ़रान नहीं लगानी चाहिये। फिर पेशानी, नाक और दोनों हथेलियों और दोनों घुटनों और दोनों पाँव पर (कि जिन अंगों पर आदमी सज्दा करता है) काफ़ूर मल दो।

उसके बाद इज़ार का बायाँ पल्ला (किनारा) मय्यित के ऊपर लपेट दो, फिर दायाँ लपेटो, यानी बायाँ पल्ला नीचे रहे और दायाँ ऊपर, फिर लिफ़ाफ़ा इसी तरह लपेटो कि बायाँ पल्ला नीचे और दायाँ ऊपर रहे, फिर कपड़े की धज्जी (कत्तर) लेकर कफ़न को सर और पाँव की तरफ़ से बाँध दो और बीच में से कमर के नीचे को भी एक धज्जी निकाल कर बाँध दो ताकि हवा से या हिलने-जुलने से खुल न जाये। (शामी, बहिश्ती ज़ेवर, मुसाफ़िरे आख़िरत)

औ़रत को कफ़नाने का तरीक़ा

औ़रत के लिये पहले लिफ़ाफ़ा बिछाकर उस पर सीना-बन्द और उस पर इज़ार बिछाओ, फिर क़मीज़ का निचला हिस्सा बिछाओ और ऊपर का बाक़ी हिस्सा समेट कर सिरहाने की तरफ़ रख दो। फिर मय्यित को गुस्ल के तख़्ते से आहिस्तगी से उठाकर उस बिछे हुए कफ़न पर लिटा दो और क़मीज़ का जो आधा हिस्सा सिरहाने की तरफ़ रखा था उसको सर की

तरफ़ उलट दो कि क़मीज़ का सूराख़ (गिरेबान) गले में आ जाए और पैरों की तरफ़ बढ़ा दो, जब इस तरह क़मीज़ पहना चुको तो जो तहबन्द गुस्ल के बाद औरत के बदन पर डाला गया था वह निकाल दो और उसके सर पर इत्र वग़ैरह कोई ख़ुशबू लगा दो। औरत को ज़ाफ़रान भी लगा सकते हैं। फिर पेशानी, नाक, दोनों हथेलियों और दोनों घुटनों और दोनों पाँव पर काफ़ूर मल दो। फिर सर के बालों को दो हिस्से करके क़मीज़ के ऊपर सीने पर डाल दो, एक हिस्सा दाहिनी तरफ़ और दूसरा बाईं तरफ़। फिर सर-बन्द यानी ओढ़नी सर पर और बालों पर डाल दो, उनको बाँधना या लपेटना नहीं चाहिये।

उसके बाद मय्यित के ऊपर इज़ार इस तरह लपेटो कि बायाँ पल्ला (किनारा) नीचे और दायाँ ऊपर रहे, सर-बन्द उसके अन्दर आ जायेगा। उसके बाद सीना-बन्द, सीने के ऊपर बग़लों से निकाल कर घुटनों तक दायें बायें से बाँधो, फिर लिफ़ाफ़ा उसी तरह लपेटो कि बायाँ पल्ला नीचे और दायाँ पल्ला ऊपर रहे, उसके बाद धज्जी (कत्तर) से कफ़न को सर और पाँव की तरफ़ से बाँध दो और बीच में कमर के नीचे को भी एक बड़ी धज्जी निकाल कर बाँध दो ताकि हिलने जुलने से खुल न जाये।

(बहिश्ती ज़ेवर, मुसाफ़िरे आख़िरत)

ऊपर ज़िक्र की गयी तरकीब से सीना-बन्द इज़ार के ऊपर और लिफ़ाफ़ा के अन्दर होगा, लेकिन अगर उसको क़मीज़ के ऊपर इज़ार से पहले बाँध दिया जाये तब भी जायज़ है, और अगर तमाम कपड़ों के ऊपर यानी लिफ़ाफ़ा से बाहर और ऊपर बाँध दें तो भी दुरुस्त है।

(बहिश्ती ज़ेवर, मुसाफ़िरे आख़िरत)

मसलाः बाज़ लोग कफ़न पर भी इत्र लगाते हैं और इत्र की फरेरी मय्यित के कान में रख देते हैं, यह सब जहालत है, जितना शरीअ़त में आया उससे ज़ायद मत करो। (बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः जनाज़े के ऊपर जो चादर उढ़ा देते हैं यह कफ़न में दाख़िल नहीं है और मर्द के लिये ज़रूरी भी नहीं, लेकिन अगर कोई शख़्स अपनी चादर उस पर डाल दे और क़ब्र पर जाकर अपनी चादर उतार ले तो इसमें भी कोई हर्ज नहीं। (1) (मुसाफ़िरे आख़िरत)

---

(1) इस मसले की तफ़सील पीछे "जनाज़े का सामान" के उनवान से आ चुकी है वहां भी देख ली जाए।

लेकिन औरत के जनाज़े पर चादर डालना पर्दे के लिये ज़रूरी है मगर कफ़न में यह भी दाख़िल नहीं, चुनाँचे उसका रंग कफ़न के रंग जैसा होना ज़रूरी नहीं, पर्दे के लिये कोई बड़ा सा कपड़ा हो काफ़ी है, बल्कि कोई शख़्स अपनी चादर उस पर डाल दे और क़ब्र पर जाकर अपनी चादर उतार ले तो यह भी काफ़ी है। (मुसाफ़िरे आख़िरत, बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः अगर गहवारा मौजूद हो तो औरत के जनाज़े पर वह रखकर उस पर चादर डाल दी जाये वरना बाँस की तिल्लियाँ या पेड़ की हरी शाख़ रखकर उस पर चादर डाल दें ताकि पर्दा रहे। (मुसाफ़िरे आख़िरत)

मसलाः ऊपर ज़िक्र हुए तरीक़े से जनाज़ा तैयार करके उस आख़िरत के मुसाफ़िर को नमाज़े जनाज़ा के लिये सब्र व तहम्मुल के साथ रुख़्सत करो, किसी को मुँह दिखलाना हो तो दिखला दो, उस मौक़े पर बाज़ औरतें बुलन्द आवाज़ से रोने और बयान करने लगती हैं, या जनाज़े के साथ घर से बाहर निकलती हैं और पर्दे से ग़ाफ़िल हो जाती हैं, इन सब बातों से ख़ुद बचना और दूसरों को बचाना ज़रूरी है वरना सब्र का अज़ीमुश्शान सवाब भी जाता रहेगा और आख़िरत का वबाल सर पर पड़ेगा।

जनाज़े को तैयार करने और कफ़नाने के बाद बचा हुआ सामान

मसलाः ग़ुस्ल और कफ़न-दफ़न के सामान में से अगर कुछ कपड़ा वग़ैरह बच जाये तो वह यूँ ही किसी को दे देना या ज़ाया कर देना जायज़ नहीं, बल्कि उसमें यह तफ़सील है कि अगर वह मय्यित के छोड़े हुए माल से लिया गया था तब तो उसे तर्का (छोड़े हुए माल) ही में रखना वाजिब है ताकि शरीअ़त के मुताबिक़ तर्के की तक़सीम में वह बचा हुआ सामान भी शामिल हो जाये, और अगर किसी और शख़्स ने अपनी तरफ़ से दिया था तो बचा हुआ सामान उसी को वापस कर दिया जाये। (आ़लमगीरी)

मसलाः अगर किसी लावारिस फ़क़ीर के कफ़न-दफ़न के लिये लोगों से चन्दा लिया गया था तो जो सामान या रक़म बचे वह चन्दा देने वालों को वापस किया जाये। अगर चन्दा देने वाले या उनका पता मालूम न हो सके तो किसी और लावारिस फ़क़ीर के कफ़न दफ़न में ख़र्च कर दिया जाये,

वरना फ़क़ीरों मिस्कीनों को सदक़े में दे दिया जाये। (दुर्रे मुख़्तार)

जनाज़ा उठाने का बयान

हदीसः हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया- जो आदमी ईमान की सिफ़त के साथ और सवाब की नीयत से किसी मुसलमान के जनाज़े के साथ जाये और उस वक़्त तक जनाज़े के साथ रहे जब तक उस पर नमाज़ पढ़ी जाये और उसके दफ़न से फ़रागत हो तो वह सवाब के दो क़ीरात लेकर वापस होगा, जिनमें से हर क़ीरात उहुद पहाड़ के बराबर होगा। और जो आदमी सिर्फ़ नमाज़े जनाज़ा पढ़कर वापस आ जाये दफ़न होने तक साथ न दे तो वह सवाब का (ऐसा ही) एक क़ीरात लेकर वापस होगा।

(मआरिफ़ुल-हदीस, बुख़ारी शरीफ़, मुस्लिम शरीफ़)

हदीसः हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया- जनाज़े को तेज़ ले जाया करो, अगर वह नेक है तो (क़ब्र उसके लिये) ख़ैर है (यानी अच्छी मन्ज़िल है) जहाँ तुम (तेज़ चलकर) उसे जल्द पहुँचा दोगे, और अगर इसके अलावा दूसरी सूरत है (यानी जनाज़ा नेक का नहीं है) तो एक बुरा बोझ (तुम्हारे कन्धों पर) है (तुम तेज़ चलकर जल्दी) उसको अपने कन्धों से उतार दोगे। (बुख़ारी व मुस्लिम, मआरिफ़ुल-हदीस)

हदीसः हदीस में है कि जो शख़्स (जनाज़े की) चारपाई चारों तरफ़ से उठा ले, (यानी चारों तरफ़ से कन्धा दे) तो उसके चालीस कबीरा गुनाह (यानी छोटे गुनाहों में जो बड़े वाले छोटे गुनाह हैं) बख़्श दिये जायेंगे। (बहिश्ती ज़ेवर इब्ने असाकर के हवाले से)।

मसलाः मय्यित अगर पड़ौसी या रिश्तेदार या कोई नेक परहेज़गार शख़्स हो तो उसके जनाज़े के साथ जाना नफ़िल नमाज़ पढ़ने से अफ़ज़ल है। (आलमगीरी)

मसलाः ज़रूरत पेश आ जाये तो जनाज़ा उजूरत देकर भी उठवाया जा सकता है। (आलमगीरी)

मसलाः औरतों का जनाज़े के साथ जाना मकरूहे तहरीमी है।

(बहिश्ती गौहर)

जनाज़ा ले जाने का सुन्नत तरीक़ा

मसलाः अगर मय्यित दूध पीता बच्चा या उससे कुछ बड़ा हो तो लोगों को चाहिये कि उसे हाथों पर ही ले जायें, यानी एक आदमी उसको अपने दोनों हाथों पर उठा ले, फिर उससे दूसरा आदमी ले ले, इसी तरह बदलते हुए ले जायें। (बहिश्ती गौहर)

और अगर मय्यित बड़ी (मर्द या औरत) हो तो उसको किसी चारपाई वग़ैरह पर लिटाकर ले जायें, सिरहाना आगे रखें और उसके चारों पायों को एक एक आदमी उठाये, मय्यित की चारपाई हाथों से उठाकर कन्धों पर रखना चाहिये, हाथों से उठाये बग़ैर माल व सामान की तरह गर्दन पर लादना मक्रूह है, पीठ पर लादना भी मक्रूह है, इसी तरह बिला उज़्र उसका किसी जानवर या गाड़ी वग़ैरह पर रखकर ले जाना भी मक्रूह है और उज़्र हो तो बिना कराहत जायज़ है, जैसे क़ब्रिस्तान बहुत दूर हो।

(बहिश्ती गौहर मय हाशिया)

मसलाः जनाज़े को दो पट्टियों (लकड़ियों) के दरमियान इस तरह उठाना भी मक्रूह है कि दो आदमियों ने उठा रखा हो एक ने आगे से दूसरे ने पीछे से, जैसे भारी सामान खींचा जाता है, हाँ मजबूरी में कोई हर्ज नहीं, जैसे रास्ता इतना तंग हो कि चार आदमी सुन्नत के मुताबिक़ उठाकर न गुज़र सकें। (आलमगीरी)

मसलाः जनाज़े को उठाने का मुस्तहब तरीक़ा यह है कि पहले मय्यित की दाहिनी तरफ़ का अगला पाया अपने दाहिने कंन्धे पर रखकर कम से कम दस क़दम चले, उसके बाद दाहिनी तरफ़ का पिछला पाया अपने दाहिने कन्धे पर रखकर दस क़दम चले, उसके बाद मय्यित की बाईं तरफ़ का अगला पाया अपने बायें कन्धे पर रखकर, फिर पिछला बायाँ पाया अपने बायें कन्धे पर रखकर कम से कम दस-दस क़दम चले, ताकि चारों पायों को मिलाकर चालीस क़दम हो जायें। हदीस शरीफ़ में जनाज़े को कम से कम चालीस क़दम तक कन्धा देने की बड़ी फ़ज़ीलत आई है।

(बहिश्ती गौहर, दुर्रे मुख़्तार)

मसलाः जनाज़े को तेज़ क़दम ले जाना सुन्नत है, मगर न इतनी तेज़ कि लाश को हरकत व बेचैनी होने लगे। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः जनाज़े के साथ पैदल चलना मुस्तहब है, और अगर किसी सवारी पर हो तो जनाज़े के पीछे चले। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः जो लोग जनाज़े के साथ हों उनको जनाज़े के पीछे चलना मुस्तहब है अगरचे जनाज़े के आगे चलना भी जायज़ है, हाँ अगर जनाज़े से आगे बहुत दूर चला जाये या सब लोग जनाज़े के आगे हो जायें तो मक्रूह है, इसी तरह जनाज़े के आगे किसी सवारी पर चलना भी मक्रूह है।

(बहिश्ती गौहर)

मसलाः जो लोग जनाज़े के साथ हों उन्हें जनाज़े के दायें या बायें नहीं चलना चाहिये। (आ़लमगीरी)

मसलाः जनाज़े के साथ जो लोग हों उनका कोई दुआ़ या ज़िक्र बुलन्द आवाज़ से पढ़ना मक्रूह है। (बहिश्ती गौहर बहरुर्राइक़ के हवाले से)

मसलाः जो लोग जनाज़े के साथ न हों बल्कि कहीं बैठे हों और उनका इरादा जनाज़े के साथ जाने का भी न हो, उनको जनाज़ा देखकर खड़ा नहीं होना चाहिये। (बहिश्ती गौहर मराक़ियुल-फ़लाह के हवाले से)

मसलाः जो लोग जनाज़े के साथ जायें उनको इससे पहले कि कन्धों से जनाज़ा उतारा जाये बैठना मक्रूह है, हाँ अगर कोई ज़रूरत बैठने की पेश आये तो हर्ज नहीं। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः जो शख़्स जनाज़े के साथ हो उसे बग़ैर नमाज़े जनाज़ा पढ़े वापस नहीं आना चाहिये, लेकिन नमाज़ पढ़कर मय्यित वालों से इजाज़त लेकर आ सकता है और दफ़न के बाद इजाज़त की ज़रूरत नहीं।

(आ़लमगीरी)

हदीसः आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम जनाज़े के साथ पैदल तशरीफ़ ले जाते थे। (तिर्मिज़ी शरीफ़)

और जब तक जनाज़ा कन्धों से उतारा न जाता न बैठते, आपका इरशाद है किः

اِذَا اَتَيْتُمُ الْجَنَازَةَ فَلَا تَجْلِسُوْا حَتّٰى تُوْضَعَ.

तर्जुमाः जब तुम जनाज़े में आओ तो जब तक उसे न रख दिया जाये मत बैठो।

और एक रिवायत में है कि जब तक लहद (क़ब्र) में न रख दिया जाये न बैठो। (मदारिजुन्नुबुव्वत)

हदीसः जब आप जनाज़े के साथ जाते तो पैदल चलते और फ़रमाते कि मैं सवार नहीं होता जबकि फ़रिश्ते पैदल जा रहे हों। जब आप (दफ़न से) फ़ारिग़ हो जाते तो कभी पैदल वापस होते कभी सवार होकर।

(ज़ादुल मआ़द)

हदीसः रसूले अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम जब जनाज़े के साथ चलते तो ख़ामोश रहते और अपने दिल में मौत के मुताल्लिक़ गुफ़्तगू फ़रमाते। (इब्ने सअ़द)

चौथा बाब

नमाज़े जनाज़ा और दफ़न

नमाज़े जनाज़ा का बयान

मय्यित पर नमाज़े जनाज़ा पढ़ना भी फ़र्ज़े किफ़ाया है, यानी अगर किसी ने भी उस पर नमाज़ न पढ़ी तो जिन-जिन लोगों को मालूम था वे सब गुनाहगार होंगे और अगर सिर्फ़ एक शख़्स ने भी नमाज़ पढ़ ली तो फ़र्ज़े किफ़ाया अदा हो गया, क्योंकि नमाज़े जनाज़ा के लिये जमाअ़त शर्त या वाजिब नहीं, तफ़सील आगे आयेगी। (शामी)

मसलाः अगर जुमा के दिन किसी का इन्तिक़ाल हो गया तो अगर जुमा की नमाज़ से पहले कफ़न, नमाज़ और दफ़न वग़ैरह हो सके तो ज़रूर कर लें, सिर्फ़ इस ख़्याल से जनाज़ा रोके रखना कि नमाज़ में मजमा ज़्यादा होगा, मकरूह है। (शामी, बहिश्ती गौहर)

मसलाः अगर जनाज़ा उस वक़्त आया जबकि फ़र्ज़ नमाज़ की जमाअ़त (जुमा या ग़ैर जुमा की) तैयार हो तो पहले फ़र्ज़ और सुन्नतें पढ़ लें फिर जनाज़े की नमाज़ पढ़ें। (दुर्रे मुख़्तार व शामी)

मसलाः अगर ईद की नमाज़ के वक़्त जनाज़ा आया है तो पहले ईद की नमाज़ पढ़ें फिर ईद का ख़ुतबा पढ़ा जाये, उसके बाद जनाज़े की नमाज़

पढ़ें। (इम्दादुल-फ़तावा जिल्द 1 पेज 505)

मसलाः मरने वाले ने वसीयत की कि मेरी नमाज़े जनाज़ा फ़ुलाँ शख़्स पढ़ाये तो यह वसीयत मोतबर नहीं और शरई तौर पर इस पर अ़मल करना ज़रूरी नहीं, नमाज़े जनाज़ा पढ़ाने का जिन लोगों को शरीअ़त ने हुक्म दिया है उनकी तफ़सील आगे आयेगी, उन्हीं को इमाम बनाना चाहिये। लेकिन अगर वे ही किसी और को इमाम बनाना चाहें तो हर्ज नहीं।

(मराक़ियुल-फ़लाह पेज 324)

नमाज़े जनाज़ा का वक़्त

जिस तरह पाँचों वक़्त की नमाज़ों के लिये औक़ात (समय) मुक़र्रर हैं, नमाज़े जनाज़ा के लिये इस तरह कोई ख़ास वक़्त ज़रूरी या शर्त नहीं।

(बहिश्ती गौहर)

मसलाः नमाज़े फ़जर के बाद सूरज निकलने से पहले और नमाज़े अ़सर के बाद सूरज के पीला पड़ने से पहले नफ़िल और सुन्नतें पढ़ना तो मना हैं मगर नमाज़े जनाज़ा इन वक़्तों में भी बिला कराहत दुरुस्त है।

(आ़लमगीरी, शामी, इम्दादुल-फ़तावा)

मसलाः सूरज के निकलने, ज़वाल (ठीक दोपहर) और गुरूब के वक़्त दूसरी नमाज़ों की तरह नमाज़े जनाज़ा भी जायज़ नहीं।

सूरज निकलने का वक़्त सूरज का ऊपर का किनारा ज़ाहिर होने से शुरू होकर उस वक़्त तक रहता है जब तक कि सूरज पूरा निकल कर ऊँचा न हो जाये, यानी जब तक नज़र उस पर जम सकती हो, और गुरूब का वक़्त सूरज का रंग पीला पड़ जाने से शुरू होता है यानी जब से कि उस पर नज़र जमने लगे, और उस वक़्त तक रहता है जब तक कि सूरज पूरा ग़ायब न हो जाये।

(शामी जिल्द 1 पेज 341-344, आ़लमगीरी जिल्द 1 पेज 52, बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः ऊपर ज़िक्र हुए तीन वक़्तों में नमाज़े जनाज़ा पढ़ना उस सूरत में नाजायज़ है जबकि जनाज़ा इन वक़्तों से पहले आ चुका हो, और अगर जनाज़ा ख़ास सूरज निकलने, ज़वाल, या गुरूब ही के वक़्त आया तो उस पर नमाज़े जनाज़ा उस वक़्त भी जायज़ है। (आ़लमगीरी, दुर्रे मुख़्तार, शामी)

ख़ुलासाः ख़ुलासा यह कि नमाज़े जनाज़ा इन तीन वक़्तों (सूरज

निकलने, ज़वाल, गुरूब) के अ़लावा हर वक़्त बिला कराहत जायज़ है, जबकि जनाज़ा ख़ास इन्हीं वक़्तों में आया हो।

नमाज़े जनाज़ा फ़र्ज़ होने की शर्तें

नमाज़े जनाज़ा के फ़र्ज़ होने की वही सब शर्तें हैं जो और नमाज़ों के लिये हैं, यानी क़ुदरत होना, बालिग़ होना और मुसलमान होना, लेकिन इसमें एक शर्त और ज़्यादा है और वह यह कि उस शख़्स की मौत का इल्म भी हो, पस जिसको यह ख़बर न होगी वह माज़ूर है, नमाज़े जनाज़ा उस पर फ़र्ज़ नहीं। (बहिश्ती गौहर)

नमाज़े जनाज़ा के दुरुस्त होने की शर्तें और उनकी दो क़िस्में

नमाज़े जनाज़ा के सही होने के लिये दो क़िस्म की शर्तें हैं, एक क़िस्म की वे शर्तें हैं जो नमाज़ पढ़ने वालों में पाई जानी ज़रूरी हैं, वे वही हैं जो और नमाज़ों के लिये हैं। यानी पाकी, सतरे औ़रत (बदन के ज़रूरी हिस्सों का छुपा हुआ होना) क़िब्ले की तरफ़ मुँह करना और नीयत।

लेकिन नमाज़े जनाज़ा के लिये तयम्मुम, नमाज़ न मिलने के ख़ौफ़ से जायज़ है। जैसे नमाज़े जनाज़ा हो रही हो और वुज़ू करने में यह अन्देशा हो कि नमाज़ ख़त्म हो जायेगी तो तयम्मुम करके नमाज़ पढ़ लेना चाहिये अगरचे पानी मौजूद हो, बरख़िलाफ़ और नमाज़ों के, कि उनमें अगर वक़्त चले जाने का ख़ौफ़ हो तब भी पानी पर क़ुदरत की सूरत में तयम्मुम जायज़ नहीं। (बहिश्ती गौहर)

जूते पहनकर नमाज़ पढ़ना

आजकल बाज़ लोग जनाज़े की नमाज़ जूते पहने हुए पढ़ते हैं, उनके लिये ज़रूरी है कि वे जिस जगह खड़े हों वह जगह और जूते दोनों पाक हों वरना उनकी नमाज़ नहीं होगी। (बहिश्ती गौहर)

और अगर जूता पैर से निकाल दिया जाए और उस पर खड़े हों तो सिर्फ़ जूते के ऊपर का हिस्सा जो पैर से मुत्तसिल (मिला हुआ) हो उसका

पाक होना जरूरी है अगरचे तला नापाक हो, तथा इस सूरत में अगर वह ज़मीन भी नापाक हो तो कोई हर्ज नहीं। (बहिश्ती गौहर, इम्दादुल-अहकाम)

वे शर्तें जिनका मय्यित में पाया जाना ज़रूरी है

दूसरी किस्म की वे शर्तें जिनका मय्यित से ताल्लुक़ है वे छह हैं।

पहली शर्त

मय्यित का मुसलमान होना। पस काफिर और मुर्तद (जो मुसलमान होकर फिर दीन से फिर गया हो) पर नमाज़ सही नहीं। मुसलमान अगरचे फ़ासिक़ बिदअती हो उस पर नमाज़ सही है अलावा उन लोगों के जो मुसलमान हाकिमे वक़्त से बग़ावत करें या डाका डालते हों, या क़बाईली, वतनी, सूबाई या लिसानी तास्सुब (यानी क्षेत्रीय, भाषाई या वतनी भेदभाव) के लिये लड़ते हुए मारे जायें उन लोगों पर नमाज़े जनाज़ा नहीं पढ़ी जायेगी, बशर्ते कि ये लोग हाकिमे वक़्त से लड़ाई की हालत में क़त्ल हुए हों, और अगर लड़ाई के बाद क़त्ल किये गये या लड़ाई के बाद अपनी मौत से मर जायें तो फिर उनकी नमाज़ पढ़ी जायेगी। (बहिश्ती गौहर, दुर्रे मुख़्तार व शामी)

इसी तरह जिस शख़्स ने अपने बाप या माँ को क़त्ल किया हो और उसकी सज़ा में वह मारा जाये तो उसकी नमाज़ भी नहीं पढ़ी जायेगी।

(बहिश्ती गौहर)

जिस शख़्स ने खुदकुशी की हो सही यह है कि उसको गुस्ल दिया जाये और उस पर नमाज़े जनाज़ा भी पढ़ी जायेगी। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः मय्यित से मुराद वह शख़्स है जो ज़िन्दा पैदा होकर मर गया हो, या माँ के पेट से उसके जिस्म का अक्सर हिस्सा ज़िन्दगी की हालत में बाहर आया हो, और अगर मरा हुआ पैदा हो या अक्सर हिस्सा निकलने से पहले मर जाये तो उसकी नमाज़ दुरुस्त नहीं। (बहिश्ती गौहर व बहिश्ती ज़ेवर)

दूसरी शर्त

मय्यित के बदन और कफ़न का नजासते हक़ीक़िया और हुक्मिया (यानी ज़ाहिरी व अन्दरूनी नापाकी) से पाक होना। हाँ अगर नजासते हक़ीक़िया उसी के बदन से कफ़नाने के बाद ख़ारिज हुई हो और इस सबब

से उसका बदन या कफ़न बिल्कुल नापाक हो जाये तो कुछ हर्ज नहीं, नमाज़ दुरुस्त है, धोने की ज़रूरत नहीं। (बहिश्ती गौहर व शामी)

मसलाः अगर कोई मय्यित नजासते हुक्मिया से पाक न हो, यानी उसको गुस्ल न दिया गया हो और गुस्ल के नामुम्किन होने की सूरत में तयम्मुम भी न कराया गया हो, उस पर नमाज़ दुरुस्त नहीं। हाँ अगर उसका पाक होना मुम्किन न हो जैसे बिना गुस्ल या तयम्मुम कराये हुए दफ़न कर चुके हों और क़ब्र पर मिट्टी भी पड़ चुकी हो, मगर लाश फटी न हो तो उसकी नमाज़ उसकी क़ब्र पर उसी हालत में पढ़ी जायेगी। अगर किसी मय्यित पर बिना गुस्ल या तयम्मुम के नमाज़ पढ़ी गयी हो और वह दफ़न भी कर दिया गया हो और बाद दफ़न के मालूम हो कि उसको गुस्ल न दिया गया था तो जब तक लाश फटी न हो उसकी नमाज़ दोबारा उसकी क़ब्र पर पढ़ी जाये, इसलिये कि पहली नमाज़ सही नहीं हुई, हाँ अब चूँकि गुस्ल मुम्किन नहीं इसलिये नमाज़ हो जायेगी। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः अगर कोई मुसलमान बग़ैर नमाज़े जनाज़ा पढ़े हुए दफ़न कर दिया गया हो तो उसकी नमाज़ उसकी क़ब्र पर पढ़ी जायेगी जब तक कि उसकी लाश के फट जाने का अन्देशा न हो, जब ख़्याल हो कि अब लाश फट गयी होगी तो फिर नमाज़ न पढ़ी जाये और लाश फटने की मुद्दत हर जगह के एतिबार से मुख़्तलिफ़ (अलग-अलग) है, इसको मुतैयन नहीं किया जा सकता, यही ज़्यादा सही है। बाज़ ने तीन दिन और बाज़ ने दस दिन और बाज़ ने एक माह की मुद्दत बयान की है। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः मय्यित अगर किसी पाक पलंग या तख़्त या किसी पाक गद्दे या लिहाफ़ पर रखी हो तो उस पलंग वग़ैरह की जगह का पाक होना शर्त नहीं, ऐसी सूरत में बिना शक व शुब्हे के नमाज़े जनाज़ा दुरुस्त है, और अगर पलंग या तख़्त वग़ैरह भी नापाक है या मय्यित को बग़ैर तख़्त और पलंग के नापाक ज़मीन पर रख दिया है तो ऐसी सूरत में मय्यित की जगह के पाक होने के शर्त होने न होने में इख़्तिलाफ़ (मतभेद) है, बाज़ के नज़दीक शर्त है इसलिए नापाक तख़्त या नापाक ज़मीन पर रखने की सूरत में नमाज़े जनाज़ा दुरुस्त नहीं होगी और बाज़ के नज़दीक शर्त नहीं इसलिये नमाज़ सही हो जायेगी। (बहिश्ती गौहर)

तीसरी शर्त

मय्यित के जिस्मे वाजिबुस्सत्र (यानी बदन का वह हिस्सा जिसका छुपाना वाजिब और ज़रूरी है) का पोशीदा होना। अगर मय्यित नंगी हो तो उस पर नमाज़े जनाज़ा दुरुस्त नहीं। (बहिश्ती गौहर)

चौथी शर्त

मय्यित का नमाज़ पढ़ने वालों से आगे होना। अगर मय्यित नमाज़ पढ़ने वाले के पीछे हो तो नमाज़ दुरुस्त नहीं। (बहिश्ती गौहर)

पाँचवीं शर्त

मय्यित का या जिस चीज़ पर मय्यित हो उसका ज़मीन पर रखा हुआ होना। अगर मय्यित को लोग अपने हाथों पर उठाये हुए हों या किसी गाड़ी या जानवर पर हो और उसी हालत में उसकी नमाज़ पढ़ी जाये तो उज़्र के बग़ैर सही न होगी। (बहिश्ती गौहर, शामी जिल्द 1 पेजः 813)

छठी शर्त

मय्यित का वहाँ मौजूद होना। अगर मय्यित वहाँ मौजूद न हो तो नमाज़ सही न होगी।

नमाज़े जनाज़ा के फ़राईज़

नमाज़े जनाज़ा में दो चीज़ फर्ज़ हैं:

1. चार बार अल्लाहु अक्बर कहना। हर तकबीर यहाँ क़ायम-मक़ाम एक रक्अ़त के समझी जाती है, यानी जैसे दूसरी नमाज़ों में रक्अ़त ज़रूरी है वैसे ही नमाज़े जनाज़ा में हर तकबीर ज़रूरी है। (बहिश्ती गौहर)

अगर इमाम जनाज़े की नमाज़ में चार तकबीर से ज़ायद कहे तो हनफ़ी मुक्तदियों को चाहिये कि उन ज़ायद तकबीरों में उसकी इत्तिबा न करें, बल्कि चुप-चाप खड़े रहें, जब इमाम सलाम फेरे तो ख़ुद भी सलाम फेर दें। हाँ अगर ज़ायद तकबीरें इमाम से न सुनी जायें बल्कि मुकब्बिर (तकबीर कहने वाले) से तो मुक़्तदियों को चाहिये कि इत्तिबा करें और हर तक़बीर

को तकबीरे तहरीमा समझें, यह ख़्याल करके कि शायद इससे पहले जो चार तकबीरें मुकिब्बर नक़्ल कर चुका है वे ग़लत हों, इमाम ने अब तकबीरे तहरीमा कही हो। (दुर्रे मुख़्तार व शामी)

2. क़ियाम यानी खड़े होकर नमाज़े जनाज़ा पढ़ना, जिस तरह फ़र्ज़ और वाजिब नमाज़ों में क़ियाम फ़र्ज़ है और बिना उज़्र के उसका छोड़ना जायज़ नहीं, इसी तरह नमाज़े जनाज़ा भी बिना उज़्र के बैठकर पढ़ने से अदा नहीं होती। (बहिश्ती गौहर)

मसला: अज़ान व तकबीर और क़िराअत, रुकूअ, सज्दा, क़अ़दा (यानी बैठना) वग़ैरह इस नमाज़ में नहीं। (बहिश्ती गौहर)

नमाज़े जनाज़ा में तीन चीज़ें सुन्नत हैं

1. अल्लाह की हम्द (यानी तारीफ़ बयान) करना।
2. नबी सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर दुरूद शरीफ़ पढ़ना।
3. मय्यित के लिये दुआ़ करना। (बहिश्ती गौहर)

जमाअ़त इस नमाज़ में शर्त नहीं। पस अगर एक शख़्स भी जनाज़े की नमाज़ पढ़ ले तो फ़र्ज़ अदा हो जायेगा चाहे वह नमाज़ पढ़ने वाला औ़रत हो या मर्द, बालिग़ हो या नाबालिग़। और अगर किसी ने भी न पढ़ी तो सब गुनाहगार होंगे। (बहिश्ती गौहर व शामी)

मसला: लेकिन नमाज़े जनाज़ा की जमाअ़त में जितने ज़्यादा लोग हों उतना ही बेहतर है, इसलिये कि यह दुआ़ है मय्यित के लिये और चन्द मुसलमानों को जमा होकर बारगाहे इलाही में किसी चीज़ के लिये दुआ़ करना एक अ़जीब ख़ासियत रखता है रहमत के नाज़िल होने और क़बूल होने के लिये, लेकिन नमाज़े जनाज़ा में इस ग़र्ज़ से ताख़ीर (देरी) करना कि जमाअ़त ज़्यादा हो जाये, मक्रूह है। (बहिश्ती गौहर)

नमाज़े जनाज़ा का तरीक़ा

नमाज़े जनाज़ा का मसनून और मुस्तहब (पसन्दीदा) तरीक़ा यह है कि मय्यित को आगे रखकर इमाम उसके सीने के मुक़ाबिल खड़ा हो जाये और सब लोग यह नीयत करें।

نَوَيْتُ اَنْ اُصَلِّيَ صَلٰوةَ الْجَنَازَةِ لِلّٰهِ تَعَالٰى وَدُعَاءً لِلْمَيِّتِ.

"यानी मैंने यह इरादा किया कि नमाज़ जनाज़ा पढ़ूँ जो ख़ुदा की नमाज़ है और मय्यित के लिये दुआ है।

यह नीयत करके दोनों हाथ तकबीरे तहरीमा की तरह कानों तक उठाकर एक बार अल्लाहु अक्बर कहकर दोनों हाथ नमाज़ की तरह बाँध ले, फिर "सुब्हानकल्लाहुम्-म" आख़िर तक पढ़ें, उसके बाद फिर एक बार "अल्लाहु अक्बर" कहें मगर इस बार हाथ न उठायें, उसके बाद दुरूद शरीफ़ पढ़ें और बेहतर यह है कि वही दुरूद शरीफ़ पढ़ें जो नमाज़ में पढ़ा जाता है। फिर एक बार अल्लाहु अक्बर कहें। अगर वह बालिग़ हो चाहे मर्द हो या औरत तो यह दुआ पढ़ें:

اَللّٰهُمَّ اغْفِرْ لِحَيِّنَا وَمَيِّتِنَا وَشَاهِدِنَا وَغَائِبِنَا وَ صَغِيْرِنَا وَ كَبِيْرِنَا وَذَكَرِنَا وَاُنْثَانَا،

اَللّٰهُمَّ مَنْ اَحْيَيْتَهٗ مِنَّا فَاَحْيِهٖ عَلَى الْاِسْلَامِ وَمَنْ تَوَفَّيْتَهٗ مِنَّا فَتَوَفَّهٗ عَلَى الْاِيْمَانِ.

अल्लाहुम्मग़फ़िर् लि-हय्यिना व मय्यितिना व शाहिदिना व ग़ाइबिना व सग़ीरिना व कबीरिना व ज़-करिना व उन्साना, अल्लाहुम्-म मन अहयैतहू मिन्ना फ़-अह्यिही अ़लल्-इस्लामि व मन त-वफ़्फ़ैतहू मिन्ना फ़-तवफ़्फ़हू अ़लल्-ईमान।

और बाज़ हदीसों में यह दुआ भी आई है:

اَللّٰهُمَّ اغْفِرْ لَهٗ وَارْحَمْهُ وَعَافِهٖ وَاعْفُ عَنْهُ وَاَكْرِمْ نُزُلَهٗ وَوَسِّعْ مَدْخَلَهٗ وَاغْسِلْهُ بِالْمَآءِ وَالثَّلْجِ وَالْبَرَدِ وَ نَقِّهٖ مِنَ الْخَطَايَا كَمَا يُنَقَّى الثَّوْبُ الْاَبْيَضُ مِنَ الدَّنَسِ وَاَبْدِلْهُ دَارًا خَيْرًا مِّنْ دَارِهٖ وَاَهْلًا خَيْرًا مِّنْ اَهْلِهٖ وَزَوْجًا خَيْرًا مِّنْ زَوْجِهٖ وَاَدْخِلْهُ الْجَنَّةَ وَاَعِذْهُ مِنْ عَذَابِ الْقَبْرِ وَعَذَابِ النَّارِ.

अल्लाहुम्मग़फ़िर् लहू वर्हमहु व आ़फ़िही वअ़्फ़ु अ़न्हु व अक्रिम नुज़ु-लहू व वस्सिअ़् मद्ख़-लहू वग़्सिल्हु बिल्माइ वस्सल्जि वल्ब-रदि व नक़्क़िही मिनल्-ख़ताया कमा युनक़्क़स्सौबुल्-अब्यज़ु मिनद्द-नसि व अब्दिल्हु दारन् ख़ैरम्-मिन दारिही व अहलन् ख़ैरम् मिन अहलिही व ज़ौजन् ख़ैरम् मिन ज़ौजिही व अदख़िल्हुल् जन्न-त व अअ़िज़्हु मिन अ़ज़ाबिल क़ब्रि व अ़ज़ाबिन्नारि।

और अगर दोनों दुआ़ओं को पढ़ ले तब भी बेहतर है, बल्कि अ़ल्लामा शामी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने रद्दुल-मोहतार में दोनों दुआ़ओं को एक ही में

मिलाकर लिखा है। इन दोनों दुआओं के अलावा और भी दुआयें हदीसों में आई हैं और उनको हमारे फ़ुक़हा ने भी नक़ल किया है, जिस दुआ को चाहे इख़्तियार कर ले।

और अगर मय्यित नाबालिग़ लड़का हो तो यह दुआ पढ़ेः

اَللّٰهُمَّ اجْعَلْهُ لَنَا فَرَطًا وَّاجْعَلْهُ لَنَآ اَجْرًا وَّذُخْرًا وَّاجْعَلْهُ لَنَا شَافِعًا وَّ مُشَفَّعًا.

अल्लाहुम्मज्अल्हु लना फ़-रतंव्-वज्अल्हु लना अज्रंव्-व ज़ुख़्रंव्-वज्अल्हु लना शाफ़िअंव्-व मुशफ़्फ़अन्।

और अगर मय्यित नाबालिग़ लड़की की हो तो भी यही दुआ है सिर्फ़ इतना फ़र्क़ है कि तीनों "इज्अल्हु" की जगह "इज्अल्हा" और "शाफ़िअंव्-व मुशफ़्फ़अन्" की जगह "शाफ़िअतंव्-व मुशफ़्फ़अतन्" पढ़ें। यानीः

अल्लाहुम्मज्अल्हा लना फ़-रतंव्-वज्अल्हा लना अज्रंव्-व ज़ुख़्रंव-वज्अल्हा लना शाफ़िअतंव्-व मुशफ़्फ़अतन्।

जब यह दुआ पढ़ चुके तो फिर एक बार अल्लाहु अक्बर कहें और इस बार भी हाथ न उठायें और इस तकबीर के बाद सलाम फेर दें, जिस तरह नमाज़ में सलाम फेरते हैं। इस नमाज़ में अत्तहिय्यात और क़ुरआन मजीद की क़िराअत वग़ैरह नहीं है। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः अगर किसी को नमाज़े जनाज़ा की दुआ याद न हो तो सिर्फ़ "अल्लाहुम्मग़फ़िर् लिल्मोमिनी-न वल् मोमिनाति" पढ़ ले, अगर यह भी न हो सके तो सिर्फ़ चार तकबीरें कह देने से भी नमाज़ हो जायेगी, इसलिये कि दुआ और दुरूद शरीफ़ फ़र्ज़ नहीं है। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः नमाज़े जनाज़ा के बाद वहीं हाथ उठाकर दुआ माँगना मक्रूह है सुन्नत से साबित नहीं, क्योंकि नमाज़े जनाज़ा ख़ुद दुआ है।

मसलाः नमाज़े जनाज़ा इमाम और मुक़्तदी दोनों के हक़ में बराबर है सिर्फ़ इतना फ़र्क़ है कि इमाम तकबीरें और सलाम बुलन्द आवाज़ से कहेगा और मुक़्तदी आहिस्ता आवाज़ से, बाक़ी चीज़ें 'सना' और दुआ और दुरूद मुक़्तदी भी आहिस्ता आवाज़ से पढ़ेंगे और इमाम भी आहिस्ता आवाज़ से पढ़ेगा। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः जनाज़े की नमाज़ में मुस्तहब है कि हाज़िरीन की तीन सफ़ें कर दी जायें यहाँ तक कि अगर सिर्फ़ सात आदमी हों तो एक आदमी

उनमें से इमाम बना दिया जाये और पहली सफ़ में तीन आदमी खड़े हों और दूसरी दो और तीसरी में एक। (बहिश्ती गौहर)

वे चीज़ें जिनसे नमाज़े जनाज़ा फ़ासिद हो जाती है

मसलाः जनाज़े की नमाज़ भी उन चीज़ों से फ़ासिद हो जाती है जिन चीज़ों से दूसरी नमाज़ों में फ़साद आता है, सिर्फ़ इतना फ़र्क़ है कि जनाज़े की नमाज़ में क़ह्क़हा (यानी ज़ोर से ठट्ठा मारकर हंसने) से वुज़ू नहीं जाता और औ़रत के बराबर में खड़े होने से भी उसमें फ़साद नहीं आता।

(बहिश्ती गौहर)

मस्जिद और वे मक़ामात जिनमें नमाज़े जनाज़ा मक्रूह है

जनाज़े की नमाज़ उस मस्जिद में पढ़ना मक्रूहे तहरीमी है जो पंज-वक़्ता नमाज़ों या जुमा या ईद की नमाज़ के लिये बनाई गयी हो, चाहे जनाज़ा मस्जिद के अन्दर हो या जनाज़ा मस्जिद के बाहर हो और नमाज़ पढ़ने वाले अन्दर हों। (1) हाँ जो ख़ास जनाज़े की नमाज़ के लिये बनाई गयी हो उसमें मक्रूह नहीं। (बहिश्ती गौहर)

अगर मस्जिद के बाहर कोई जगह न हो तो मजबूरी में मस्जिद में पढ़ना मक्रूह नहीं। (इम्दादुल-फ़तावा जिल्द 1 पेज 534)

हरमैन शरीफ़ैन (मक्का और मदीना शरीफ़) में इसी उज़्र की बिना पर मस्जिद में नमाज़ पढ़ी जाती है।

मसलाः आ़म रास्ते पर नमाज़े जनाज़ा पढ़ना कि जिससे गुज़रने वालों को तकलीफ़ हो मक्रूह है। (इम्दादुल-फ़तावा जिल्द 1 पेज 533)

---

(1) और अगर यह सूरत हो कि जनाज़ा और इमाम मय कुछ मुक़्तदियों के मस्जिद के बाहर हों और बाक़ी मुक़्तदी अन्दर हों तो इस सूरत को भी अ़ल्लाम शामी और दुर्रे मुख़्तार के मुसन्निफ़ ने मक्रूह क़रार दिया है, लेकिन इम्दादुल फ़तावा में फ़तावा बज़ाज़िया के हवाले से इसे जायज़ लिखा है, इसलिये एहतियात बहर हाल इसमें है कि बिला उज़्र इस सूरत से भी परहेज़ किया जाये।

(मुहम्मद रफ़ी)

मसलाः किसी दूसरे की ज़मीन पर उसकी इजाज़त के बग़ैर नमाज़े जनाज़ा पढ़ना मक्रूह है। (शामी जिल्द 1 पेज 827)

मसलाः मय्यित को नमाज़ के बग़ैर भी मस्जिद में दाख़िल करना मक्रूह है। (शामी जिल्द 1 पेज 827)

मसलाः जनाज़े की नमाज़ बैठकर या सवारी की हालत में पढ़ना जायज़ नहीं जबकि कोई उज़्र न हो। (बहिश्ती गौहर)

अगर एक वक़्त में कई जनाज़े जमा हो जायें

मसलाः अगर एक ही वक़्त में कई जनाज़े जमा हो जायें तो बेहतर यह है कि हर जनाज़े की नमाज़ अलग पढ़ी जाये, और अगर सब जनाज़ों की एक ही नमाज़ पढ़ी जाये तब भी जायज़ है और उस वक़्त चाहिये कि सब जनाज़ों की सफ़ क़ायम कर दी जाये जिसकी बेहतर सूरत यह है कि एक जनाज़े के आगे दूसरा जनाज़ा रख दिया जाये कि सबके पैर एक तरफ़ हों और सबके सर एक तरफ़ हों, और यह सूरत इसलिये बेहतर है कि इसमें सबका सीना इमाम के मुक़ाबिल हो जायेगा जो सुन्नत है। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः अगर जनाज़े मुख़्तलिफ़ असनाफ़ (क़िस्मों) के हों तो इस तरतीब से सफ़ क़ायम की जाये कि इमाम के क़रीब मर्दों के जनाज़े उनके बाद लड़कों के और उनके बाद बालिग़ा औरतों के उनके बाद नाबालिग़ा लड़कियों के। (बहिश्ती गौहर)

जनाज़े की नमाज़ में मसबूक़ और लाहिक़ के अहकाम

मसलाः अगर कोई शख़्स जनाज़े की नमाज़ में ऐसे वक़्त पहुँचा कि कुछ तकबीर उसके आने से पहले हो चुकी हों तो जिस क़द्र तकबीरें हो चुकी हों उनके एतिबार से वह मसबूक़ समझा जायेगा (1) और उसको चाहिये कि फ़ौरन आते ही और नमाज़ों की तरह तकबीरे तहरीमा कहकर

(1) क्योंकि पीछे मालूम हो चुका है कि नमाज़े जनाज़ा में तकबीरे तहरीमा समेत हर तकबीर पूरी एक रकअ़त के हुक्म में है, पस जितनी तकबीरें छूटीं गोया कि उतनी ही रकअ़तें फ़ौत हो गईं। (शामी) रफ़ी

शरीक न हो जाये (1) बल्कि इमाम की अगली तकबीर का इन्तिज़ार करे, जब इमाम तकबीर कहे तो उसके साथ यह भी तकबीर कहे और यह तकबीर इसके हक़ में तकबीरे तहरीमा होगी, फिर जब इमाम सलाम फेर दे तो यह शख़्स अपनी गयी हुई तकबीरों को अदा करे (2) और उसमें कुछ पढ़ने की ज़रूरत नहीं। (3) (बहिश्ती गौहर)

मसलाः अगर कोई शख़्स ऐसे वक़्त पहुँचे की इमाम चौथी तकबीर भी कह चुका हो तो वह शख़्स उस चौथी तकबीर के हक़ में मसबूक़ न समझा जायेगा, उसको चाहिये कि फ़ौरन तकबीर कहकर इमाम के सलाम से पहले शरीक हो जाये और नमाज़ के ख़त्म होने के बाद अपनी गयी हुई तकबीरों को लौटाए। (बहिश्ती गौहर व शामी)

मसलाः अगर कोई शख़्स तकबीरे तहरीमा यानी पहली तकबीर या किसी और तकबीर के वक़्त मौजूद न था और नमाज़ में शिर्कत के लिये तैयार था मगर सुस्ती या किसी और वजह से शरीक न हुआ (4) तो उसको इमाम की अगली तकबीर का इन्तिज़ार न करना चाहिये बल्कि फ़ौरन तकबीर कहकर शरीके नमाज़ हो जाना चाहिये और उस तकबीर का पढ़ना और लौटाना उसके ज़िम्मे न होगा (5) बशर्ते कि इससे पहले कि इमाम अगली तकबीर कहे, यह उस तकबीर को अदा कर ले, अगरचे इमाम की

---

(1) क्योंकि यह तकबीर भी निकली हुई रकअ़त की तरह है और मसबूक़ अपनी फ़ौत होने वाली कोई रकअ़त नमाज़ में दाख़िल होते ही नहीं पढ़ता बल्कि इमाम के सलाम फेरने के बाद पढ़ता है, इसी तरह यह फ़ौत हो जाने वाली सब तकबीरें भी इमाम के सलाम के बाद पढ़ी जायेंगी। (शामी) रफ़ी

(2) लेकिन अगर वह शख़्स इमाम की अगली तकबीर का इन्तिज़ार किये बग़ैर फ़ौरन आते ही अल्लाहु अकबर कहकर नमाज़ में शरीक हो गया तो फिर भी नमाज़ दुरुस्त हो जायेगी लेकिन शरीक होते वक़्त जो तकबीर उसने कही वह उन चार तकबीरों में शुमार न होगी जो नमाज़े जनाज़ा में फ़र्ज़ हैं, इसलिये जब इमाम सलाम फेर दे तो उस शख़्स पर लाज़िम है कि जो तकबीरें उसके नमाज़ में शामिल होने से पहले हो चुकी थीं वे पढ़कर फिर सलाम फेरे। (शामी) रफ़ी

(3) यानी जनाज़े की नमाज़ का मसबूक़ जब अपनी फ़ौत हो जाने वाली तकबीरें (इमाम के सलाम के बाद) पढ़े और यह ख़ौफ़ हो कि अगर दुआ पढ़ेगा तो देर हो जायेगी यानी जनाज़ा उसके सामने से उठा लिया जायेगा तो दुआ न पढ़े बल्कि सिर्फ़ फ़ौत हो जाने वाली तकबीरें लगातार पढ़कर सलाम फेर दे। (शामी) रफ़ी

(4) यानी तकबीर न कही (जैसा की शामी में है) रफ़ी

(5) यानी इमाम के सलाम के बाद (शामी) रफ़ी

साथ न हो। हाँ उस तकबीर से पहले जो तकबीरें फ़ौत हो चुकीं उन तकबीरों में यह शख़्स मसबूक़ है, वे तकबीरें यह इमाम के सलाम के बाद अदा करे। (शामी व बहिश्ती गौहर)

मसला: जनाज़े की नमाज़ का मसबूक़ (जिसकी एक या एक से ज़ायद तकबीरें छूट गयी हों) जब अपनी गयी हुई तकबीरों को अदा करे और यह ख़ौफ़ हो कि अगर दुआ पढ़ेगा तो देर होगी और जनाज़ा उसके सामने से उठा लिया जायेगा तो दुआ न पढ़े। (बहिश्ती गौहर, शामी)

मसला: जनाज़े की नमाज़ में अगर कोई शख़्स लाहिक़ हो जाये तो उसका वही हुक्म है जो और नमाज़ों के लाहिक़ का है। (1) (बहिश्ती गौहर)

---

(1) तफ़सील इसकी यह है कि मुक़्तदी (यानी इमाम के पीछे नमाज़ पढ़ने वाले) की दो क़िस्में हैं: **1. मसबूक़ 2. लाहिक़।** मसबूक़ वह मुक़्तदी है जिसकी एक या ज़ायद रक्अ़तें जमाअ़त में शामिल होने से पहले फ़ौत हो गयी हों, और लाहिक़ वह मुक़्तदी है जिसकी कोई एक या ज़ायद या सब रक्अ़तें जमाअ़त में शामिल होने के बाद फ़ौत हुई हों, चाहे किसी उज़्र से जैसे नमाज़ में सो जाने या ग़ाफ़िल हो जाने के सबब या बिला उज़्र सिर्फ़ सुस्ती वग़ैरह की वजह से।

(पिछले पेज का बक़िया हाशिया) चूँकि नमाज़े जनाज़ा में तकबीरों का वही हुक्म है जो दूसरी नमाज़ों में रक्अ़तों का है इसलिये नमाज़े जनाज़ा में अगर किसी की कुछ तकबीरें जमाअ़त में शामिल होने से पहले फ़ौत हो गयीं तो वह मसबूक़ है, और जिसकी तकबीरें नमाज़ में शामिल होने के बाद फ़ौत हुईं वह लाहिक़ है।

मसबूक़ और लाहिक़ के हुक्म में यह फ़र्क़ है कि मसबूक़ अपनी फ़ौत हो जाने वाली रक्अ़तें इमाम के सलाम फेरने के बाद अदा करता है, और लाहिक़ पहले अपनी फ़ौत हो जाने वाली रक्अ़तें पढ़ता है फिर अगर जमाअ़त बाक़ी हो तो इमाम की पैरवी करता है वरना बाक़ी नमाज़ भी तन्हा पूरी करके सलाम फेर देता है।

नमाज़े जनाज़ा में मसबूक़ का हुक्म दूसरी नमाज़ों से बाज़ उमूर में मुख़्तलिफ़ है जिसकी तफ़सील पीछे किताब में बयान हो चुकी है, लेकिन लाहिक़ का हुक्म नमाज़े जनाज़ा और दूसरी नमाज़ों में बराबर है इसलिये जो शख़्स नमाज़े जनाज़ा में लाहिक़ हो जाये यानी अल्लाहु अकबर कहकर शामिल हो जाने के बाद उसकी कोई एक या ज़ायद तकबीरें छूट जायें तो उसपर लाज़िम है कि पहले फ़ौत हो जाने वाली तकबीरें पढ़े फिर इमाम के साथ शरीक हो, लेकिन अगर फ़ौत हो जाने वाली तकबीरें पूरी पढ़ने से पहले ही इमाम ने अगली तकबीर कह दी तो उस तकबीर में उसके साथ शरीक न हो बल्कि फ़ौत हो जाने (यानी छूट जाने) वाली तकबीरें पूरी करके उस तकबीर को भी तन्हा पढ़ ले, फिर अगर इमाम की कोई तकबीर बाक़ी हो तो उसमें इमाम के साथ शरीक हो जाये और जब इमाम सलाम फेरे तो यह भी सलाम फेर दे, और अगर यह शख़्स अपनी फ़ौत हो जाने (यानी छूट जाने) वाली तकबीरें पढ़कर ऐसे वक़्त फ़ारिग़ हुआ जबकि इमाम सलाम भी फेर चुका था तो सलाम भी तन्हा फेर दे। (ये सब तफ़सील बहरुर्राइक़ और बहिश्ती गौहर से नक़ल की गयी है) रफ़ी

जनाज़े की नमाज़ में इमामत का हक़दार

मसलाः जनाज़े की नमाज़ में इमामत का इस्तेहक़ाक़ सबसे ज़्यादा हाकिमे वक़्त को है, चाहे तक़वा और परहेज़गारी में उससे बेहतर लोग भी वहाँ मौजूद हों। अगर हाकिमे वक़्त (बादशाह व हुकूमत का मुखिया) वहाँ न हो तो उसका नायब यानी जो शख़्स उसकी तरफ़ से हाकिमे शहर हो वह इमामत का हक़दार है, अगरचे नेकी व परहेज़गारी में उससे अफ़ज़ल लोग वहाँ मौजूद हों, और वह भी न हो तो क़ाज़ी-ए-शहर, वह भी न हो तो उसका नायब, इन लोगों के होते हुए दूसरे को इमाम बनाना बिना इनकी इजाज़त के जायज़ नहीं, इन्हीं का इमाम बनाना वाजिब है, बशर्ते कि मय्यित के रिश्तेदारों में से कोई शख़्स इससे अफ़ज़ल न हो, वरना मय्यित के वे रिश्तेदार जिनको वली होने का हक़ हासिल है इमामत के मुस्तहिक़ हैं, या वह शख़्स जिसको वे इजाज़त दें।

अगर मय्यित के वली की इजाज़त के बग़ैर किसी ऐसे शख़्स ने नमाज़ पढ़ा दी हो जिसको इमामत का हक़ नहीं और वली उस नमाज़ में शरीक न हो तो वली को इख़्तियार है कि उस मय्यित पर बाद में नमाज़ पढ़ ले, यहाँ तक कि अगर मय्यित दफ़न हो चुकी हो तब भी उसकी क़ब्र पर नमाज़ पढ़ सकता है उस वक़्त तक कि लाश के फट जाने का ख़्याल न हो।

(बहिश्ती गौहर व बहरुर्राईक़)

मसलाः अगर मय्यित के वली की इजाज़त के बग़ैर ऐसे शख़्स ने नमाज़ पढ़ाई हो जिसको इमामत का हक़ हासिल है तो फिर मय्यित का वली दोबारा नमाज़ नहीं लौटा सकता, इसी तरह अगर मय्यित के वली ने बादशाहे वक़्त वग़ैरह के मौजूद न होने की हालत में नमाज़ पढ़ाई हो तो बादशाहे वक़्त वग़ैरह को उसके लौटाने का इख़्तियार नहीं है बल्कि सही यह है कि अगर मय्यित का वली बादशाहे वक़्त वग़ैरह के मौजूद होने की हालत में नमाज़ पढ़ाये तब भी बादशाहे वक़्त वग़ैरह को नमाज़ लौटाने का इख़्तियार न होगा अगरचे ऐसी हालत में बादशाहे वक़्त को इमाम न बनाने से वाजिब के छोड़ने का गुनाह मय्यित के वलियों पर होगा। (बहिश्ती गौहर)

हासिल यह है कि एक जनाज़े की नमाज़ कई बार पढ़ना जायज़ नहीं मगर मय्यित के वली को जबकि उसकी बेइजाज़त किसी ग़ैर मुस्तहिक़ ने

नमाज़ पढ़ा दी हो तो दोबारा पढ़ना दुरुस्त है। (बहिश्ती गौहर)

नमाज़े जनाज़ा ग़ायबाना

हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ग़ायबाना नमाज़े ज़नाज़ा नहीं पढ़ते थे लेकिन यह सही है कि आपने हब्शा के बादशाह नजाशी की नमाज़े जनाज़ा ग़ायबाना पढ़ी और हज़रत मुआ़विया लैसी रज़ियल्लाहु अ़न्हु पर भी ग़ायबाना नमाज़े जनाज़ा पढ़ी, लेकिन हो सकता है कि (मय्यित हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर ज़ाहिर कर दी गयी हो या) यह बात हुज़ूर सल्ल. की ख़ुसूसियत हो। (1) (फ़तावा शामी)

ग़ायबाना नमाज़े जनाज़ा को इमाम अबू हनीफ़ा और इमाम मालिक रहमतुल्लाहि अ़लैहिमा बिल्कुल मना करते हैं (मदारिजुन्नुबुव्वत) और हनफ़ी इमामों का इसके जायज़ न होने पर इत्तिफ़ाक़ है। जनाज़े का सामने मौजूद होना नमाज़े जनाज़ा के सही होने की शर्त है। (2)

(शामी, अल्बह्र, बहिश्ती गौहर, मदारिजुन्-नुबुव्वत)

---

(1) जिसकी दलील यह है कि आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ज़िन्दगी में उन दोनों हज़रात के अ़लावा और भी बहुत से सहाबा-ए-किराम की वफ़ात हुई, क़ुर्रा सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम जो आपके बहुत ही अ़ज़ीज़ सहाबा में से थे वे सफ़र में शहीद हुए, हज़रत जाफ़र तैयार रज़ियल्लाहु अ़न्हु जो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के चचाज़ाद भाई थे, हज़रत ज़ैद बिन हारिसा रज़ियल्लाहु अ़न्हु जो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के मुतबन्ना (मुँह बोले बेटे) थे इन सबका इन्तिक़ाल सफ़र और जिहाद की हालत में हुआ, आपको मदीना तैयबा में ख़बर मिली तो आपने उनकी ग़ायबाना नमाज़े जनाज़ा नहीं पढ़ी, हालाँकि मदीना तैयबा में वफ़ात पाने वाले हज़रात पर नमाज़े जनाज़ा पढ़ने का आप बहुत एहतिमाम फ़रमाते थे और आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हिदायत फ़रमा रखी थी कि "तुम में से किसी का भी इन्तिक़ाल हो तो मुझे ज़रूर ख़बर करो, क्योंकि उसपर मेरा नमाज़ पढ़ना उसके लिये रहमत है"।

इससे मालूम हुआ कि जिन दो हज़रात पर आपने नमाज़े जनाज़ा पढ़ी यह या तो उन दोनों हज़रात की ख़ुसूसियत थी या आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़ुसूसियत थी कि अल्लाह तआ़ला ने उनकी मय्यित को नमाज़ के वक़्त आपके सामने कर दिया था। 'फ़तहुल क़दीर' में अ़ल्लामा इब्नुल हुमाम रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इसके दलीलें तफ़सील से बयान फ़रमायी हैं। (रफ़ी)

(2) अगरचे सिर्फ़ इमाम ही के सामने हो। (शामी जिल्द1 पेजः 813)

जनाज़े में तादाद के ज़्यादा होने की बरकत और अहमियत

हज़रत आयशा सिद्दीक़ा रज़ियल्लाहु अन्हा से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया- जिस मय्यित पर मुसलमानों की एक बड़ी जमाअत नमाज़ पढ़े जिनकी तायदाद सौ तक पहुँच जाये और वे सब अल्लाह की बारगाह में उस मय्यित के लिये सिफ़ारिश करें (यानी मग़फ़िरत व रहमत की दुआ करें) तो उनकी यह सिफ़ारिश और दुआ ज़रूर ही क़बूल होगी। (मुस्लिम शरीफ़, मआरिफ़ुल-हदीस)

हज़रत मालिक बिन हुबैरा रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से आपका यह इरशाद सुना कि जिस मुसलमान बन्दे का इन्तिक़ाल हो और मुसलमानों की तीन सफ़ें उसकी नमाज़े जनाज़ा पढ़ें (और उसके लिये मग़फ़िरत व जन्नत की दुआ करें) तो ज़रूर ही अल्लाह तआला उसके वास्ते (मग़फ़िरत और जन्नत) वाजिब कर देता है।

मालिक बिन हुबैरा रज़ियल्लाहु अन्हु का यह दस्तूर था कि जब वह नमाज़े जनाज़ा पढ़ने वालों की तायदाद कम महसूस करते तो इसी हदीस की वजह से उन लोगों को तीन सफ़ों में तक़सीम कर देते थे।

(अबू दाऊद, मआरिफ़ुल-हदीस)

मसलाः जब मय्यित की नमाज़ से फ़राग़त हो जाये तो फ़ौरन उसके दफ़न करने के लिये जहाँ क़ब्र खुदी हो ले जाना चाहिये, जनाज़ा उठाने और ले जाने का मुफ़स्सल तरीक़ा पीछे बयान हो चुका है। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः नमाज़े जनाज़ा के बाद अहले जनाज़ा की इजाज़त के बग़ैर दफ़न से पहले वापस न होना चाहिये और दफ़न के बाद बग़ैर इजाज़त के भी वापस हो सकते हैं। (आलमगीरी)

दफ़न का बयान

मय्यित के नहलाने, कफ़न और नमाज़े जनाज़ा की तरह दफ़न करना भी फ़र्ज़े किफ़ाया है, अगर किसी ने भी यह फ़र्ज़ अदा न किया तो सब

गुनाहगार होंगे। (बहिश्ती गौहर, आलमगीरी)

क़ब्र की तफ़सील

क़ब्र कम से कम मय्यित के आधे क़द के बराबर गहरी खोदी जाये और पूरे क़द के बराबर हो तो ज़्यादा बेहतर है। क़द से ज़्यादा न होनी चाहिये। और उसके क़द के मुवाफ़िक़ लम्बी हो और चौड़ाई आधे क़द के बराबर, बग़ली क़ब्र (1) सन्दूक़ी (क़िस्म) के मुक़ाबले में बेहतर है। (2) हाँ अगर ज़मीन बहुत नर्म हो और बग़ली खोदने से क़ब्र के बैठ जाने का अन्देशा हो तो फिर बग़ली क़ब्र न खोदी जाये। (शामी, मदारिजुन्नुबुव्वत)

यह भी जायज़ है कि अगर ज़मीन नर्म या सैलाब से पीड़ित हो और बग़ली क़ब्र न खोदी जा सके तो मय्यित को किसी सन्दूक़ (ताबूत) में रखकर दफ़न कर दें, सन्दूक़ चाहे लकड़ी का हो या पत्थर का हो या लोहे का, बेहतर यह है कि सन्दूक़ में मिट्टी बिछा दी जाये।

(शामी, बहर, बहिश्ती गौहर)

बग़ली क़ब्र को कच्ची ईंटें और नरकुल वग़ैरह लगाकर बन्द करना चाहिये, पुख़्ता ईंटें या लकड़ी के तख़्ते लगाकर बन्द करना मकरूह है, लेकिन जहाँ ज़मीन नर्म या सैलाबी होने की वजह से क़ब्र के बैठ जाने का अन्देशा हो तो पुख़्ता ईंट या लकड़ी के तख़्तों से बन्द किया जा सकता है और ऐसी सूरत में सन्दूक़ (ताबूत) में रखना भी जायज़ है लेकिन सन्दूक़ी क़ब्र में मय्यित के ऊपर लकड़ी के तख़्ते या सीमेंट के सलेब लगाना बिना कराहत दुरुस्त है। (दुर्रे मुख़्तार)

हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम क़ब्र को ऊँचा न बनाते और उसे ईंट पत्थर वग़ैरह से पुख़्ता तामीर न करते और उसे क़लई और सख़्त मिट्टी से न लीपते, क़ब्र के ऊपर कोई इमारत और क़ुब्बा न बनाते और ये सब बिद्अ़त

(1) यानी लहद, इसका तरीक़ा यह है कि क़ब्र खोदकर उसके अन्दर क़िबला की जानिब एक गढ़ा खोदा जाये जिसमें मय्यित को रखा जा सके, यह एक छोटी सी कोठरी की तरह होता है। (शामी) रफ़ी)

(2) इसका तरीक़ा यह है कि तक़रीबन एक फ़ुट क़ब्र खोदकर उसके बीचों बीच एक गढ़ा मय्यित के आधे क़द या पूरे क़द के बराबर गहरा खोदा जाये जिसकी लम्बाई मय्यित के क़द के बराबर हो और चौड़ाई ज़्यादा से ज़्यादा आधे क़द के बराबर। (शामी में इसे ज़्यादा तफ़सील से बयान किया गया है) रफ़ी

और मक्रूह है।

हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की क़ब्रे अनवर और आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के दोनों सहाबा की क़ब्रें भी ज़मीन के (तक़रीबन) बराबर हैं, सुर्ख़ पत्थर के टुक्ड़े उन पर चिपके हुए हैं।

(मदारिजुन्नुबुव्वत, सफ़रुस्सआ़दत)

आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की क़ब्र शरीफ़ की हैयत और शक्ल ऊँट के कोहान के जैसी है। (शामी, बुख़ारी शरीफ़ के हवाले से)

हज़रत सअ़द बिन अबी वक़्क़ास रज़ियल्लाहु अ़न्हु के साहिबज़ादे आ़मिर रज़ियल्लाहु अ़न्हु बयान करते हैं कि (मेरे वालिद) सअ़द बिन अबी वक़्क़ास रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने अपनी वफ़ात की बीमारी में वसीयत फ़रमाई थी कि मेरे वास्ते बग़ली क़ब्र बनाई जाये और उसको बन्द करने के लिये कच्ची ईंटें खड़ी कर दी जायें जिस तरह रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के लिये किया गया था। (मुस्लिम शरीफ़, मआ़रिफ़ुल-हदीस)

आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नते तैयबा यह थी कि लहद (बग़ली क़ब्र) बनवाते (1) और क़ब्र गहरी करवाते और मय्यित के सर और पाँव की जगह को खुली करवाते। (2) (ज़ादुल मआ़द)

मसलाः किसी मय्यित को छोटा हो या बड़ा, घर के अन्दर दफ़न न करना चाहिये, इसलिये कि यह बात अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के साथ ख़ास है। (बहिश्ती गौहर, दुर्रे मुख़्तार, बहर)

मसलाः क़ब्र के लिये अगर आ़म मुसलमानों के क़ब्रिस्तान में जगह न मिले या किसी ख़ास वजह से इजाज़त न हो तो क़ब्र के लिये ज़मीन ख़रीद ली जाये, उसकी क़ीमत भी दूसरे कफ़न दफ़न के समान की तरह मय्यित के छोड़े हुए माल में से अदा की जायेगी। (मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 32)

लाश को एक शहर से दूसरे शहर ले जाना

मसलाः लाश को एक शहर से दूसरे शहर में दफ़न के लिये ले जाना

(1) रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की क़ब्र मुबारक भी लहद यानी बग़ली ही बनाई गयी थी। बाज़ रिवायतों से मालूम होता है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़माने में सन्दूक़ी क़ब्र भी जिसको अ़रबी में "शिक़" कहते हैं मौक़े के मुताबिक़ बनाई गयी है, लेकिन अफ़ज़ल लहद यानी बग़ली क़ब्र ही का तरीक़ा है। (मआ़रिफ़ुल हदीस) रफ़ी

(2) बज़ाहिर इसका मतलब यह है कि क़ब्र की लम्बाई मय्यित के क़द से कुछ ज़ायद रखी जाती थी ताकि सर और पाँव की जगह खुली हुई रहे। (रफ़ी)

ख़िलाफ़े औला (यानी अच्छा और पसन्दीदा नहीं) है, जबकि वह दूसरा मक़ाम एक दो मील से ज़्यादा न हो। और अगर इससे ज़्यादा दूरी पर हो तो जायज़ नहीं और दफ़न के बाद लाश खोदकर ले जाना तो हर हालत में नाजायज़ है। (बहिश्ती गौहर)

क़ब्र में उतारना

जनाज़े को पहले क़िब्ले की सिम्त के किनारे के पास इस तरह रखें कि क़िब्ला मय्यित की दाईं तरफ़ हो, फिर उतारने वाले क़िब्ला-रुख़ खड़े होकर मय्यित को एहतियात से उठाकर क़ब्र में रख दें। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः क़ब्र में रखते वक़्त "बिस्मिल्लाहि व बिल्लाहि व अ़ला मिल्लति रसूलिल्लाहि" कहना मुस्तहब है। (बहिश्ती गौहर व ज़ादुल मआ़द)

मसलाः क़ब्र में उतारने वालों का ताक़ (बेजोड़ जैसे तीन, पाँच वग़ैरह) या जुफ़्त (जोड़ेदार जैसे दो, चार, छह वग़ैरह) होना मसनून नहीं, नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को आपकी क़ब्रे मुक़द्दस में चार आदमियों ने उतारा था। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः क़ब्र में मय्यित को उतारते वक़्त या दफ़न के बाद अज़ान कहना बिद्अ़त है। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः मय्यित को क़ब्र में रखकर दाहिने पहलू पर उसको क़िब्ला-रू कर देना सुन्नत है, सिर्फ़ मुँह क़िब्ले की तरफ़ कर देना काफ़ी नहीं बल्कि पूरे बदन को अच्छी तरह करवट दे देना चाहिये।

(बहिश्ती गौहर व इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत)

मसलाः क़ब्र में रखने के बाद कफ़न की वह गिरह जो कफ़न खुल जाने के ख़ौफ़ से दी गयी थी खोल दी जाये। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः औ़रत को क़ब्र में रखते वक़्त पर्दा करके रखना मुस्तहब है, और अगर मय्यित के बदन के ज़ाहिर हो जाने का ख़ौफ़ हो तो फिर पर्दा करना वाजिब है। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः मर्दों के दफ़न के वक़्त क़ब्र पर पर्दा करना न चाहिये, हाँ अगर उज़्र हो, जैसे पानी बरस रहा हो या बर्फ़ गिर रही हो या धूप सख़्त हो तो फिर जायज़ है। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः जब मय्यित को क़ब्र में रख दें तो क़ब्र अगर बग़ली (लहद) है

तो उसे कच्ची ईंटों और नरकुल वग़ैरह से बन्द कर दें, और अगर क़ब्र सन्दूक़ी यानी शिक़ है तो उसके ऊपर लकड़ी के तख़्ते या सिमेंट के सलेब रखकर बन्द कर दिया जाये, तख़्तों वग़ैरह के दरमियान जो सूराख़ और झिरयाँ रह जायें उनको कच्चे ढेलों, पत्थरों या गारे से बन्द कर दें, उसके बाद मिट्टी डालना शुरू कर दें। (बहिश्ती गौहर व शामी)

मसलाः मिट्टी डालते वक़्त मुस्तहब है कि सिरहाने की तरफ़ से शुरूआत की जाये और हर शख़्स तीन मर्तबा अपने दोनों हाथों में मिट्टी भरकर क़ब्र में डाल दे और पहली मर्तबा डालते वक़्त कहेः **"मिन्हा ख़लक़्नाकुम"** और दूसरी मर्तबा कहेः **"व फ़ीहा नुअ़ीदुकुम"** और तीसरी मर्तबा कहेः **"व मिन्हा नुख़्रिजुकुम ता-रतन् उख़्रा"**। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः जिस क़द्र मिट्टी उसकी क़ब्र से निकली हो वह सब उस पर डाल दें, उससे ज़्यादा मिट्टी डालना मक्रूह है, जबकि बहुत ज़्यादा हो, कि क़ब्र एक बालिश्त से बहुत ऊँची हो जाये। और अगर बाहर की मिट्टी थोड़ी सी हो तो मक्रूह नहीं। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः क़ब्र का मुरब्बा (चौकोर) बनाना मक्रूह है। मुस्तहब यह है कि उठी हुई ऊँट के कोहान की तरह बनाई जाये, उसकी बुलन्दी एक बालिश्त या इससे कुछ ज़्यादा होनी चाहिये।

(बदाय जिल्द 1 पेज 320, मराक़ियुल-फ़लाह पेज 335, बहिश्ती गौहर)

मसलाः मिट्टी डाल चुकने के बाद क़ब्र पर पानी छिड़क देना मुस्तहब है। (बहिश्ती गौहर)

दफ़न के दीगर और विभिन्न मसाईल

मसलाः अगर मय्यित को क़ब्र में क़िब्ला रू करना याद न रहे और दफ़न करने और मिट्टी डालने के बाद ख़्याल आये तो फिर क़िब्ला-रू करने के लिये उसकी क़ब्र खोलना जायज़ नहीं। हाँ अगर सिर्फ़ तख़्ते रखे गये हों मिट्टी न डाली गयी हो तो तख़्ते हटाकर उसको क़िबला रू करना देना चाहिये। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः अगर कोई शख़्स पानी के जहाज़ या कश्ती पर मर जाये और ज़मीन वहाँ से इस क़द्र दूर हो कि लाश के ख़राब होने का ख़ौफ़ हो तो उस वक़्त चाहिये कि गुस्ल और तक्फ़ीन और नमाज़ से फ़रागत करके उसके

साथ कोई वज़नी चीज़ पत्थर या लोहा वग़ैरह बाँधकर उसको दरिया में डाल दें। और अगर किनारा इस क़द्र दूर न हो और वहाँ जल्दी उतरने की उम्मीद हो तो उस लाश को रख छोड़ें और पहुँचकर ज़मीन में दफ़न कर दें।

(बहिश्ती गौहर व आ़लमगीरी)

मसलाः जब क़ब्र में मिट्टी पड़ चुके तो उसके बाद मय्यित का क़ब्र से निकालना जायज़ नहीं, हाँ अगर किसी आदमी की हक़-तलफ़ी होती हो तो निकालना जायज़ है।

मिसालः 1. जिस ज़मीन में उसको दफ़न किया है वह किसी दूसरे की मिल्क हो और वह उसके दफ़न पर राज़ी न हो।

मिसालः 2. किसी शख़्स का माल क़ब्र में रह गया हो। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः अगर कोई औ़रत मर जाये और उसके पेट में ज़िन्दा बच्चा हो तो उसका पेट चाक करके वह बच्चा निकाल लिया जाये। इसी तरह अगर कोई शख़्स किसी का माल निगल कर मर जाये और माल वाला माँगे तो वह माल उसका पेट चाक करके निकाल लिया जाये, लेकिन अगर मय्यित माल छोड़कर मरा है तो उसके छोड़े हुए माल में से वह माल अदा कर दिया जाये और पेट चाक न किया जाये। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः एक क़ब्र में एक से ज़्यादा लाशों को दफ़न नहीं करना चाहिये लेकिन सख़्त ज़रूरत के वक़्त जायज़ है। फिर अगर सब मुर्दे मर्द हों तो जो उन सबमें अफ़ज़ल हो उसको आगे (क़िबले की तरफ़) रखें, बाक़ी सबको उससे पीछे दर्जा ब-दर्जा रख दें। और अगर कुछ मर्द हों, कुछ औ़रतें और कुछ बच्चे हों तो मर्दों को आगे रखें, फिर बच्चों को, फिर औ़रतों को रख दें और हर दो मय्यित के दरमियान मिट्टी से कुछ आड़ बना दें।

(बहिश्ती गौहर व आ़लमगीरी)

दफ़न करने के बाद

मय्यित के दफ़न से फ़ारिग़ होने के बाद आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और आपके सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम उस क़ब्र के पास खड़े होकर मय्यित के लिये मुन्कर-नकीर के जवाब में साबित-क़दम (जमे) रहने की दुआ़ खुद भी फ़रमाते और दूसरों को भी तलक़ीन फ़रमाते कि अपने भाई के लिये साबित-क़दम रहने की दुआ़ करो। (ज़ादुल मआ़द)

दफ़न के बाद थोड़ी देर (1) क़ब्र पर ठहरना और मय्यित के लिये मग़फ़िरत की दुआ़ करना या क़ुरआन शरीफ़ पढ़कर सवाब पहुँचाना मुस्तहब है। (शामी व बहिश्ती गौहर)

दफ़न के बाद क़ब्र के सिरहाने सूरः ब-क़रह की शुरू की आयतें "मुफ़्लिहून" तक और पायंती की तरफ़ सूरः ब-क़रह ही की आख़िरी आयतें "आ-मनर्रसूलु" से सूरत के ख़त्म तक पढ़ना मुस्तहब है।

(बैहक़ी, शोबुल ईमान, मआ़रिफ़ुल हदीस जिल्द 3 पेजः 485)

दफ़न के बाद की दुआ़

दफ़न के बाद यह दुआ़ भी पढ़ें तो बेहतर है: (2)

अल्लाहुम्मग़फ़िर लहू वर्हमहु व आ़फ़िही वअ्फ़ु अ़न्हु व अक्रिम् नुज़ु-लहू व वस्सिअ् मद्ख़-लहू वग़्सिलहु बिल्मा-इ वस्सलजि वल्बरदि व नक़्क़िही मिनल् ख़ताया कमा नक़्क़ैतस्-सौबल् अब्य-ज़ मिनद्द-नसि व अब्दिलहु दारन् ख़ैरन् मिन दारिही व अह्लन् ख़ैरन् मिन अहलिही व ज़ौजन् ख़ैरन् मिन ज़ौजिही व अदख़िलहुल् जन्न-त व अइ़ज़्हु मिन अज़ाबिल् क़ब्रि व अज़ाबिन्-नारि, अल्लाहुम्-म अन्-त रब्बुहा व अन्-त ख़लक़्तहा व अन्-त हदैतहा लिल्-इस्लामि व अन्-त क़बज़्-त रू-हहा व अन्-त अअ्लमु बिसिर्रिहा व अ़लानियतिहा जिअ्ना शु-फ़आ-अ फ़ग़्फ़िर् लहा (मआ़रिफ़ुल-हदीस)

मसलाः नमाज़े जनाज़ा के बाद मय्यित वालों की इजाज़त के बग़ैर दफ़न से पहले वापस न होना चाहिये, लेकिन दफ़न के बाद उनकी इजाज़त के बग़ैर भी वापस जा सकते हैं। (आ़लमगीरी जिल्द 1 पेज 165)

---

(1) फ़तावा आ़लमगीरी में है कि इतनी देर ठहरना मुस्तहब है जितनी देर में एक ऊँट ज़िब्ह करके उसका गोश्त तक़सीम हो सकता है। (आ़लमगीरी)

यह मतलब नहीं कि ऊँट ज़िब्ह किया जाये और गोश्त तक़सीम किया जाये, बल्कि सिर्फ़ वक़्त की मिक़दार (मात्र) बताना मक़सूद है कि जितना वक़्त इन दोनों कामों में ख़र्च होता है उतनी देर ठहरना चाहिये। अ़रब के लोग ये दोनों काम निहायत फुरती से कर लेने के आ़दी थे, अ़सर की नमाज़ के बाद ये दोनों काम अगर करे तो मग़रिब से बहुत पहले फ़ारिग़ हो जाते, जैसा कि हदीस की रिवायतों में ज़िक्र किया गया है। (रफ़ी)

(2) दफ़न के बाद क़ब्र पर दुआ़ बग़ैर हाथ उठाये पढ़ना चाहिये।

क़ब्र पर कतबा वग़ैरह लगाना

सही हदीस में है कि जब हज़रत उस्मान बिन मज़ऊन रज़ियल्लाहु अ़न्हु को दफ़न किया (1) तो आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने एक भारी पत्थर उठाकर (निशानी के तौर पर) उनकी क़ब्र पर रख दिया और फ़रमाया कि मैं इसके ज़रिये से अपने भाई की क़ब्र को पहचान सकूँगा।

(मदारिजुन्नुबुव्वत, शामी)

मसला: क़ब्र पर कोई चीज़ (नाम वग़ैरह) यादगारी के तौर पर लिखना बाज़ उलेमा के नज़दीक जायज़ नहीं और बाज़ उलेमा ने ज़रूरत हो तो इसकी इजाज़त दी है, लेकिन क़ब्र पर या उसके कतबे पर क़ुरआन शरीफ़ की आयत लिखना या कोई ऐसा शे'र लिखना जिसमें बढ़ा-चढ़ाकर तारीफ़ की गयी हो, मक्रूह है। (शामी)

क़ब्र पर इमारत बनाना मना है

क़ब्र पर कोई इमारत जैसे गुंबद या क़ुब्बा बनाना ज़ीनत की ग़र्ज़ से हराम है और मज़बूती की नीयत से बनाना मक्रूह है। (बहिश्ती गौहर)

क़ब्र पर चलने और बैठने की मनाही

आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत यह भी है कि क़ब्रों पर चलने, बैठने और टेक लगाने से परहेज़ किया जाये। (ज़ादुल मआ़द)

वे काम जो सुन्नत के ख़िलाफ़ हैं

यह नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत नहीं कि क़ब्रों को (बहुत ज़्यादा) ऊँचा किया जाये, न पक्की ईंटों और पत्थरों से न कच्ची ईंटों से, और न क़ब्रों को पुख़्ता करना सुन्नत में दाख़िल है, और न उनपर क़ुब्बे बनाना। (ज़ादुल मआ़द)

क़ब्र बैठ जाये तो दोबारा मिट्टी डालना

मसला: क़ब्र बैठ जाये तो उस पर दोबारा मिट्टी डालना जायज़ है।

(इमदादुल-फ़तावा जिल्द 2 पेज 525)

(1) यह आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के दूध शरीक भाई थे। (हाशिया तिर्मिज़ी) रफ़ी

मौत पर सब्र और उसका अज्र व सवाब

हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- अल्लाह तआ़ला का इरशाद है कि जब मैं किसी ईमान वाले बन्दे (या बन्दी) के किसी प्यारे को उठा लूँ फिर वह सवाब की उम्मीद में सब्र करे तो मेरे पास उसके लिये जन्नत के सिवा कोई बदला नहीं। (बुख़ारी, मआ़रिफ़ुल-हदीस)

मय्यित का सोग मनाना

नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि किसी मोमिन के लिये हलाल नहीं कि तीन दिन से ज़्यादा किसी का सोग मनाये सिवाय बेवा के कि (शौहर की मौत पर) उसके सोग (1) की मुद्दत चार महीने दस दिन है। (तिर्मिज़ी व बुख़ारी शरीफ़)

सुन्नत यह है कि अल्लाह तआ़ला के फ़ैसलों पर राज़ी रहें, अल्लाह की तारीफ़ व सना करें और (जब भी ग़म याद आये) "इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन" पढ़ा करें और मुसीबत के सबब कपड़े फाड़ने वालों, बुलन्द आवाज़ से बैन और नौहा व मातम करने वालों और बाल मुंडवाने वालों से बेज़ारी का इज़हार करें। (ज़ादुल मआ़द)

मय्यित व वारिसों के साथ अच्छा सुलूक

आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम मय्यित के साथ ऐसा एहसान और मामला फ़रमाते थे जो उसके लिये क़ब्र और आख़िरत में फ़ायदेमन्द हो और उसके घर वालों और रिश्तेदारों के साथ भी अच्छा सुलूक फ़रमाते। मय्यित के लिये इस्तिग़फ़ार फ़रमाते और नमाज़े जनाज़ा के बाद दफ़न होने की जगह तक जनाज़े के साथ जाते और क़ब्र के सिरहाने ख़ड़े होकर आप और सहाबा-ए-किराम रज़ि. उसके लिये कलिमा-ए-ईमान पर साबित-क़दम रहने (जमाव) की दुआ़ फ़रमाते, फिर उसकी क़ब्र की ज़ियारत के लिये

(1) यहाँ सोग से मुराद ज़ेब व ज़ीनत को छोड़ देना है यानी बेवा को अपने शौहर की वफ़ात के बाद इद्दत में चार महीने दस दिन तक सोग करना (ज़ेब व ज़ीनत को छोड़ देना) तो ज़रूरी है इसके अ़लावा किसी शख़्स को किसी मौक़े पर तीन दिन से ज़्यादा सोग मनाना जायज़ नहीं। इद्दत के मुफ़स्सल अहकाम व मसाइल आगे आयेंगे। रफ़ी

तशरीफ़ ले जाया करते और क़ब्र वाले को सलाम करते और उसके लिये दुआ फ़रमाया करते थे। (मदारिजुन्नुबुव्वत)

वारिसों और पीछे रह जाने वालों से ताज़ियत

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है कि जिस शख़्स ने किसी मुसीबत में घिरे की ताज़ियत (तसल्ली) की उसके लिये ऐसा ही अज्र व सवाब है जैसा कि उस मुसीबत-ज़दा के लिये।

(तिर्मिज़ी, इब्ने माजा, मआरिफ़ुल-हदीस)

आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ख़ुद भी ताज़ियत के लिये तशरीफ़ ले जाया करते थे।

मसलाः जिस घर में ग़मी हो, उनके यहाँ तीसरे दिन तक एक बार ताज़ियत के लिये जाना मुस्तहब है। मय्यित के मुताल्लिक़ीन को तस्कीन व तसल्ली देना और सब्र के फ़ज़ाईल और उसका अ़ज़ीमुश्शान अज्र व सवाब सुनाकर उनको सब्र की रग़बत दिलाना और मय्यित के लिये मग़फ़िरत की दुआ़ करना जायज़ (बल्कि बड़ा नेक काम) है, इसी को ताज़ियत कहते हैं। तीन दिन के बाद ताज़ियत करना मक्रूहे तन्ज़ीही है, लेकिन अगर ताज़ियत करने वाला सफ़र में हो या मय्यित के अ़ज़ीज़ व रिश्तेदार (जिनके पास ताज़ियत के लिये जाना चाहिये वे) सफ़र में हों और तीन दिन के बाद आयें तो इस सूरत में तीन दिन के बाद भी ताज़ियत को जाना मक्रूह नहीं।

(बहिश्ती गौहर)

हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का ताज़ियती ख़त

मुआ़ज़ बिन जबल रज़ि. के बेटे की वफ़ात पर

हज़रत मुआ़ज़ बिन जबल रज़ि. से रिवायत है कि उनके बेटे का इन्तिक़ाल हो गया तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनको ताज़ियत-नामा लिखवाया जिसका तर्जुमा यहाँ नक़ल किया जाता है।

"(शुरू) अल्लाह के नाम के साथ जो बड़ा रहम करने वाला और

मेहरबान है। अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) की जानिब से मुआ़ज़ बिन जबल के नाम। तुम पर सलामती हो, मैं पहले तुमसे अल्लाह तआ़ला की तारीफ़ व सना बयान करता हूँ जिसके सिवा कोई माबूद नहीं, तारीफ़ व प्रसंशा के बाद (दुआ़ करता हूँ कि) अल्लाह तुम्हें अज्रे अ़ज़ीम अ़ता फ़रमाये और सब्र की तौफ़ीक़ दे और हमें और तुम्हें शुक्र अदा करना नसीब फ़रमाये। इसलिये कि बेशक हमारी जानें, हमारा माल और हमारे घर वाले और बाल-बच्चे (सब) अल्लाह तआ़ला के ख़ुशगवार अ़तीये (दी हुई चीज़ें) और माँगे के तौर पर सुपुर्द की हुई अमानतें हैं। (इस उसूल के मुताबिक़ तुम्हारा बेटा भी तुम्हारे पास अल्लाह की अमानत था) अल्लाह तआ़ला ने ख़ुशी और ऐश के साथ तुमको उससे नफ़ा उठाने और जी बहलाने का मौक़ा दिया, और (अब) तुमसे उसको अज्रे अ़ज़ीम के बदले में वापस ले लिया है, अल्लाह की ख़ास नवाज़िश और रहमत व हिदायत (की तुमको ख़ुशख़बरी है) अगर तुमने सवाब की नीयत से सब्र किया, पस तुम सब्र (व शुक्र) के साथ रहो। (देखो) तुम्हारा रोना धोना तुम्हारे लिये अज्र को ज़ाया न कर दे कि फिर तुम्हें शर्मिन्दगी उठानी पड़े। और याद रखो कि रोना धोना किसी मय्यित को लौटाकर नहीं लाता और न ही ग़म व तकलीफ़ को दूर करता है। और जो होने वाला है वह तो होकर रहेगा और जो होना था वह हो चुका, वस्सलाम''।

(तिर्मिज़ी, हिस्ने हसीन, मआ़रिफ़ुल-हदीस)

मय्यित के घर वालों के लिये खाना भेजना मुस्तहब है

हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन जाफ़र रज़ियल्लाहु अ़न्हु का बयान है कि जब (उनके वालिद माजिद हज़रत) जाफ़र (बिन अ़बू तालिब रज़ियल्लाहु अ़न्हु) की शहादत की ख़बर आई तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि जाफ़र के घर वालों के लिये खाना तैयार किया जाये, वे इस इत्तिला की वजह से ऐसे हाल में हैं कि खाना तैयार करने की तरफ़ तवज्जोह न कर सकेंगे। (तिर्मिज़ी, इब्ने माजा, मआ़रिफ़ुल-हदीस)

आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नते तैयबा यह भी थी कि मय्यित के घर वालों की ताज़ियत के लिये आने वालों को खाना खिलाने का एहतिमाम न करें, बल्कि आपने हुक्म दिया कि दूसरे लोग (दोस्त और अ़ज़ीज़) उनके लिये खाना तैयार करके उन्हें भेजें। यह चीज़ उम्दा अख़्लाक़ का एक नमूना है और मय्यित के घर वालों को फ़ारिग़ करने वाला अ़मल है। (ज़ादुल मआ़द)

मसलाः मय्यित वालों के पड़ौसियों और दूर के रिश्तेदारों के लिये मुस्तहब है कि वे एक दिन एक रात का खाना तैयार करके मय्यित वालों के यहाँ भेजें। और अगर वे ग़म की वजह से न खाते हों तो इसरार करके उन्हें खिलायें। (दुर्रे मुख़्तार व शामी)

मसलाः जो लोग मय्यित को तैयार करने, तकफ़ीन और दफ़न के कामों में मसरूफ़ हों उनको भी यह खाना खिलाना जायज़ है।

(मदारिजे नुबुव्वत जिल्द 1 पेज 710)

मय्यित वालों की तरफ़ से खाने की दावत बिद्अ़त है

आजकल बाज़ नावाक़िफ़ लोगों में जो रस्म है कि ताज़ियत के लिये आने वालों के वास्ते मय्यित के घर वाले खाना पकवाते हैं और उनकी दावत करते हैं यह सुन्नत के ख़िलाफ़ होने के सबब नाजायज़ और बिद्अ़त है, क्योंकि दावत ख़ुशी के मौक़े पर होती है ग़मी पर नहीं। आने वालों को भी चाहिये कि अगर वे मय्यित वालों के वास्ते खाना नहीं भेजते तो कम से कम उन पर बोझ तो न डालें। (शामी जिल्द 1 पेज 841,842)

क़ब्रों की ज़ियारत

हदीसः हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- "मैंने तुमको क़ब्रों की ज़ियारत से मना किया था (अब इजाज़त देता हूँ कि) तुम क़ब्रों की ज़ियारत कर लिया करो, क्योंकि (इसका फ़ायदा यह है कि) इससे दुनिया की बे-रग़बती और आख़िरत की याद और फ़िक्र पैदा होती है।

(इब्ने माजा, मआ़रिफ़ुल-हदीस)

मसलाः क़ब्रों की ज़ियारत करना, यानी उनको जाकर देखना मर्दों के लिये मुस्तहब है। बेहतर यह है कि हर हफ़्ते में कम से कम एक बार क़ब्रों की ज़ियारत की जाये। और ज़्यादा बेहतर है कि वह दिन जुमे का हो।

(बहिश्ती गौहर)

मसलाः बुज़ुर्गों की क़ब्रों की ज़ियारत के लिये सफ़र करना भी जायज़ है जबकि कोई अ़क़ीदा और अ़मल शरीअ़त के ख़िलाफ़ न हो, जैसा कि आजकल उर्सों में ख़राबियाँ और बुराइयाँ होती हैं। (बहिश्ती गौहर)

मसलाः कभी-कभी शबे बराअत में भी क़ब्रिस्तान जाना और क़ब्र वालों के लिये मग़फ़िरत की दुआ़ करना सुन्नत से साबित है।

(रिसाला शबे बराअत)

जब क़ब्रिस्तान में दाख़िल हों तो वहाँ के सब क़ब्र वालों की नीयत करके उनको एक बार सलाम करना चाहिये। हदीस शरीफ़ में है कि जो शख़्स भी अपने किसी जानने वाले (मुसलमान) की क़ब्र पर गुज़रता और उसको सलाम करता है वह मय्यित उसको पहचान लेता है और उसके सलाम का जवाब देता है (अगरचे उस जवाब को सलाम करने वाला नहीं सुनता)। (बहिश्ती गौहर, कुन्ज़ुल-उम्माल के हवाले से)

मसलाः क़ब्र वालों को सलाम इन अल्फ़ाज़ में करना चाहियेः

اَلسَّلَامُ عَلَيْكُمْ يَآاَهْلَ الْقُبُوْرِ يَغْفِرُ اللّٰهُ لَنَا وَلَكُمْ، اَنْتُمْ سَلَفُنَا وَنَحْنُ بِالْاَثَرِ.

अस्सलामु अ़लैकुम या अह्लल-क़ुबूरि यग़फ़िरुल्लाहु लना व लकुम अन्तुम स-लफ़ुना व नह्नु बिल्अ-सरि।

तर्जुमाः सलाम हो तुम पर ऐ क़ब्र वालो! अल्लाह तआ़ला हमारी और तुम्हारी मग़फ़िरत फ़रमाये। तुम हमसे आगे जाने वाले हो और हम पीछे-पीछे आ रहे हैं।

आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम मदीना तैयबा की चन्द क़ब्रों से गुज़रे तो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनको इन्हीं लफ़ज़ों में सलाम फ़रमाया था। (तिर्मिज़ी शरीफ़, मआ़रिफ़ुल-हदीस)

मसलाः सलाम के बाद किब्ले की तरफ़ पुश्त करके और मय्यित (क़ब्र) की जानिब मुँह करके जितना हो सके क़ुरआन शरीफ़ पढ़कर मय्यित को सवाब पहुँचा दें, जैसे "सूरः फ़ातिहा, सूरः यासीन, सूरः तबारकल्लज़ी, सूरः

अलहाकुमुत्तकासुरु या सूरः क़ुल हुवल्लाहु अ-हद" ग्यारह बार या सात बार या जिस क़द्र आसानी से पढ़ा जा सके, पढ़-पढ़कर दुआ करें कि या अल्लाह इसका सवाब क़ब्र वाले को पहुँचा दे।

मसलाः मय्यित के लिये मग़फ़िरत की दुआ भी करनी चाहिये। आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की मुबारक आ़दत यह थी कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम क़ब्रों की ज़ियारत इसलिये (भी) फ़रमाते थे कि उनके लिये मग़फ़िरत की दुआ फ़रमायें। (मदारिजुन्नुबुव्वत)

औ़रतों का क़ब्रिस्तान जाना

औ़रतों का क़ब्रिस्तान जाना बाज़ फ़ुक़हा-ए-किराम (दीन के आ़लिमों) के नज़दीक तो बिल्कुल नाजायज़ है, लेकिन फ़तवा इस पर है कि जवान औ़रत को तो जाना जायज़ ही नहीं और बूढ़ी औ़रत को इस शर्त के साथ जायज़ है कि पर्दे के साथ जाये बन-संवर कर या ख़ुशबू लगाकर न जाये, और इस बात का यक़ीन हो कि कोई काम ख़िलाफ़े शरीअ़त न करेगी। जैसे रोना पीटना, क़ब्र वालों से हाजतें माँगना और दूसरी नाजायज़ बातें और बिद्अ़तें जो क़ब्रों पर की जाती हैं उन सबसे परहेज़ किया जाये। एक हदीस शरीफ़ में क़ब्रिस्तान जाने वाली औ़रतों पर अल्लाह की लानत ज़िक्र की गयी है। फ़ुक़हा-ए-किराम फ़रमाते हैं कि जो औ़रतें ऊपर ज़िक्र हुई शर्तों की पाबन्दी के बग़ैर क़ब्रिस्तान जाती हों वे इस लानत की ज़द में (यानी हक़दार) हैं। (शामी जिल्द 1 पेज 843, इमदादुल-फ़तावा जिल्द 1 पेज 520, इमदादुल-अहकाम जिल्द 1 पेजः 720)

सवाब पहुँचाने का सुन्नत तरीक़ा

इसकी हक़ीक़त शरीअ़त में सिर्फ़ इतनी है कि किसी ने कोई नेक काम किया उस पर उसको जो कुछ सवाब मिला उसने अपनी तरफ़ से वह सवाब किसी दूसरे को दे दिया (चाहे मुर्दा हो या ज़िन्दा) वह इस तरह कि या अल्लाह! मेरे इस अ़मल का सवाब जो आपने मुझे अ़ता फ़रमाया है वह फ़ुलाँ शख़्स को दे दीजिये और पहुँचा दीजिये।

जैसे किसी ने ख़ुदा की राह में कुछ खाना या मिठाई या कोई नक़द रक़म या कपड़ा वग़ैरह दिया या नफ़िल नमाज़ें पढ़ीं, नफ़िल रोज़े रखे या

नफ़िल हज या उमरे किये, या कलाम पाक की तिलावत की, तस्बीहात, कमिला-ए-तैयबा वग़ैरह पढ़ा, या मुस्तक़िल ख़ैराते जारिया क़ायम कीं, जैसे मसजिदें बनवाना, दीनी मदरसे या दीनी व मज़हबी किताबों को छपवाना फ़ी सबीलिल्लाह की, उसके बाद अल्लाह तआ़ला से दुआ़ की कि जो कुछ इसका सवाब मुझे मिला है वह सवाब फ़ुलाँ शख़्स को पहुँचा दीजिये। चाहे इस क़िस्म का नेक काम आज किया हो या इससे पहले उम्र भर में कभी किया था, दोनों का सवाब पहुँच जाता है। बस इस क़द्र शरीअ़त से साबित है। (शामी व बहिश्ती ज़ेवर)

इसके अ़लावा जो मुख़्तलिफ़ रस्में और सूरतें 'ईसाले सवाब' (सवाब पहुँचाने) की लोगों ने ईजाद कर रखी हैं सब बे-बुनियाद हैं, बल्कि उनका करना भी गुनाह है। बाज़ शिर्क की हद तक हैं और बाज़ बिद्अ़त हैं। इसलिये इन सबसे बचना लाज़मी है, कि बजाय सवाब हासिल होने के और उल्टा बड़े गुनाहों का इर्तिकाब (जुर्म करना) हो जाता है।

सवाब पहुँचाने के लिये शरई तौर पर न कोई ख़ास वक़्त या दिन मुक़र्रर है कि उसके अ़लावा सवाब न पहुँचाया जा सकता हो, न कोई ख़ास जगह मुक़र्रर है, न कोई ख़ास इबादत। न यह ज़रूरी है कि सवाब पहुँचाने के लिये आदमी जमा हों या खाने की कोई चीज़ मिठाई वग़ैरह सामने रखी जाये। या उस पर दम किया जाये, या किसी आ़लिमे दीन या हाफ़िज़ क़ारी को ज़रूर बुलाया जाये। न यह ज़रूरी है कि पूरा क़ुरआन ख़त्म किया जाये या कोई ख़ास सूरत या दुआ़ किसी मख़्सूस तादाद में पढ़ी जाये, लोगों ने अपनी तरफ़ से ईजाद करके ये रस्में और पाबन्दी बढ़ा ली हैं वरना शरीअ़त ने सवाब पहुँचाने को इतना आसान बनाया है कि जो शख़्स जिस वक़्त जिस दिन चाहे कोई सी भी नफ़्ली इबादत करके उसका सवाब मय्यित को पहुँचा सकता है।

फ़र्ज़ इबादतों का सवाब पहुँचाना

फ़ुक़हा-ए-हनफ़िया (हनफ़ी आ़लिमों) का इस पर इत्तिफ़ाक़ है कि हर क़िस्म की नफ़्ली इबादतों का सवाब दूसरे को बख़्शा जा सकता है, ज़िन्दा को भी बख़्शा जा सकता है, मय्यित को भी। लेकिन फ़र्ज़ इबादत का सवाब भी किसी को बख़्शा जा सकता है या नहीं? इसमें फ़ुक़हा का इख़्तिलाफ़

(मतभेद) है। बाज़ फ़ुक़हा (मसाईल के उलेमा) ने इसे भी जायज़ कहा है और बाज़ ने मना किया है।

किसी इबादत का सवाब कई शख़्सों को पहुँचाना

अगर किसी इबादत का सवाब कई शख़्सों को मुश्तरक तौर पर बख़्शा, जैसे एक रुपया सदक़ा किया और उसका सवाब दस मुर्दों को बख़्श दिया, तो आया हर मय्यित को पूरे एक-एक रुपये का सवाब मिलेगा या एक ही रुपये का सवाब सब मुर्दों में थोड़ा-थोड़ा तक़सीम होगा? इसकी क़ुरआन व सुन्नत में कोई सराहत (खुलासा) नहीं मिलती, एहतिमाल दोनों हैं। लेकिन फ़ुक़हा (मसाईल बताने वाले उलेमा) की एक जमाअ़त ने पहली सूरत को तरजीह दी है और अल्लाह तआ़ला की वसीअ़ रहमत के ज़्यादा लायक़ भी यही है (कि हर एक को पूरा सवाब मिले)। (शामी)

सवाब पहुँचाने का हदीस से सुबूत

किसी की मौत के बाद रहमत की दुआ़ करना, नमाज़े जनाज़ा अदा करना ये सुन्नत आमाल हैं। इनके साथ दूसरा तरीक़ा मय्यित को नफ़ा पहुँचाने का यह है कि मय्यित की तरफ़ से सदक़ा किया जाये, या कोई अच्छा अ़मल करके उसका सवाब मय्यित को पहुँचा दिया जाये, इसी को ईसाले सवाब (सवाब पहुँचाना) कहा जाता है। इसके बारे में आगे आने वाली हदीसें मुलाहिज़ा हों:

हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि सअ़द बिन उबादा रज़ियल्लाहु अ़न्हु की वालिदा का इन्तिक़ाल ऐसे वक़्त हुआ कि ख़ुद सअ़द मौजूद नहीं थे। (रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथ एक जंग में तशरीफ़ ले गये थे। जब वापस आये) तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में आकर अ़र्ज़ किया कि या रसूलल्लाह! (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) मेरी ग़ैर मौजूदगी में मेरी वालिदा का इन्तिक़ाल हो गया, अगर उनकी तरफ़ से मैं सदक़ा करूँ तो क्या वह उनके लिये फ़ायदेमन्द होगा? (और उनको इसका सवाब पहुँचेगा?)

आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- हाँ पहुँचेगा। उन्होंने अ़र्ज़ किया- तो मैं आपको गवाह बनाता हूँ कि अपना बाग़ मैंने वालिदा (के सवाब) के लिये सदक़ा कर दिया। (बुख़ारी, मआ़रिफ़ुल-हदीस)

पाँचवाँ बाब

शहीद के अहकाम

मुख़्तलिफ़ क़िस्म के हादसों में हलाक होने वाले और बदन के मुतफ़र्रिक़ अंगों के ग़ुस्ल व कफ़न और नमाज़े जनाज़ा के मसाईल

शहीद के अहकाम

जिस मुसलमान को अल्लाह तआ़ला शहादत की मौत अ़ता फ़रमाये उसे "शहीद" कहा जाता है। क़ुरआन व सुन्नत में शहादत का निहायत अ़ज़ीमुश्शान सवाब और क़ाबिले रश्क फ़ज़ाईल आए हैं।

लेकिन ख़ूब समझ लेना चाहिये कि ग़ुस्ल व कफ़न के एतिबार से शहीद की दो क़िस्में हैं।

शहीद की दो क़िस्में

1. शहीद की एक क़िस्म तो वह है जिसको ग़ुस्ल व कफ़न नहीं दिया जाता, बल्कि जो कपड़े वह पहने हुए हो उन्हीं कपड़ों में ग़ुस्ल दिये बग़ैर नमाज़े जनाज़ा पढ़कर दफ़न कर दिया जाता है, जिसकी शर्तें और तफ़सीलें आगे आ रही हैं।

2. दूसरी क़िस्म शहीद की वह है जिसे आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़ुशख़बरी के मुताबिक़ आख़िरत में तो शहादत का दर्जा नसीब होगा लेकिन दुनिया में उस पर शहीद के अहकाम जारी नहीं होते। यानी आ़म मुसलमानों की तरह उनका भी ग़ुस्ल व कफ़न किया जाता है। इस क़िस्म की शहादत की बहुत सी सूरतें हैं जिनकी तफ़सीली फ़ेहरिस्त बाद में बयान की जायेगी, पहले क़िस्मे अव्वल और उसके अहकाम समझ लिये जायें।

शहीद की पहली क़िस्म

पहली क़िस्म का शहीद (यानी जिसको ग़ुस्ल व कफ़न नहीं दिया

जाता) वह मक़्तूल है जिसमें नीचे लिखी हुई सात शर्तें पाई जायें।

शर्त नम्बर एक

मुसलमान होना। पस ग़ैर-मुस्लिम (काफ़िर) के लिये किसी क़िस्म की शहादत साबित नहीं हो सकती। (बहिश्ती गौहर)

शर्त नम्बर दो

मुकल्लफ़ यानी आ़क़िल बालिग़ होना। पस जो शख़्स पागलपन की हालत में मारा जाये या बालिग़ न होने की हालत में, तो उसके लिये शहादत के वे अहकाम जिनकी तफ़सील हम आगे बयान करेंगे, साबित न होंगे।

शर्त नम्बर तीन

हदसे अकबर से पाक होना। (1) अगर कोई शख़्स नापाकी की हालत में या कोई औ़रत हैज़ (माहवारी) व निफ़ास (ज़च्चा होने) की हालत में शहीद हो जाये तो उसके लिये भी शहीद के वे अहकाम साबित न होंगे। (यानी उसे ग़ुस्ल दिया जायेगा अगर दूसरों को उस हालत का इल्म हो)

शर्त नम्बर चार

बेगुनाह मक़्तूल होना। पस अगर कोई शख़्स बेगुनाह नहीं क़त्ल किया गया बल्कि किसी शरई जुर्म की सज़ा में मारा गया हो, या क़त्ल ही न हुआ हो यूँ ही मर गया हो तो उसके लिये भी शहीद के वे अहकाम साबित न होंगे।

शर्त नम्बर पाँच

अगर किसी मुसलमान या ज़िम्मी (2) के हाथ से मारा गया हो तो यह भी शर्त है कि किसी धारदार आले (औज़ार, हथियार) से मारा गया हो। अगर किसी मुसलमान या ज़िम्मी के हाथ से ग़ैर-धारदार हथियार के ज़रिये से मारा गया हो जैसे किसी पत्थर वग़ैरह से मारा जाए (जिस पर धार न हो) तो उस पर शहीद के वे अहकाम जारी न होंगे लेकिन लोहा मुत्लक़ तौर पर धारदार आले (यंत्र) के हुक्म में है (3) अगरचे उसमें धार न हो। और

(1) यानी ऐसी नापाकी जिससे ग़ुस्ल फ़र्ज़ हो जाता है। रफ़ी

(2) यानी वह काफ़िर जो दारुस्सलाम यानी ऐसे मुल्क का रहने वाला हो जहाँ मुसलमानों की हुकूमत है।

(3) बन्दूक़ की गोली भी उसमें दाख़िल है। (शामी किताबुल जनायात जिल्द 5)

अगर कोई शख़्स हरबी (1) काफ़िरों या बाग़ियों या डाकुओं के हाथ से मारा गया हो या उनके मारका-ए-जंग में मक़्तूल मिले तो उसमें धारदार आले से क़त्ल होने की शर्त नहीं, यहाँ तक कि अगर पत्थर वग़ैरह से भी वे लोग मारें और मर जाये तो शहीद के अहकाम उस पर जारी हो जायेंगे। बल्कि यह भी शर्त नहीं कि वे लोग ख़ुद क़त्ल करने का जुर्म करें बल्कि वे अगर क़त्ल करने का सबब भी हुए हों यानी उनसे वे चीज़ें और बातें सामने आएँ जो क़त्ल का सबब हो जायें तब भी शहीद के अहकाम जारी हो जायेंगे।

मिसाल 1. किसी हरबी वग़ैरह ने अपने जानवर या गाड़ी से किसी मुसलमान को रौंद डाला और ख़ुद भी उस पर सवार था।

मिसाल 2. कोई मुसलमान किसी जानवर पर सवार था, उस जानवर को किसी हरबी वग़ैरह ने भगाया जिसकी वजह से मुसलमान उस जानवर से गिरकर मर गया।

मिसाल 3. किसी हरबी वग़ैरह ने किसी मुसलमान के घर या जहाज़ में आग लगा दी, जिससे कोई जलकर मर गया।

इन तीनों सूरतों में क़त्ल होने वाले पर शहीद के अहकाम जारी होंगे। यानी उसे ग़ुस्ल व कफ़न न दिया जायेगा। (शामी, व बहिश्ती गौहर)

शर्त नम्बर छह

उस क़त्ल की सज़ा में शुरू में शरीअ़त की तरफ़ से कोई माली बदला न मुक़र्रर हो बल्कि क़िसास वाजिब होता हो। (2) पस अगर माली बदला मुक़र्रर हो तब भी उस मक़्तूल पर शहीद के अहकाम जारी न होंगे अगरचे ज़ुल्मन मारा जाये।

मिसाल 1. कोई मुसलमान किसी मुसलमान को बग़ैर धार के आले से क़त्ल कर दे।

मिसाल 2. कोई मुसलमान किसी मुसलमान को धारदार आले से क़त्ल कर दे, मगर ग़लती से, जैसे किसी जानवर पर या किसी निशाने पर हमला

---

(2) हरबी वह काफ़िर जो ऐसे मुल्क का रहने वाला हो जहाँ काफ़िरों की हुकूमत है। रफ़ी

(3) और अगर क़त्ल ऐसा है कि उसकी सज़ा में कुछ वाजिब नहीं होता, न क़िसास न दियत तो उसपर भी शहीद के अहकाम जारी होंगे। जैसे कोई शख़्स ऐसे जंगल या बयाबान वग़ैरह में मक़्तूल पाया गया जिसके क़रीब कोई आबादी नहीं और क़ातिल मालूम न हो सके तो उसे ग़ुस्ल व कफ़न न दिया जायेगा। (शामी) रफ़ी

कर रहा हो और वह किसी इनसान के लग जाये।

मिसाल 3. कोई शख़्स किसी आबादी में या आबादी के क़रीब (1) किसी जगह सिवाय मारका-ए-जंग के मक़्तूल पाया जाये और कोई क़ातिल उसका मालूम न हो। (2) इन सब सूरतों में चूँकि उसके क़त्ल के बदले में माल (ख़ून बहा) वाजिब होता है, क़िसास नहीं वाजिब होता, इसलिये यहाँ शहीद के अहकाम जारी न होंगे।

माल के बदल मुक़र्रर होने में शुरू की क़ैद इस वजह से लगाई गयी कि अगर शुरू में क़िसास मुक़र्रर हुआ हो मगर किसी रुकावट के सबब से क़िसास माफ़ होकर उसके बदले में माल वाजिब हुआ तो वहाँ शहीद के अहकाम जारी हो जायेंगे।

मिसाल 1. कोई शख़्स धारदार आले से जान बूझकर ज़ुल्मन मारा गया, लेकिन क़ातिल में और मक़्तूल के वारिसों में कुछ माल के बदले सुलह हो गयी हो तो उस सूरत में चूँकि क़िसास वाजिब हुआ था और माल शुरू में वाजिब नहीं हुआ था बल्कि सुलह के सबब से वाजिब हुआ इसलिये यहाँ शहीद के अहकाम जारी हो जायेंगे।

मिसाल 2. कोई बाप अपने बेटे को धारदार आले से मार डाले तो उस सूरत में शुरू में तो क़िसास वाजिब हुआ था, माल शुरू में वाजिब नहीं हुआ लेकिन बाप के एहतिराम और सम्मान की वजह से क़िसास माफ़ होकर उसके बदले में माल वाजिब हुआ है इसलिये यहाँ भी शहीद के अहकाम जारी हो जायेंगे। (शामी, मराक़ियुल-फ़लाह, बहिश्ती गौहर)

शर्त नम्बर सात

बाद ज़ख़्म लगने के फिर कोई राहत व ज़िन्दगी से फ़ायदा हासिल करने की बात जैसे खाने-पीने, सोने, दवा करने, ख़रीद व फ़रोख़्त वग़ैरह उससे वजूद में न आयें और न एक नमाज़ के वक़्त की मिक़दार के बराबर उसकी ज़िन्दगी होश व हवास की हालत में गुज़रे और न उसको होश की हालत में लड़ाई की जगह से उठा लायें।

हाँ अगर जानवरों या गाड़ियों के नीचे आ जाने के ख़ौफ़ से जंग के

(1) इस सूरत में ख़ून बहा (यानी माली बदल) बैतुलमाल से अदा किया जाता है। (दुर्रे मुख़्तार, शामी जिल्द 1 पेजः 851)

(2) शामी जिल्द 1 पेजः 851

मैदान से उठा लायें तो कुछ हर्ज न होगा। पस अगर कोई शख़्स बाद ज़ख़्म लगने के ज़्यादा कलाम करे तो वह भी शहीद के उन अहकाम में दाख़िल न होगा। इसलिये कि ज़्यादा कलाम करना ज़िन्दों की शान से है। इसी तरह अगर वह ज़ख़्म लगने के बाद वसीयत करे तो वह वसीयत अगर दुनियावी मामलों में हो तो शहीद के हुक्म से ख़ारिज हो जायेगा। और अगर दीनी मामले में हो तो ख़ारिज न होगा।

अगर कोई शख़्स जंग के मैदान में शहीद हुआ और उससे ये बातें सादिर हों तो शहीद के अहकाम से ख़ारिज हो जायेगा वरना नहीं, लेकिन यह शख़्स अगर जंग में मक़्तूल हुआ है और अभी जंग ख़त्म नहीं हुई तो बावजूद ज़िक्र हुई बातों के भी वह शहीद है। (बहिश्ती गौहर)

शहीद की इस क़िस्म के अहकाम

मसलाः जिस शहीद में ये सब शर्तें पाई जायें उसका एक हुक्म यह है कि उसको ग़ुस्ल न दिया जाये और उसका ख़ून उसके जिस्म से साफ़ न किया जाये। लेकिन अगर ख़ून के अ़लावा कोई और नापाकी उसके बदन या कपड़ों को लग गई हो तो उसे धो दिया जाये। (शामी)

मसलाः दूसरा हुक्म यह है कि जो कपड़े शलवार वग़ैरह पहने हुए हो उन कपड़ों को उसके जिस्म से न उतारें। हाँ अगर उसके कपड़े मसनून अ़दद से ज़्यादा हों तो ज़ायद कपड़े उतार लिये जायें। और अगर उसके जिस्म पर ऐसे कपड़े हों जिन में कफ़न होने की सलाहियत न हो, जैसे चमड़े का लिबास पोस्तीन वग़ैरह तो उनको भी उतार लेना चाहिये, हाँ अगर ऐसे कपड़ों के सिवा जिस्म पर कोई कपड़ा न हो तो फिर पोस्तीन वग़ैरह को न उतारना चाहिये। (शामी, मराक़ियुल-फ़लाह)

मसलाः टोपी, जूता, हथियार, ज़िरह वग़ैरह हर हालत में उतार लिया जायेगा, बाक़ी सब अहकाम जो दूसरे मुसलमानों के लिये हैं जैसे नमाज़े जनाज़ा और दफ़न वग़ैरह वे सब उसके हक़ में भी जारी होंगे।

अगर किसी शहीद में ऊपर ज़िक्र होने वाली शर्तों में से कोई शर्त न पाई जाए तो उसको ग़ुस्ल भी दिया जायेगा और दूसरे मुर्दों की तरह नया कफ़न भी पहनाया जायेगा। (शामी, बहिश्ती गौहर)

शहीद की दूसरी क़िस्म

पहले मालूम हो चुका है कि शहीदों की दूसरी क़िस्म वह है जिन्हें आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़ुशख़बरी के मुताबिक़ आख़िरत में तो शहादत का दर्जा नसीब होगा और शहीदों वाला मामला सवाब और इकराम व सम्मान का उनके साथ किया जायेगा लेकिन दुनिया में उन पर शहीदों के अहकाम जारी नहीं होते, यानी उनका गुस्ल व कफ़न आ़म मुसलमानों की तरह किया जाता है, शहीदों की तरह नहीं।

शहीदों की इस क़िस्म में जो मुसलमान दाख़िल हैं उनकी चालीस से ज़्यादा क़िस्में हैं, लेकिन उन सबका ज़िक्र किसी एक हदीस में इकट्ठा नहीं मिलता, अलग-अलग हदीसों में उनका ज़िक्र आया है, इसी लिये उन सब हदीसों को जमा करने के लिये उलमा-ए-मुहक़्क़िक़ीन ने मुस्तक़िल रिसाले तालीफ़ फ़रमाये (यानी किताबें लिखी) हैं। अ़ल्लामा इब्ने आ़बिदीन शामी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने उन तहक़ीक़ात का ख़ुलासा अपनी मशहूर किताब "हाशिया रद्दुल-मोहतार" में दर्ज फ़रमा दिया है। हम यहाँ उसी का लुब्बे-लुबाब (ख़ुलासा) एक फ़ेहरिस्त की सूरत में नक़ल करते हैं।

शहीद की इस क़िस्म में नीचे लिखे गये मुसलमान दाख़िल हैं

1. वह बेगुनाह क़त्ल किया जाने वाला जो शहीद की पहली क़िस्म में इसलिये दाख़िल न हो कि जो शर्तें पहली क़िस्म में बयान की गयी हैं उनमें से कोई शर्त उसमें न पाई जाती थी। (1)

2. जिसने किसी काफ़िर, बाग़ी या डाकू पर हमला किया मगर वार

(1) जैसे वह मक़तूल (क़त्ल किया जाने वाला) जो मजनूँ, नाबालिग़ या नापाकी की हालत में हो, या हैज़ व निफ़ास वाली औ़रत हो और वह मक़तूल जिसके क़त्ल के बदले में क़िसास वाजिब नहीं बल्कि माली बदला यानी दियत (ख़ून बहा) वाजिब होता है, और वह मक़तूल जो बाग़ियों, डाकुओं या हरबी काफ़िरों के हाथों मारा जाये मगर ज़ख़्म लगने के बाद कोई चीज़ राहत और ज़िन्दगी से फ़ायदा हासिल करने वाली उसे न मिली हो, इन सब सूरतों में मक़तूल अगरचे शहीद की पहली क़िस्म में दाख़िल नहीं मगर दूसरी क़िस्म में दाख़िल है, यानी आख़िरत में उसे शहादत का दर्जा नसीब होगा, दुनिया में शहीद के अहकाम जारी न होंगे। (दुर्रे मुख़्तार, शामी) रफ़ी

चूककर खुद को लग गया, जिससे मौत वाके़ हो गयी। (दुर्रे मुख़्तार)

3. मुस्लिम मुल्कों की सरहद का पहरा देने वाला जो वहाँ तबई (यानी अपनी) मौत मर जाये।

4. जिसने सच्चे दिल से अल्लाह की राह में जान देने की दुआ़ की हो, फिर तबई मौत मर जाये।

5. जो खुद को या अपने घर वालों को ज़ालिमों से बचाने के लिये लड़ता हुआ मारा जाये।

6. जो अपना माल ज़ालिमों से बचाने या छुड़ाने के लिये लड़ता हुआ मारा जाये।

7. हुकूमत का मज़लूम कै़दी, जो कै़द की वजह से मर जाये।

8. जो (ज़ुल्म से बचने के लिये) रूपोश (छुपा हुआ) हो, और उसी हालत में मर जाये।

9. ताऊन से मरने वाला। इसमें वह शख़्स भी दाख़िल है जो ताऊन के ज़माने में ताऊन के बग़ैर ही वफ़ात पा जाये, बशर्ते कि जिस बस्ती में हो वहीं सवाब की नीयत और सब्र के साथ ठहरा रहे, भागने का रास्ता इख़्तियार न करे।

10. पेट की बीमारी (प्यास न बुझने वाली या दस्तों की बीमारी) में वफ़ात पाने वाला।

11. नमूनिया का मरीज़।

12. टी.बी. का मरीज़।

13. मिर्गी के मर्ज़ से या किसी सवारी से गिरकर हलाक होने वाला। (1)

14. बुख़ार में मरने वाला।

15. जिसकी मौत समुद्र में उल्टियाँ (मतली, कै़) लगने से हुई हो।

16. जो शख़्स अपनी बीमारी में चालीस बार "ला इला-ह इल्ला अन्-त सुब्हान-क इन्नी कुन्तु मिनज़्ज़ालिमीन" कहे और उसी बीमारी में वफ़ात पा जाये।

17. जिसकी मौत उच्छू लगने से हुई हो। (2)

18. जिसकी मौत ज़हरीले जानवर के डसने से हुई हो।

---

(1) शामी जिल्द अव्वल पेजः 553

(2) शामी जिल्द अव्वल पेजः 553

19. जिसे किसी दरिन्दे ने फाड़ डाला हो।

20. आग में जलकर मरने वाला।

21. पानी में डूबकर मरने वाला।

22. जिस पर कोई इमारत या दीवार वग़ैरह गिर पड़ी हो।

23. जिस औ़रत की मौत गर्भ की हालत में हो जाये।

24. निफ़ास वाली औ़रत। जिसकी मौत बच्चा पैदा होने के वक़्त हुई हो या बच्चा पैदा होने के बाद मुद्दते निफ़ास ख़त्म होने से पहले।

25. जो औ़रत कुंवारी ही वफ़ात पा जाये।

26. जो औ़रत अपने शौहर के किसी और औ़रत से (निकाह वग़ैरह के) ताल्लुक़ के ग़म पर सब्र करे और उसी हालत में मर जाये।

27. वह पाकबाज़ आ़शिक़ जो अपना इश्क़ छुपाये रखे और इश्क़ के ग़म से मर जाये।

28. जिसे सफ़र की हालत में मौत आ जाये।

29. दीन का इल्म हासिल करने वाला। (1)

30. वह मुअज़्ज़िन जो सिर्फ़ सवाब के लिये अज़ान देता हो (तन्ख़्वाह या उजूरत मक़सूद न हो)।

31. अपने बीवी-बच्चों की ख़बरगीरी करने वाला जो उनके मुताल्लिक़ अल्लाह के अहकाम बजा लाये और उनको हलाल खिलाये।

32. सच्चा दियानतदार ताजिर।

33. जो ताजिर मुसलमानों के किसी शहर में खाने की चीज़ें (खाना) पहुँचाये।

34. जिसने अपनी ज़िन्दगी मुदारात (अच्छे सुलूक) में गुज़ारी हो (यानी बुरे लोगों के साथ भी शरई हुक्म के बग़ैर बुरा सुलूक न करता हो)।

35. उम्मत के बिगाड़ के वक़्त सुन्नत पर क़ायम रहने वाला।

36. जो रात को वुज़ू की हालत में सोए और उसी हालत में इन्तिक़ाल हो जाये।

37. जुमे के दिन वफ़ात पाने वाला।

(1) अ़ल्लामा शामी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने नक़ल फ़रमाया है कि इसमें वह आ़लिमे दीन भी दाख़िल है जो पढ़ाने का मश्ग़ला रखता हो, अगरचे दिन भर में एक ही दर्स दे। या दीनी किताब लिखने का मश्ग़ला रखता हो, दिन भर इल्मे दीन में मश्ग़ूल रहना शर्त नहीं। रफ़ी

38. जो शख़्स रोज़ाना पच्चीस बार यह दुआ करे- "अल्लाहुम्-म बारिक ली फ़िल-मौति व फ़ी मा बादल-मौति" (ऐ अल्लाह! मेरे लिये मौत में भी बरकत दे और मौत के बाद के हालात में भी)।

39. जो चाश्त की नमाज़ (सलातुज़्ज़ुहा) पढ़े और हर महीने में तीन रोज़े रखे, और वित्र न सफ़र में छोड़े न वतन में रहने की हालत में।

40. हर रात सूरः यासीन पढ़ने वाला।

41. जो शख़्स आँ हज़रत सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर सौ मर्तबा दुरूद शरीफ़ पढ़े। (1)

42. इमाम तिर्मिज़ी रहमतुल्लाहि अलैहि ने हज़रत मअ्क़ल बिन यसार रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत किया है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इर्शाद फ़रमाया कि जिस शख़्स ने सुबह के वक़्त "अऊज़ु बिल्लाहिस्समीअिल् अलीमि मिनश्शैतानिर्रजीमि" तीन बार पढ़ा और सूरः हश्र की आख़िरी तीन आयतें पढ़ीं अल्लाह तआला उसके ऊपर सत्तर हज़ार फ़रिश्ते मुक़र्रर फ़रमा देता है जो उसके लिये शाम तक इस्तिग़फ़ार करते रहते हैं और जिसने ये कलिमे और आयतें शाम को पढ़ीं तो सुबह तक उसका भी यही दर्जा है।

यहाँ तक शहीद की दो क़िस्मों का बयान हुआ। जिसका हासिल यह है कि पहली क़िस्म तो दुनिया के अहकाम (गुस्ल व कफ़न) के एतिबार से भी शहीद है और आख़िरत के सवाब के एतिबार से भी, और दूसरी क़िस्म सिर्फ़ आख़िरत के सवाब के एतिबार से शहीद है, दुनिया के अहकाम के एतिबार से शहीद नहीं। इसी लिये पहली क़िस्म को "शहीदे दुनिया व आख़िरत" और दूसरी क़िस्म के शहीद को "शहीदे आख़िरत" कहा जाता है।

तंबीहः जो शख़्स काफ़िरों से जंग सिर्फ़ दुनियावी ग़र्ज़ से करता हुआ मारा जाये, दीन की सर-बुलन्दी मक़सूद न हो, जैसे सिर्फ़ शोहरत व नामवरी की ख़ातिर लड़ाई हो और उसमें वे सातों शर्तें मौजूद हों जो पहली क़िस्म में बयान हुईं तो सिर्फ़ "शहीदे दुनिया" है "शहीदे आख़िरत" नहीं। यानी दुनिया में तो उसके साथ शहीदों जैसा मामला होगा कि गुस्ल व कफ़न नहीं दिया जायेगा लेकिन आख़िरत में शहादत का दर्जा और उसके अज्र व सवाब से मेहरूम रहेगा (अल्लाह अपनी पनाह में रखे)।

(1) बज़ाहिर रोज़ाना पढ़ना मुराद है, वल्लाहु आलम। रफ़ी

इस तरह देखा जाये तो शहीद की तीन क़िस्में हो जाती हैं।

1. शहीदे दुनिया व आख़िरत।

2. शहीदे आख़िरत।

3. शहीदे दुनिया।

गुस्ल व कफ़न सिर्फ़ दूसरी क़िस्म को दिया जाता है पहली और तीसरी को नहीं।

मुख़्तलिफ़ हादसों में हलाक होने वालों और अलग-अलग हो जाने वाले बदन के हिस्सों के गुस्ल व कफ़न और नमाज़े जनाज़ा के मसाईल

मौजूदा ज़माने के समाज में हमारे आमाल की नहूसत के नतीजे में दुनिया तरह-तरह के फ़ितनों और क़िस्म-क़िस्म के हादसों व घटनाओं का मक़ाम बन चुकी है। अख़बार रोज़ाना इनसानों की बरबादी और हलाकत के वाक़िआत से भरे होते हैं, सैकड़ों इनसानों का हलाक होना एक मामूल बन गया है, जिनमें बहुत से मुसलमान भी होते हैं।

बाज़ मर्तबा हलाक होने वाले मुसलमानों की हलाकत ऐसी पैचीदा सूरत इख़्तियार कर लेती है कि वक़्त पर उनके गुस्ल व कफ़न और नमाज़े जनाज़ा का मसला मुश्किल हो जाता है, तथा अक्सर ऐसे वक़्त में सही मसला बतलाने वाला भी नहीं मिलता, जिससे उलझन और भी ज़्यादा बढ़ जाती है। इसलिये सहूलत के लिये यहाँ इसी क़िस्म के मसाईल लिखे जाते हैं, ताकि ज़रूरत के वक़्त इनसे फ़ायदा उठाया जा सके।

पहले गिरे हुए हमल (गर्भपात) के मसाईल लिखे जाते हैं, क्योंकि वह भी एक हादसा ही है, उसके बाद दूसरे मसाईल लिखे जायेंगे। अल्लाह तआ़ला हमें अपनी बात बयान करने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाये, बेशक तौफ़ीक़ देने वाला वही है।

हमल गिर जाने के मसाईल

1. हमल में सिर्फ़ गोश्त का टुकड़ा गिरे

अगर हमल गिर जाये और उसके हाथ पाँव नाक मुँह वग़ैरह अंग कुछ न बने हों तो उसको ग़ुस्ल न दिया जाये न कफ़न दिया जाये, न नमाज़े जनाज़ा पढ़ी जाये और न बाक़ायदा उसको दफ़न किया जाये, बल्कि किसी कपड़े में लपेट कर वैसे ही गढ़ा खोदकर ज़मीन में दबा दिया जाये और उसका नाम भी न रखा जाये। (शामी जिल्द 1 पेजः 809)

2. हमल में कुछ जिस्मानी अंग बन गये हों

अगर हमल गिर जाये और उसके आज़ा (अंग) बन गये हों, पूरे आज़ा न बने हों तो उसका नाम रखा जाये और ग़ुस्ल भी दिया जाये, लेकिन बाक़ायदा कफ़न न दिया जाये बल्कि यूँ ही एक कपड़े में लपेट दिया जाये और जनाज़े की नमाज़ भी न पढ़ी जाये, बग़ैर नमाज़ पढ़े यूँ ही दफ़न कर दिया जाये। (शामी जिल्द 1 पेजः 830, 831, बहिश्ती ज़ेवर)

3. मुर्दा बच्चा पैदा होने का हुक्म

हमल के गिरने में या मामूल के मुताबिक़ पैदाईश में मरा हुआ बच्चा पैदा हो और पैदाईश के वक़्त ज़िन्दगी की कोई निशानी उसमें मौजूद न हो, अगरचे आज़ा (जिस्म के अंग) सब बन चुके हों, तो ऐसे बच्चे का वही हुक्म है जो पिछले मसले में बयान हुआ कि उसको ग़ुस्ल भी दिया जाये और नाम भी रखा जाये लेकिन बाक़ायदा कफ़न न दिया जाये और न जनाज़े की नमाज़ पढ़ी जाये, बल्कि यूँ ही किसी एक कपड़े में लपेटकर दफ़न कर दिया जाये। (शामी जिल्द 1 पेज 830)

4. पैदाइश के शुरू में बच्चा ज़िन्दा था फिर मर गया

पैदाइश के वक़्त बच्चे का सिर्फ़ सर निकला उस वक़्त वह ज़िन्दा था

फिर मर गया तो उसका हुक्म वही है जो मुर्दा बच्चा पैदा होने का ऊपर बयान हुआ कि उसको गुस्ल दिया जाये नाम रखा जाये, लेकिन क़ायदे के मुवाफ़िक़ कफ़न न दिया जाये, बल्कि किसी एक कपड़े में लपेट दिया जाये और बग़ैर नमाज़े जनाज़ा पढ़े यूँ ही दफ़न कर दिया जाये।

(शामी जिल्द 1 पेज 829, 830)

5. बदन का अक्सर हिस्सा निकलने तक बच्चा ज़िन्दा था

पैदाईश के वक़्त बदन का अक्सर हिस्सा निकलने तक बच्चा ज़िन्दा था उसके बाद मर गया, उसका हुक्म ज़िन्दा बच्चा पैदा होने की तरह है, उसको बाक़ायदा ग़ुस्ल दिया जाये, कफ़न दिया जाये, बेहतर यह हे कि लड़का हो तो मर्दों की तरह, लड़की हो तो औरतों की तरह कफ़न दिया जाये, लेकिन लड़के को सिर्फ़ एक और लड़की को सिर्फ़ दो कपड़े देना भी दुरुस्त है, और उसका नाम भी रखा जाये और नमाज़े जनाज़ा पढ़कर बाक़ायदा दफ़न किया जाये। (शामी)

और अगर बच्चा अक्सर हिस्सा बदन का निकलने से पहले मर गया तो वह हुक्म होगा जो मुर्दा बच्चा पैदा होने का पीछे बयान हुआ। और बदन का अक्सर हिस्सा ज़िन्दा निकलने का मतलब यह है कि अगर बच्चा सर की तरफ़ से पैदा हो तो सीने तक निकलने से अक्सर हिस्सा समझेंगे, और अगर उल्टा पैदा हुआ तो नाफ़ तक ज़िन्दा निकलने से अक्सर हिस्सा निकलना समझेंगे। (शामी जिल्द 1 पेजः 829, 830)

6. मुर्दा औरत के पेट में बच्चा ज़िन्दा हो तो क्या हुक्म है?

अगर किसी औरत का हमल (गर्भ) की हालत में इन्तिक़ाल हो जाये और उसके पेट में बच्चा ज़िन्दा हो तो औरत का पेट चाक करके बच्चा निकाल लिया जाये। (दुर्रे मुख़्तार जिल्द 1 पेजः 840)

फिर अगर ज़िन्दा निकलने के बाद यह बच्चा भी मर जाये तो सब

बच्चों की तरह उसका नाम रखा जाये, गुस्ल व कफ़न दिया जाये और जनाज़े की नमाज़ पढ़कर दफ़न कर दिया जाए। और अगर हमल (गर्भ यानी बच्चे) में जान ही न पड़ी हो या जान पड़ गयी हो लेकिन बाहर निकालने से पहले वह भी मर गया तो अब औ़रत का पेट चाक करके बच्चा न निकाला जाये, लेकिन अगर निकाल लिया तो उसका वही हुक्म होगा जो मुर्दा बच्चा पैदा होने का है।

7. जो शख़्स पानी में डूबकर मर गया हो

अगर कोई शख़्स पानी में डूबकर मर जाये तो निकालने के बाद उसको गुस्ल देना फ़र्ज़ है। पानी में डूबना गुस्ल के लिये काफ़ी नहीं, क्योंकि मय्यित को गुस्ल देना ज़िन्दों पर फ़र्ज़ है और डूबने में ज़िन्दों का कोई अ़मल नहीं हुआ, लेकिन अगर पानी से निकालते वक़्त गुस्ल की नीयत से मय्यित को पानी में हरकत दे दी जाये तो गुस्ल अदा हो जायेगा। (बहरुर्राइक़)

उसके बाद मय्यित को बाक़ायदा कफ़न देकर नमाज़े जनाज़ा पढ़कर सुन्नत के मुताबिक़ दफ़न करें, लेकिन अगर उसे बाग़ियों, डाकुओं या ग़ैर-मुस्लिम मुल्क के काफ़िरों ने डुबो दिया हो और उसमें शहीद की पहली क़िस्म की वे सब शर्तें मौजूद हों जो शहीद के बयान में गुज़र चुकी हैं तो उस पर शहीद के अहकाम जारी होंगे, वहाँ देख लिये जायें।

8. जो लाश फूल गई हो

किसी की लाश पानी में डूबने, या कफ़न दफ़न की तैयारी में देरी या किसी और वजह से अगर इतनी फूल जाये कि हाथ लगाने के भी क़ाबिल न रहे यानी गुस्ल के लिये हाथ लगाने से फट जाने का अन्देशा हो, तो ऐसी सूरत में लाश पर सिर्फ़ पानी बहा देना काफ़ी है, क्योंकि गुस्ल में मलना वग़ैरह ज़रूरी नहीं है। फिर बाक़ायदा कफ़नाकर जनाज़े की नमाज़ के बाद दफ़न करना चाहिये। लेकिन अगर नमाज़ से पहले लाश फट जाये तो नमाज़ पढ़े बग़ैर ही दफ़न कर दिया जाये।

(आ़लमगीरी, बहर, इमदादुल-अहकाम)

9. जिस लाश में बदबू पैदा हो गई हो

जिस लाश में बदबू पैदा हो गई हो मगर फटी न हो उसकी नमाज़ पढ़ी

जायेगी। (फ़तावा दारुल उलूम जिल्द 5 पेजः 335)

10. जो लाश फट गई हो

जो लाश फट गई हो उसकी जनाज़े की नमाज़ साक़ित है, उसकी नमाज़ न पढ़ी जाये। (बहर, इमदादुल-अहकाम)

11. सिर्फ़ हड्डियों का ढाँचा बरामद हुआ

जिस लाश का गोश्त वग़ैरह सब अलग हो गया और उसकी सिर्फ़ हड्डियों का ढाँचा बरामद हुआ, तो उस ढाँचे को गुस्ल देने की ज़रूरत नहीं, उस पर नमाज़े जनाज़ा भी न पढ़ी जाये, बल्कि वैसे ही किसी पाक कपड़े में लपेट कर दफ़न कर दिया जाये। (इमदादुल-अहकाम पेज 738)

12. जो शख़्स जलकर मर गया हो

जो शख़्स आग या बिजली से जलकर मर जाये उसे बाक़ायदा गुस्ल व कफ़न देकर और नमाज़े जनाज़ा पढ़कर सुन्नत के मुताबिक़ दफ़न किया जाये। और अगर लाश फूल या फट गयी हो तो उसका हुक्म ऊपर बयान हो चुका है। (दुर्रे मुख़्तार, बहर, इमदादुल-अहकाम)

लेकिन जिस शख़्स को बाग़ियों, डाकुओं या ग़ैर-मुस्लिम मुल्क के काफ़िरों ने जलाकर मारा हो, या वह जंग के मैदान में मरा हुआ पाया जाये और उसमें शहीद की पहली क़िस्म की सब शर्तें मौजूद हों तो उस पर शहीद के अहकाम जारी होंगे, जो पीछे तफ़सील से बयान हो चुके हैं।

13. जलकर कोयला हो जाने का हुक्म

जो शख़्स जलकर कोयला बन गया या बदन का अक्सर हिस्सा जलकर राख हो गया तो उसको गुस्ल व कफ़न देना और जनाज़े की नमाज़ पढ़ना कुछ वाजिब नहीं है, यूँ ही किसी कपड़े में लपेट कर दफ़न कर देना चाहिये।

(आलमगीरी, फ़तावा दारुल-उलूम जिल्द 1 पेज 345)

और अगर बदन का अक्सर हिस्सा जलने से महफ़ूज़ हो अगरचे सर के बग़ैर हो या आधा बदन मय सर के महफ़ूज़ हो, या पूरा जिस्म जला हो मगर मामूली जला हो, गोश्त-पोस्त और हड्डियाँ सालिम हों तो उसको बाक़ायदा गुस्ल व कफ़न देकर और जनाज़े की नमाज़ पढ़कर दफ़न करना

चाहिये। (आलमगीरी, शामी जिल्द 1 पेजः 809)

14. दबकर या गिरकर मरने वाले का हुक्म

जो शख़्स किसी दीवार या इमारत के नीचे दबकर मर जाये, या किसी बुलन्द जगह से नीचे गिरे या हवाई हादसे का शिकार होकर हलाक हो जाये और बदन का अक्सर हिस्सा महफ़ूज़ हो तो उसको बाक़ायदा गुस्ल व कफ़न देकर और जनाज़े की नमाज़ पढ़कर दफ़न करना चाहिये। लेकिन अगर यह हादसा दुश्मन काफ़िरों या बाग़ियों या डाकुओं की कार्रवाई से हुआ हो तो उसमें मरने वालों पर शहीद के अहकाम जारी होंगे, जिनकी तफ़सील पीछे शहीद के अहकाम में आ चुकी है।

15. आ़म हादसों का शिकार होने वालों का हुक्म

मोटर साईकिलों, रेल गाड़ियों और दूसरी सवारियों के टकराने से हलाक होने वालों का भी वही हुक्म है जो ऊपर के मसले में बयान हुआ।

(दुर्रे मुख़्तार)

16. जो लाश कुएँ या मलबे से न निकाली जा सके

अगर कोई शख़्स कुएँ वग़ैरह में गिरकर या किसी इमारत वग़ैरह के मलबे में दबकर मर गया, और वहाँ से लाश निकालना मुम्किन न हो तो मजबूरी के सबब उसका गुस्ल कफ़न माफ़ है और जहाँ लाश डूबी या दबी रह गई है उसी जगह को उसकी क़ब्र समझा जायेगा और उसी हालत में उस पर नमाज़े जनाज़ा पढ़ी जायेगी। (शामी जिल्द 1 पेज 827)

17. जो लाश समुद्र वग़ैरह में लापता हो जाये

कोई शख़्स समुद्र में डूबकर मर गया और लाश का पता न चले, या किसी और तरीक़े से मरा हो और लाश गुम या लापता हो गयी हो तो ऐसी सूरत में गुस्ल व कफ़न, नमाज़े जनाज़ा और तदफ़ीन सब माफ़ हैं, उसकी नमाज़े जनाज़ा ग़ायबाना भी न पढ़ी जाये, क्योंकि नमाज़े जनाज़ा दुरुस्त होने के लिये एक शर्त यह भी है कि मय्यित सामने मौजूद हो।

(शामी जिल्द 1 पेज 827)

18. मुसलमानों और काफ़िरों की लाशें एक जगह मिल जायें और पहचानी न जा सकें

किसी हादसे में अगर मुसलमान और काफ़िरों की लाशें ख़ल्त-मल्त हो जायें तो अगर मुसलमान किसी भी निशानी (ख़तना वग़ैरह) से पहचाने जा सकें तो उनको अलग कर लिया जाये और उनका ग़ुस्ल, नमाज़े जनाज़ा और दफ़न वग़ैरह सब काम मुसलमानों की तरह किये जायें और काफ़िरों की लाशों के साथ वह मामला किया जाये जो काफ़िरों के साथ किया जाता है। इसकी तफ़सील दूसरे बाब के शुरू में आ चुकी है।

(बहिश्ती गौहर, शामी जिल्द 1 पेजः 805, आ़लमगीरी जिल्द 1 पेजः 159)

और अगर मुसलमानों और काफ़िरों के दरमियान किसी तरह फ़र्क़ और पहचान न हो सके और किसी निशानी से पता न चले कि कौनसी लाशें मुसलमानों की और कौनसी काफ़िरों की हैं, तो उसकी नीचे लिखी जाने वाली तीन सूरतें हैं।

(1) अगर मरने वालों में मुसलमानों की तादाद ज़्यादा हो तो सब लाशों के साथ वही मामला किया जाये जो मुसलमानों के साथ किया जाता है। यानी सबको बाक़ायदा ग़ुस्ल व कफ़न देकर नमाज़े जनाज़ा के बाद मुसलमानों के क़ब्रिस्तान में दफ़न किया जाये, लेकिन जनाज़े की नमाज़ में सिर्फ़ मुसलमानों पर नमाज़ पढ़ने की नीयत की जाये, काफ़िरों पर नमाज़े जनाज़ा की नीयत करना जायज़ नहीं।

(शामी जिल्द 1 पेज 805, आ़लमगीरी जिल्द 1 पेज 159)

(2) और अगर लाशें काफ़िरों की ज़्यादा और मुसलमानों की कम हों तो सब लाशों को ग़ुस्ल व कफ़न दिया जाये (1) और उनपर नमाज़े जनाज़ा भी सिर्फ़ मुसलमानों की नीयत से पढ़ी जाये और उसके बाद सब को काफ़िरों के क़ब्रिस्तान में दफ़न कर दिया जाये। (2) (शामी, दुर्रे मुख़्तार 1-805)

---

(1) फ़तावा आ़लमगीरी में है कि यह ग़ुस्ल व कफ़न मुसलमानों की तरह बाक़ायदा नहीं होगा बल्कि यूँ ही पानी से लाशों को धोकर एक-एक कपड़े में लपेट दिया जाये। (जिल्द 1 पेजः 159)

(2) अगर सबको किसी अलग जगह में दफ़न कर दिया जाये, यानी न काफ़िरों के क़ब्रिस्तान में न मुसलमानों के तो यह सूरत ज़्यादा एहतियात की मालूम होती है। अगले मसले के बारे में तो साहिब दुर्रे मुख़्तार ने इसकी वज़ाहत की है जैसा कि आगे आ रहा है। रफ़ी

(३) अगर मुसलमानों और काफ़िरों की लाशें बराबर हों तो सबको गुस्ल व कफ़न देकर सबपर नमाज़ सिर्फ़ मुसलमानों की नीयत से पढ़ी जाये लेकिन दफ़न करने के मक़ाम में फ़ुक़हा के तीन क़ौल हैं। एक यह कि सबको मुसलमानों के क़ब्रिस्तान में दफ़न कर दिया जाये। दूसरा यह कि सबको काफ़िरों के क़ब्रिस्तान में दफ़न कर दिया जाये।

तीसरा क़ौल यह है कि उनके लिये कोई अलग क़ब्रिस्तान बना दिया जाये। इस तीसरे क़ौल में एहतियात ज़्यादा है (लेकिन इनमें से जिस क़ौल पर भी अ़मल कर लिया जाये दुरुस्त होगा)

(दुर्रे मुख़्तार, शामी जिल्द 1 पेज 805, 806)

19. किसी मुसलमान की काफ़िर बीवी हमल की हालत में मर जाए

अगर किसी मुसलमान की यहूदी या ईसाई बीवी हमल की हालत में मर जाये तो हमल में अगर जान ही न पड़ी थी तब तो औ़रत को काफ़िरों ही के क़ब्रिस्तान में दफ़न किया जायेगा। और अगर जान पड़ चुकी थी, फिर मुर्दा माँ के पेट में बच्चा भी मर गया तो इस सूरत में चूँकि वह मुसलमान का बच्चा था और मुसलमान ही के हुक्म में होना चाहिये लेकिन काफ़िर माँ के पेट में होने की वजह से माँ के दफ़न करने के मक़ाम में यहाँ भी फ़ुक़हा-ए-किराम रहमतुल्लाहि अ़लैहिम के वही तीन क़ौल हैं जो ऊपर के मसले में तीसरी सूरत में ज़िक्र किये गये।

एक यह कि उस औ़रत को बच्चे की रियायत के पेशे नज़र मुसलमानों के क़ब्रिस्तान में दफ़न किया जाये। दूसरा यह कि काफ़िरों के क़ब्रिस्तान में दफ़न किया जाये। तीसरा यह कि औ़रत को न मुसलमानों के क़ब्रिस्तान में दफ़न किया जाये न काफ़िरों के, बल्कि किसी अलग जगह दफ़न कर दिया जाये। इस तीसरे क़ौल में ज़्यादा एहतियात है।

लेकिन जो क़ौल भी इख़्तियार किया जाये, क़ब्र में औ़रत की पुश्त बहरहाल क़िब्ले की तरफ़ कर देनी चाहिये, क्योंकि पेट में बच्चे का मुँह माँ की पुश्त की तरफ़ होता है, इस तरह बच्चे का मुँह क़िब्ले की तरफ़ हो जायेगा। (शामी व दुर्रे मुख़्तार जिल्द 1 पेज 805, 806)

20. जिस मय्यित का मुसलमान होना मालूम न हो

किसी मर्द या औ़रत की लाश मिले और किसी निशानी वग़ैरह से मालूम न हो कि वह मुसलमान है या काफ़िर, तो जिस इलाक़े से लाश मिली है वहाँ अगर मुसलमानों की अक्सरियत है तो उसको मुसलमान समझा जाये और बाक़ायदा ग़ुस्ल व कफ़न देकर और नमाज़े जनाज़ा पढ़कर दफ़न किया जाये। और अगर वहाँ ग़ैर-मुस्लिमों की अक्सरियत है तो उसके साथ ग़ैर-मुस्लिमों के जैसा मामला किया जाये।

(दुर्रे मुख़्तार, आ़लमगीरी व बहिश्ती गौहर मय हाशिया)

21. जिस मय्यित को ग़ुस्ल या नमाज़े जनाज़ा के बग़ैर ही दफ़न कर दिया गया

अगर किसी मुसलमान मय्यित को ग़लती से ग़ुस्ल दिये बग़ैर या नमाज़े जनाज़ा पढ़े बग़ैर क़ब्र में रख दिया तो अगर मिट्टी डालने से पहले याद आ जाये तो मय्यित को बाहर निकाल लिया जाये, फिर अगर ग़ुस्ल दे दिया था तो सिर्फ़ नमाज़े जनाज़ा पढ़कर दफ़न कर दिया जाये।

और अगर मिट्टी डालने के बाद याद आये तो ग़ुस्ल या नमाज़ के लिये अब क़ब्र खोलना जायज़ नहीं। अब हुक्म यह है कि जब तक ग़ालिब गुमान यह हो कि लाश फटी न होगी, क़ब्र ही पर नमाज़ पढ़ी जाये। और तरजीह दिये गये क़ौल के मुताबिक़ लाश फटने की कोई ख़ास मुद्दत मुक़र्रर नहीं, क्योंकि मौसम, मक़ाम और मय्यित के मोटे दुबले होने से यह मुद्दत अलग-अलग होती है। इसलिये जब तक ग़ालिब गुमान यह हो कि लाश फटी न होगी, नमाज़े जनाज़ा पढ़ना फ़र्ज़ है। ऐसी सूरत में ताक़त होने के बावजूद न पढ़ने वाले गुनाहगार हुए, उन पर लाज़िम है कि तौबा इस्तिग़फ़ार करें और आईन्दा ऐसी ग़फ़लत न करें। (दुर्रे मुख़्तार)

और जब ग़ालिब गुमान यह हो कि लाश फट चुकी होगी तो अब जनाज़े की नमाज़ न पढ़ी जाये। और अगर शक हो कि लाश फटी है या नहीं? तो इस सूरत में भी क़ब्र पर नमाज़े जनाज़ा न पढ़ी जाये।

(शामी जिल्द 1 पेजः 827)

22. ख़ुदकुशी करने वाले का हुक्म

जो शख़्स अपने आपको ग़लती से या जान बूझकर हलाक कर दे तो उसको बाक़ायदा गुस्ल व कफ़न देकर और नमाज़े जनाज़ा पढ़कर दफ़न किया जाये। (दुर्रे मुख़्तार, शामी जिल्द 1 पेज 815)

23. किसी लाश के टुकड़े मिले

अगर किसी की पूरी लाश न मिल सके, जिस्म के कुछ हिस्से मिलें तो उसकी चन्द सूरतें हैं।

(1) सिर्फ़ हाथ या टाँग या सर या कमर या और कोई अंग मिले तो उस पर गुस्ल व कफ़न और नमाज़ कुछ नहीं, बल्कि किसी कपड़े में लपेट कर यूँ ही दफ़न कर देना चाहिये। (शामी, बहिश्ती गौहर पेज 90)

(2) जिस्म के चन्द अलग-अलग अंग जैसे सिर्फ़ दो टाँगें या सिर्फ़ दो हाथ या सिर्फ़ एक हाथ और एक टाँग या इसी तरह दूसरे चन्द जिस्मानी अंग मिलें और यह अलग-अलग अंग मिलकर मय्यित के पूरे जिस्म के आधे हिस्से से कम हों, मय्यित का अक्सर हिस्सा ग़ायब हो तो उन अंगों पर गुस्ल व कफ़न और नमाज़े जनाज़ा कुछ नहीं, यूँ ही किसी कपड़े में लपेट कर दफ़न कर दिया जाये। (शामी, बहिश्ती गौहर)

(3) और अगर मय्यित के जिस्म का आधा हिस्सा बग़ैर सर के मिले तो उसका भी गुस्ल व कफ़न और नमाज़े जनाज़ा कुछ नहीं, यूँ ही कपड़े में लपेट कर दफ़न कर दिया जाये। (शामी, बहिश्ती गौहर)

(4) और अगर मय्यित के जिस्म का आधा हिस्सा मय सर के मिले तो उसको बाक़ायदा गुस्ल व कफ़न देकर और जनाज़े की नमाज़ पढ़कर दफ़न किया जाये। (शामी, बहिश्ती गौहर)

(5) और अगर मय्यित के जिस्म का अक्सर हिस्सा मिल जाये अगरचे बग़ैर सर के मिले तो भी बाक़ायदा गुस्ल व कफ़न देकर और जनाज़े की नमाज़ पढ़कर दफ़न किया जाये। (शामी, बहिश्ती गौहर)

24. दफ़न करने के बाद बाक़ी जिस्मानी हिस्से मिले

किसी मय्यित के जिस्म का अक्सर हिस्सा मिला और बाक़ी हिस्सा न

मिला और अक्सर बदन के हिस्से पर नमाज़े जनाज़ा पढ़कर दफ़न कर दिया, उसके बाद जिस्म का बाक़ी हिस्सा मिला तो अब उस बाक़ी हिस्से पर जनाज़े की नमाज़ नहीं पढ़ी जायेगी बल्कि यूँ ही किसी कपड़े में लपेटकर दफ़न कर दिया जाये। (आलमगीरी, शामी)

25. ज़िन्दगी में जिस्म से अलग हो जाने वाले अंगों का हुक्म

किसी ज़िन्दा शख़्स का कोई जिस्मानी अंग उसके बदन से कट जाये या ऑप्रेशन के ज़रिये अलग कर दिया जाये तो उसका गुस्ल व कफ़न और नमाज़े जनाज़ा कुछ नहीं, यूँ ही किसी कपड़े में लपेटकर दफ़न कर दिया जाये। (दुर्रे मुख़्तार, फ़तावा दारुल-उलूम)

26. क़ब्र से सही सालिम लाश निकले

कोई क़ब्र खुल जाये और किसी वजह से लाश बाहर निकल आये। जैसे ज़लज़ला या सैलाब वग़ैरह से या कफ़न चोर की हरकत से, और कफ़न उस पर न हो तो अगर लाश फट चुकी है तो अब बाक़ायदा कफ़न देने की ज़रूरत नहीं, यूँ ही किसी कपड़े में लपेटकर दफ़न कर दिया जाये। और अगर लाश फटी न हो तो उसको पूरा कफ़न सुन्नत के मुताबिक़ देना चाहिये। अगर एक ही लाश के साथ यह वाक़िआ बार-बार पेश आये तो हर बार उसे पूरा मसनून कफ़न दिया जाये।

उस कफ़न का पूरा ख़र्च उसी मय्यित के असल तर्का (छोड़े हुए माल) से लिया जायेगा, अगरचे मय्यित मक़रूज़ हो। लेकिन अगर सारा तर्का (छोड़ा हुआ माल) क़र्ज़े वालों में तक़सीम हो चुका हो या किसी और मद में मय्यित की वसीयत के मुताबिक़ तक़सीम हो गया हो तो क़र्ज़-ख़्वाहों से और वसीयत में माल हासिल करने वालों से उस कफ़न के ख़र्च का मुतालबा नहीं किया जा सकता।

और अगर उसका तर्का वारिसों में तक़सीम हो गया था तो हर वारिस को जितना-जितना फ़ीसद हिस्सा मीरास में मिला था, कफ़न का ख़र्च भी उसी तनासुब (अनुपात) से हर वारिस पर आयेगा। (शामी जिल्द 1 पेज 809)

27. डाकू या बाग़ी लड़ाई में क़त्ल हो जायें या वे दूसरों को क़त्ल कर दें

अगर डाकू या बाग़ी लड़ाई के दौरान क़त्ल हो जायें तो उनकी तौहीन करने और दूसरों की इब्रत के लिये हुक्म यह है कि उनको न ग़ुस्ल दिया जाये (1) न उनकी नमाज़े जनाज़ा पढ़ी जाये बल्कि यूँ ही दफ़न कर दिया जाये। लेकिन अगर लड़ाई के बाद क़त्ल किये गये या लड़ाई के बाद अपनी मौत से मर जायें तो फिर उनको ग़ुस्ल भी दिया जायेगा और नमाज़े जनाज़ा भी पढ़ी जायेगी। यही हुक्म उन लोगों का है जो क़बाईली, वतनी या लिसानी (भाषा के) तास्सुब के लिये लड़ते हुए मारे जायें।

और अगर डाकू या बाग़ी डाका डालने या लड़ाई के दौरान किसी को क़त्ल कर दें तो वह शहीद है, बग़ैर ग़ुस्ल व कफ़न के सिर्फ़ नमाज़े जनाज़ा पढ़कर दफ़न कर दिया जाये। पीछे शहीद के अहकाम में इसकी तफ़सील और तमाम शर्तें ग़ौर से देख ली जायें। (दुर्रे मुख़्तार, शामी जिल्द 1 पेज 814)

---

(1) फ़िक़्हा हनफ़ी ही का एक क़ौल जिसपर अ़ल्लामा शामी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़तवा नक़ल किया है, यह है कि उनको ग़ुस्ल तो दिया जाये लेकिन उनपर नमाज़ न पढ़ी जाये।
(शामी जिल्द 1 पेजः 814)

छठा बाब

मौत की इद्दत

शौहर का इन्तिक़ाल हो जाये या तलाक़ हो जाये या ख़ुला (यानी कुछ माल वग़ैरह देकर शौहर से तलाक़ ले ली जाए) वग़ैरह या किसी और तरह से निकाह टूट जाये, तो इन सब सूरतों में औ़रत को मुक़र्ररा मुद्दत तक एक घर में रहना पड़ता है। जब तक यह मुद्दत ख़त्म न हो चुके उस वक़्त तक कहीं और जाना जायज़ नहीं। इस मुद्दत के गुज़ारने को इद्‌दत कहते हैं। उस मुद्दत में किसी और मर्द से निकाह भी नहीं कर सकती। अगर कर लिया तो वह निकाह बातिल है, हुआ ही नहीं।

(बहिश्ती ज़ेवर, इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत)

तंबीहः इद्‌दत अगर शौहर की मौत की वजह से हो तो उसे "इद्दते वफ़ात" (मौत की इद्दत) कहा जाता है। और अगर तलाक़ या ख़ुला वग़ैरह की वजह से हो तो उसे "इद्दते तलाक़" कहते हैं। दोनों क़िस्म की इद्दत के अहकाम और मुद्दत में कुछ फ़र्क़ है। यहाँ सिर्फ़ "इद्दते वफ़ात" के मसाईल लिखे जा रहे हैं। "इद्दते तलाक़" के मसाईल के लिये "बहिश्ती ज़ेवर" या उलेमा-ए-किराम से रुजू किया जाये।

मसलाः जिस औ़रत के शौहर का इन्तिक़ाल हो जाये वह चार महीने और दस दिन तक इद्दत में रहे। शौहर के इन्तिक़ाल के वक़्त जिस घर में रहा करती थी उसी घर में रहना चाहिये, बाहर निकलना दुरुस्त नहीं।

(बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः शौहर की ज़िन्दगी में उसके साथ औ़रत की मुबाशरत (हमबिस्तरी) या किसी क़िस्म की तन्हाई (ख़ल्वत) हुई हो या न हुई हो, रुख़्सती हुई हो या न हुई हो, और चाहे माहवारी आती हो या न आती हो, बूढ़ी हो या जवान, बालिग़ा हो या नाबालिग़ा सबका एक हुक्म है कि चार महीने दस दिन इद्दत में रहे। लेकिन अगर वह हमल (गर्भ) से थी, उस हालत में शौहर का इन्तिक़ाल हुआ तो बच्चा पैदा होने तक इद्दत में रहेगी। अब महीनों का कुछ एतिबार नहीं। अगर शौहर की मौत के थोड़ी देर बाद

ही बच्चा पैदा हो गया तब भी इद्दत ख़त्म हो गयी।

(बहिश्ती ज़ेवर, आ़लमगीरी, इमदादुल-फ़तावा)

मसलाः घर भर में जहाँ जी चाहे रहे। बाज़ घरानों में जो रस्म है कि ख़ास एक जगह मुक़र्रर करके रहती है, बेचारी को उस जगह से हटना ही ऐब की बात और बुरा समझा जाता है यह बिल्कुल ग़लत, मोहमल और वाहियात है। यह रस्म छोड़ना चाहिये। (बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः औ़रत किसी काम के लिये घर से बाहर कहीं गयी थी, या अपनी पड़ोसन, मैके या रिश्तेदारों वग़ैरह के घर चन्द दिन के लिये गयी थी (शौहर साथ हो या न हो) इतने में उसके शौहर का इन्तिक़ाल हो गया तो अब फ़ौरन वहाँ से चली आये और जिस घर में रहती थी उसी में रहे। शौहर का इन्तिक़ाल चाहे किसी भी जगह हुआ हो।

(बहिश्ती ज़ेवर, इमदादुल फ़तवा जिल्द 2 पेंजः 427, 442)

मसलाः जिस औ़रत को शौहर ने नाराज़ होकर मैके भेज दिया हो, फिर शौहर का इन्तिक़ाल हो जाये तो वह शौहर के घर आकर इद्दत पूरी करे, क्योंकि इद्दत उस घर में की जाती है जहाँ शौहर के इन्तिक़ाल पर औ़रत की मुस्तक़िल रिहाईश थी, आ़रिज़ी (अस्थाई) रिहाईश का एतिबार नहीं। और ज़ाहिर है कि मैके में आना आ़रिज़ी था। (इमदादुल-फ़तावा जिल्द 2 पेज 427)

मसलाः अगर शौहर का इन्तिक़ाल चाँद की पहली तारीख़ को हुआ और औ़रत को हमल (गर्भ) नहीं है तो चाँद के हिसाब से चार महीने दस दिन पूरे करना होंगे। और अगर पहली तारीख़ के अ़लावा किसी और तारीख़ में इन्तिक़ाल हुआ तो हर महीना तीस-तीस दिन का लगाकर चार महीने दस दिन पूरे करना होंगे। (1) और जिस वक़्त वफ़ात हुई जब यह मुद्दत गुज़र कर वही वक़्त आयेगा इद्दत ख़त्म हो जायेगी।

(बहिश्ती ज़ेवर, मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन)

मसलाः इद्दत शौहर की वफ़ात से शुरू हो जाती है अगरचे औ़रत को वफ़ात की ख़बर न हो और उसने इद्दत की नीयत भी न की हो। (दुर्रे मुख़्तार)

मसलाः किसी के शौहर का इन्तिक़ाल हो गया मगर उसको ख़बर नहीं मिली। चार महीने दस दिन गुज़र जाने के बाद ख़बर मिली, तो उसकी इद्दत पूरी हो चुकी। यानी जब से ख़बर मिली है उस वक़्त से नये सिरे से इद्दत

(1) यानी पूरे एक सौ तीस दिन (मआ़रिफ़ुल क़ुरआन)

नहीं गुज़ारी जायेगी। (बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः किसी औ़रत को इन्तिक़ाल की ख़बर कई दिन बाद मिली, मगर वफ़ात की तारीख़ में शक है तो जिस तारीख़ का यक़ीन हो इद्दत उस तारीख़ से शुमार की जायेगी। (1) (शामी जिल्द 2 पेज 838)

मसलाः बाज़ लोगों में जो दस्तूर है कि शौहर की मौत के बाद साल भर तक इद्दत के तौर पर बैठी रहती है यह बिल्कुल हराम है। (बहिश्ती ज़ेवर)

इद्दत के ज़माने में औ़रत का नान-नफ़क़ा

मसलाः वफ़ात की इद्दत में औ़रत का नान-नफ़क़ा (खाना, कपड़ा) और रहने का मकान (2) उसकी ससुराल के ज़िम्मे नहीं, शौहर के तर्के (छोड़े हुए माल) में से भी नान नफ़क़ा लेने का हक़ नहीं, लेकिन तर्का में जो मीरास का हिस्सा शरीअ़त ने मुक़र्रर किया है वह उसको मिलेगा। (बहिश्ती ज़ेवर)

हामिला (गर्भवती) की इद्दत और हमल का गिर जाना

यह तो पीछे मालूम हो चुका है कि हामिला औ़रत की इद्दत बच्चा पैदा होने से ख़त्म हो जाती है लेकिन अगर हमल गिर जाये यानी गर्भपात हो जाये तो उसमें यह तफ़सील है कि अगर हमल का कोई हिस्सा जैसे मुँह, नाक या उंगली वग़ैरह बन गया था तब तो इद्दत ख़त्म हो गयी और अगर हिस्सा और अंग बिल्कुल न बना था सिर्फ़ लोथड़ा या गोश्त का टुकड़ा था, तो उससे इद्दत ख़त्म न होगी बल्कि यूँ समझा जायेगा कि यह औ़रत हमल से नहीं थी, इसलिये उसकी इद्दत चार महीने दस दिन ही होगी।

(शामी जिल्द 2 पेज 831)

मसलाः शरअ़न् दो साल से ज़्यादा हमल नहीं रहता। इसलिये जो औ़रत शौहर के इन्तिक़ाल के वक़्त बज़ाहिर हमल से थी लेकिन दो साल तक बच्चा पैदा न हुआ तो वह शरई तौर पर हामिला न होगी, उसकी इद्दत

---

(1) जैसे एक एहतिमाल यह है कि इन्तिक़ाल 4 'रजब' को हुआ, दूसरा एहतिमाल यह है कि 4 'शाबान' को हुआ तो एहतियातन इद्दत का ज़माना 4 शाबान से शुमार होगा। (रफ़ी)

(2) मकान की तफ़सील आगे उन्वान "मजबूरी में घर से निकलना" के तहत और उससे अगले दो उन्वानों के तहत देखी जाये। (रफ़ी)

शौहर के इन्तिक़ाल के चार महीने दस दिन बाद ख़त्म हो चुकी।

(अज़ीज़ुल फ़तावा पेज 542)

मसला: अगर किसी हामिला के पेट में दो बच्चे थे, एक पैदा हो गया दूसरा बाक़ी है तो जब तक दूसरा बच्चा भी पैदा न हो इद्दत ख़त्म न होगी।

(शामी जिल्द 2 पेज 831)

तलाक़ की इद्दत में शौहर का इन्तिक़ाल हो जाये

जिस औरत को शौहर ने किसी भी क़िस्म की तलाक़ दी हो या ख़ुला हुआ हो, या किसी और तरह से निकाह टूट गया हो, फिर तलाक़ की इद्दत ख़त्म हो जाने के बाद उस पहले शौहर का इन्तिक़ाल हो जाये तो अब मौत की वजह से औरत पर कोई इद्दत वाजिब नहीं और वह उसकी वारिस भी नहीं होगी। (शामी जिल्द 2 पेज 833)

और अगर शौहर का इन्तिक़ाल तलाक़ की इद्दत ख़त्म होने से पहले हो गया तो उसमें नीचे लिखी गयी तफ़सील है:

1. अगर किसी शौहर ने तलाक़े रजई (एक या दो तलाक़, जबकि उससे पहले कभी कोई तलाक़ न दी हो) दी थी, चाहे अपनी बीमारी में दी हो या तन्दुरुस्ती में, तो अब औरत तलाक़ की इद्दत को वहीं छोड़कर इन्तिक़ाल के वक़्त से नये सिरे से वफ़ात की इद्दत गुज़ारेगी और शौहर की वारिस भी होगी। (शामी जिल्द 2 पेज 833)

2. अगर तलाक़े बाईन (यानी जिससे फिर रुजू करने का हक़ नहीं रहता) दी थी (1) और तलाक़ के वक़्त शौहर तन्दुरुस्त था। चाहे तलाक़ औरत की मर्ज़ी से दी हो या मर्ज़ी के बग़ैर, फिर तलाक़ की इद्दत ख़त्म होने से पहले शौहर का इन्तिक़ाल हो गया तो अब औरत सिर्फ़ तलाक़ की इद्दत ही जितनी बाक़ी रह गयी हो वह पूरी करेगी, वफ़ात की इद्दत नहीं गुज़ारेगी, और शौहर की वारिस भी न होगी। (शामी जिल्द 2 पेज 833)

3. अगर तलाक़े बाईन के वक़्त शौहर बीमार था और तलाक़ औरत की मर्ज़ी से दी थी तो उस सूरत में भी वही हुक्म है जो ऊपर बयान हुआ कि औरत सिर्फ़ तलाक़ की इद्दत ही जितनी रह गयी हो वह पूरी करेगी,

(1) इन मसाइल में जो हुक्म तलाक़े बाइन का लिखा गया है बिल्कुल वही तलाक़े मुग़ल्लज़ा का हुक्म (यानी तीन तलाक़ों) का भी है। जैसा कि हिदाया के बाबुल इद्दत में बयान किया गया है। (रफ़ी)

वफ़ात की इद्दत नहीं गुज़ारेगी और शौहर की वारिस भी न होगी।

(शामी, हिदाया)

4. अगर तलाक़े बाईन शौहर ने अपनी बीमारी में औ़रत की मर्ज़ी के बग़ैर दी थी तो उस सूरत में देखा जायेगा कि तलाक़ की इद्दत पूरी होने में ज़्यादा दिन लगेंगे या मौत की इद्दत पूरी होने में? जिस इद्दत में ज़्यादा दिन लगें औ़रत वह इद्दत पूरी करेगी और शौहर की वारिस होगी।

(शामी जिल्द 2 पेज 832, बहिश्ती ज़ेवर)

वे काम जो इद्दत में जायज़ नहीं

जिस औ़रत के शौहर का इन्तिक़ाल हुआ हो उसके लिये हुक्म यह है कि इद्दत के ज़माने में न तो घर से बाहर निकले न अपना दूसरा निकाह करे, न कुछ बनाव-सिंघार करे। इद्दत में ये सब बातें उस पर हराम हैं। इस सिंघार न करने और मैले-कुचैले रहने को "सोग" कहते हैं।

(बहिश्ती ज़ेवर हिस्सा 4)

इद्दत में सोग वाजिब है

मसलाः सोग करना उसी औ़रत पर वाजिब है जो मुसलमान और आ़क़िल व बालिग़ हो, काफ़िर या मजनूँ औ़रत या नाबालिग़ लड़की पर वाजिब नहीं। उनको बनाव सिंघार करना जायज़ है, लेकिन घर से निकलना और दूसरा निकाह करना उनको भी दुरुस्त नहीं। (बहिश्ती ज़ेवर हिस्सा 4)

मसलाः जिसका निकाह सही नहीं हुआ था बेक़ायदा हो गया था, फिर मर्द मर गया तो ऐसी औ़रत को भी सोग करना वाजिब नहीं। (1)

(बहिश्ती ज़ेवर हिस्सा 4)

मसलाः जो औ़रत वफ़ात की इद्दत में हो उसे साफ़ लफ़्ज़ों में पैग़ामे निकाह देना या उससे मंगनी करना भी हराम है। लेकिन निकाह का पैग़ाम देने में कोई बात इशारे के तौर पर कह देना (जैसे यह कि "मुझको एक

(1) लेकिन इद्दत उसपर वाजिब है। यानी दूसरा निकाह करना इद्दत में जायज़ नहीं। (दुर्रे मुख़्तार जिल्द 2 पेजः 825) और ऐसी औ़रत का मर्द जब मर जाये तो वह चार महीने दस दिन इद्दत न बैठे बल्कि तीन हैज़ (माहवारी) पूरे आने तक बैठे, हैज़ न आता हो तो तीन महीने, और हमल से हो तो बच्चा पैदा होने तक इद्दत रहेगी। (बहिश्ती ज़ेवर, दुर्रे मुख़्तार जिल्द 2 पेजः 850)

नेक औरत से निकाह की ज़रूरत है'') जायज़ है। और जो औरत तलाक़ की इद्दत में हो उससे यह बात इशारे में कहना भी जायज़ नहीं।

(दुर्रे मुख़्तार जिल्द 2 पेज 852, मआरिफ़ुल-क़ुरआन सूरः ब-क़रह)

मसलाः जब तक इद्दत ख़त्म न हो उस वक़्त तक ख़ुशबू लगाना, कपड़े या बदन में ख़ुशबू बसाना, ज़ेवर-गहना पहनना, फूल पहनना, चूड़ियाँ पहनना (अगरचे काँच की हों) सुर्मा लगाना, पान खाकर मुँह लाल करना, मिस्सी मलना, सर में तेल डालना, कंघी करना, मेहंदी लगाना, रेशमी और रंगे हुए बहारदार (नये) कपड़े पहनना, ये सब बातें हराम हैं। लेकिन अगर रंगे हुए कपड़े बहारदार न हों (पुराने हों) तो दुरुस्त है चाहे जैसा रंग हो। मतलब यह है कि ज़ीनत (सिंघार) का कपड़ा न हो।

मसलाः सर धोना और नहाना इद्दत में जायज़ है। ज़रूरत के वक़्त कंघी करना भी दुरुस्त है। जैसे किसी ने सर धोया, या जुएँ पड़ गईं, लेकिन पट्टी न झुकाए न बारीक कंघी से कंघी करे, जिसमें बाल चिकने हो जाते हैं, बल्कि मोटे दनदाने वाली कंघी करे कि ज़ीनत न होने पाए।

(बहिश्ती ज़ेवर, शामी)

मसलाः जिस औरत के पास सारे ही कपड़े ऐसे हों जिनसे ज़ीनत होती है, मामूली कपड़े बिल्कुल न हों, उसे चाहिये कि मामूली कपड़े कहीं से हासिल करके पहने अगरचे इस मक़सद के लिये अपने बढ़िया कपड़े बेचने पड़ें। और जब तक वे हासिल न हों वही ज़ीनत वाले कपड़े पहनती रहे, मगर ज़ीनत की नीयत न करे। (शामी पेज 115)

मसलाः इद्दत गुज़र जाने के बाद ये सब पाबन्दियाँ ख़त्म हो जाती हैं, दूसरा निकाह भी कर सकती है। (बहिश्ती ज़ेवर हिस्सा 4)

मसलाः शौहर के अलावा किसी और की मौत पर सोग करना जायज़ नहीं। लेकिन अगर शौहर मना न करे तो अपने अज़ीज़ और रिश्तेदार के मरने पर भी तीन दिन तक बनाव सिंघार छोड़ देना दुरुस्त है, इससे ज़्यादा बिल्कुल हराम है। और अगर शौहर मना करे तो तीन दिन भी न छोड़े।

(बहिश्ती ज़ेवर हिस्सा 4)

हदीस शरीफ़ः नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का इरशाद है कि किसी मोमिन के लिये जायज़ नहीं कि तीन दिन से ज़्यादा किसी का सोग मनाये सिवाय बेवा के कि (शौहर की मौत पर) उसके सोग की मुद्दत

(जबकि वह हमल से न हो) चार महीने दस दिन है। (तिर्मिज़ी व बुख़ारी)

इलाज के तौर पर ज़ीनत की चीज़ें इस्तेमाल करना

मसलाः सर में दर्द होने या जुएँ पड़ जाने की वजह से तेल डालने की ज़रूरत पड़े तो जिसमें ख़ुशबू न हो वह तेल डालना दुरुस्त है।

(बहिश्ती ज़ेवर, इमदादुल-फ़तावा जिल्द 2 पेज 450)

मसलाः जिस औरत को सर में तेल डालने की ऐसी आदत हो कि न डालने से ग़ालिब गुमान है कि दर्द हो जायेगा, वह भी बग़ैर ख़ुशबू का तेल दर्द के ख़ौफ़ से डाल सकती है, अगरचे अभी दर्द शुरू न हुआ हो।

(हिदाया जिल्द 2, आलमगीरी)

मसलाः दवा के लिये सुर्मा लगाना भी ज़रूरत के वक़्त दुरुस्त है लेकिन रात को लगाये और दिन को पोंछ डाले। (बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः रेशम का कपड़ा अगर खुजली वग़ैरह के इलाज के तौर पर पहनने की ज़रूरत पड़ जाये तो इसकी भी गुंजाइश है, फिर भी ज़ीनत के इरादे से न पहने। (हिदाया जिल्द 2)

मजबूरी में घर से निकलना

शौहर के इन्तिक़ाल के वक़्त जिस घर में औरत की मुस्तक़िल रिहाईश थी उसी घर में इद्दत पूरी करना वाजिब है बाहर निकलना जायज़ नहीं। (1) लेकिन अगर वह इतनी ग़रीब है कि उसके पास गुज़ारे के मुवाफ़िक़ ख़र्च नहीं तो उसे नौकरी या मज़दूरी के लिये पर्दे के साथ बाहर जाना दिन में जायज़ है, लेकिन रात को अपने ही घर में रहा करे। और दिन में भी काम से फ़ारिग़ होते ही वापस आ जाये, ज़ायद वक़्त घर से बाहर गुज़ारना जायज़ नहीं। (बहिश्ती ज़ेवर, इमदादुल-फ़तावा, शामी)

मसलाः इद्दत में सफ़र भी जायज़ नहीं, चाहे हज का सफ़र हो या ग़ैरे हज का। (इमदादुल-फ़तावा जिल्द 2 पेज 428)

मसलाः इद्दत में अगर बेवा की नौकरी, मज़दूरी ऐसी है कि उसमें रात का भी कुछ हिस्सा ख़र्च होता है तो यह भी जायज़ है लेकिन रात का

(1) यानी जिस घर को उसके रहने का घर समझा जाता था। जैसा कि हिदाया में बयान किया गया है। (इमदादुल फ़तावा जिल्द 2 पेजः 437)

अक्सर हिस्सा अपने ही घर में गुज़रना चाहिये। (दुर्रे मुख़्तार, शामी)

मसलाः जिस बेवा के पास इद्दत में गुज़ारे के लिये ख़र्च मौजूद हो उसे दिन में भी घर से निकलना जायज़ नहीं। (दुर्रे मुख़्तार जिल्द 2 पेज 854)

इद्दत में मजबूरन सफ़र करना पड़े

मसलाः जिस औरत की कोई खेती की ज़मीन, बाग़, जायदाद या तिजारत ऐसी हो कि उसके इन्तिज़ाम और देख-भाल के लिये ख़ास उसी का जाना ज़रूरी हो, कोई और शख़्स ऐसा न हो जो इद्दत में यह काम कर दे, तो ऐसी मजबूरी में भी उसका घर से निकलना पर्दे के साथ जायज़ है, लेकिन रात अपने ही घर में गुज़ारे और उस काम से फ़ारिग़ होते ही घर वापस आ जाये। (दुर्रे मुख़्तार, शामी)

अगर वह ज़मीन उस शहर से दूर है और वहाँ जाने के लिये सफ़र करना पड़ता है तो मेहरम के साथ वहाँ भी जितने दिन के लिये ज़रूरी हो जा सकती है। (इमदादुल-फ़तावा जिल्द 2 पेज 429)

मसलाः वफ़ात की इद्दत में अगर औरत बीमार हो और घर पर डॉ. हकीम को बुलाना या इलाज कराना मुम्किन न हो तो इलाज करने वाले के पास जाना या मजबूरी में अस्पताल में दाख़िल हो जाना भी जायज़ है। अगर इलाज या तश्ख़ीस उस बस्ती में मुम्किन नहीं तो इस ग़र्ज़ से दूसरे शहर जाना भी जितने दिन के लिये ज़रूरी हो जायज़ है, लेकिन वह दूसरा शहर शरई सफ़र के बराबर दूरी पर हो तो मेहरम का साथ होना ज़रूरी है।

(इमदादुल-फ़तावा जिल्द 2 पेज 428)

इद्दत में मजबूरन दूसरे घर मुन्तक़िल होना

मसलाः शौहर के इन्तिक़ाल के वक़्त जिस घर में रहा करती थी अगर वह किराये का मकान था और किराया अदा करने की ताक़त है तो किराया देती रहे और इद्दत ख़त्म होने तक वहीं रहे। और अगर किराया देने की हिम्मत नहीं तो वहाँ से क़रीब जो जगह हो जहाँ उसकी रिहाईश जान व माल और आबरू की हिफ़ाज़त और पर्दे के साथ मुम्किन हो मुन्तक़िल हो जाये, बिना ज़रूरत दूर के मकान में मुन्तक़िल न हो। जिस घर में मुन्तक़िल हो बाक़ी इद्दत वहीं गुज़ारे। (दुर्रे मुख़्तार, शामी जिल्द 2 पेज 854)

मसलाः शौहर के इन्तिक़ाल के वक़्त जिस घर में रहा करती थी अगर वह मकान शौहर की मिल्कियत था मगर अब वारिसों में तक़सीम हो गया और बेवा के हिस्सा-ए-मीरास में जितना मकान आया वह रिहाईश के लिये काफ़ी नहीं और बक़िया वारिस अपने हिस्से में उसे रहने नहीं देते, या काफ़ी तो है मगर जिन लोगों से उसे शरई तौर पर पर्दा करना चाहिये वे भी वहीं रहते हैं और पर्दा करने नहीं देते तो उस सूरत में भी वह किसी और क़रीब के मकान में जो जान व माल और आबरू व पर्दे की हिफ़ाज़त के साथ रिहाईश के लिये काफ़ी हो, मुन्तक़िल हो सकती है। बक़िया इद्दत वहाँ गुज़ारे। (दुर्रे मुख़्तार, शामी, हिदाया)

मसलाः इद्दत का मकान अगर गिर जाए, या गिर जाने का ख़ौफ़ हो, या वहाँ आबरू, जान-माल या सेहत के ज़ाया हो जाने का क़वी अन्देशा हो, या जिन लोगों से शरई तौर पर पर्दा होना चाहिये वहाँ उनसे पर्दा मुम्किन न हो तो इन सब सूरतों में भी औरत उस मकान से मुन्तक़िल हो सकती है।

(इमदादुल फ़तावा, शामी, दुर्रे मुख़्तार)

मसलाः इद्दत के मकान में औरत अगर तन्हा डरती है और कोई क़ाबिले इत्मीनान शख़्स साथ रहने वाला नहीं तो अगर डर इतना ज़्यादा है कि बरदाश्त नहीं कर सकती तो इस सूरत में उस मकान से रिहाईश मुन्तक़िल कर सकती है। अगर डर इतना सख़्त और ज़्यादा न हो तो मुन्तक़िल होना जायज़ नहीं।

इसी तरह अगर इद्दत का मकान आसेब-ज़दा हो (यानी उसमें जिन्नात या भूत हों) और औरत आसेब से इतना डरती हो कि बरदाश्त नहीं होता, या आसेब का कोई खुला नुक़सान है तो इस सूरत में भी दूसरे मकान में रहने के लिए मुन्तक़िल होना जायज़ है, वरना जायज़ नहीं।

(इमदादुल-फ़तावा जिल्द 2 पेज 443)

मसलाः ऊपर जिन मसलों में इद्दत के घर से मुन्तक़िल होने को जायज़ लिखा गया है उन सबमें यह ज़रूरी है कि औरत वहाँ से ऐसे क़रीब तरीन मकान में मुन्तक़िल हो जहाँ उसकी रिहाईश, जान-माल, आबरू और पर्दे की हिफ़ाज़त हो सके, बिना ज़रूरत दूर के मकान में मुन्तक़िल न हो। और जिस घर में मुन्तक़िल हो बक़िया इद्दत वहीं गुज़ार दे। अब उस घर का वही हुक्म होगा जो असल घर का था, कि यहाँ से मजबूरी के बग़ैर निकलना

जायज़ नहीं है। (दुर्रे मुख़्तार, शामी जिल्द 2 पेज 854)

आपस की अनबन उज़्र नहीं

अगर औ़रत और सास में सख़्त नाचाक़ी (अनबन और झगड़ा) है कि साथ रहना मुश्किल है तो सिर्फ़ इस वजह से दूसरे घर में मुन्तक़िल होना जायज़ नहीं, नाचाक़ी से अगरचे तकलीफ़ तो ज़रूर होगी लेकिन यह ऐसी तकलीफ़ नहीं है जिसे इद्दत में बरदाश्त न किया जा सके।

(इमदादुल फ़तावा जिल्द 2 पेज 448)

शौहर के इन्तिक़ाल के वक़्त औ़रत सफ़र में हो तो इद्दत कहाँ गुज़ारे?

शौहर के इन्तिक़ाल के वक़्त औ़रत अगर सफ़र में हो तो इद्दत कहाँ गुज़ारे? इस मसले में शरई हुक्म मुख़्तलिफ़ सूरतों का अलग है जिसकी तफ़सील यह है। (1)

1. अगर वह शौहर के इन्तिक़ाल के वक़्त (या इन्तिक़ाल की ख़बर मिलने के वक़्त) रास्ते ही में कहीं थी, चाहे किसी बस्ती में हो या ग़ैर आबाद जगह में तो देखे कि यहाँ से अपनी बस्ती कितने फ़ासले पर है? अगर फ़ासला "सफ़र की दूरी" (2) से कम है तो फ़ौरन अपनी बस्ती में वापस आ जाये, चाहे कोई मेहरम साथ हो या न हो, और चाहे वह बस्ती जहाँ जाने के लिये सफ़र किया था (3) वह "सफ़र की दूरी" पर हो या उससे कम दूरी पर। (4) (हिदाया, इनाया, फ़तहुल-क़दीर, दुर्रे मुख़्तार व शामी2-856)

---

(1) शौहर उसके साथ हो या न हो दोनों हालतों में तफ़सील वही है जो आगे आ रही है।

(दुर्रे मुख़्तार, शामी, हिदाया फ़तहुल क़दीर)

(2) सफ़र की दूरी से मुराद इतनी दूरी है जिसकी वजह से आदमी शरई तौर पर मुसाफ़िर समझा जाता है और नमाज़ क़सर की जाती है, मैदानी इलाक़ों में यह दूरी अड़तालीस (48) मील (अंग्रेज़ी) की होती है।

(औज़ाने शरईया)

(3) आगे उस बस्ती के लिये हम "मन्ज़िले मक़सूद" का लफ़्ज़ इस्तेमाल करेंगे।

(4) लेकिन बाज़ फ़ुक़हा-ए-हनफ़िया ने फ़रमाया है कि "जब मन्ज़िले मक़सूद" भी सफ़र की दूरी से कम पर हो तो औ़रत को इख़्तियार है चाहे वहाँ जाकर इद्दत पूरी करे या अपनी बस्ती में वापस आकर, लेकिन उनके नज़दीक भी बेहतर यही है कि अपनी बस्ती में वापस आ जाये। (शामी जिल्द 2 पेजः 856)

2. और अगर वहाँ से अपनी बस्ती सफ़र की दूरी पर है और मन्ज़िले मक़सूद उससे कम दूरी पर, तो सफ़र जारी रखे और मन्ज़िले मक़सूद पर पहुँचकर वहीं इद्दत पूरी करे, मेहरम साथ हो या न हो। (दुर्रे मुख़्तार, शामी, हिदाया)

3. और अगर वहाँ से दोनों बस्तियाँ सफ़र की दूरी पर हैं, तो अगर वह जगह ग़ैर आबाद है जहाँ रिहाईश नहीं हो सकती तो इख़्तियार है चाहे अपनी बस्ती में वापस आ जाये या मन्ज़िले मक़सूद पर पहुँचकर इद्दत पूरी करे। लेकिन अपनी बस्ती में वापस आ जाना ज़्यादा बेहतर है, चाहे कोई मेहरम साथ हो या न हो।

लेकिन अगर अपनी बस्ती में या मन्ज़िले मक़सूद के रास्ते में कोई ऐसी बस्ती हो जहाँ जान व माल और आबरू की हिफ़ाज़त के साथ क़ियाम हो सकता है या शौहर के इन्तिक़ाल के वक़्त ही वह ऐसी बस्ती में थी तो वहीं रहकर इद्दत पूरी करे चाहे मेहरम साथ हो या न हो। (1)

(दुर्रे मुख़्तार, शामी, हिदाया, फ़तहुल-क़दीर)

इद्दत में कोताहियाँ और ग़लत रस्में

इस ज़माने में पश्चिम की तक़लीद की एक लानत यह है कि बेवा और वे औरतें जिनको तलाक़ हो गयी हो इद्दत में नहीं बैठतीं, खुलेआम घर से बाहर आना-जाना, बाज़ार जाना और शादियों और तक़रीबों में शिर्कत करना होता रहता है और इस हुक्मे शरई की क़तई कोई परवाह नहीं की जाती, यह सख़्त ग़लती और बड़ा गुनाह है। इससे तौबा करें और इद्दत में बैठने के हुक्म की तामील करें। इसी तरह और भी बहुत सी कोताहियाँ और ग़लत रस्में आजकल इद्दत में और इद्दत के बाद राईज हो गयी हैं, जिनसे बचना ज़रूरी है। यहाँ उनमें से ख़ास-ख़ास लिखी जाती हैं।

(1) यह इमाम अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि का मज़हब है। इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद रहमतुल्लाहि अ़लैहिमा फ़रमाते हैं कि अगर मेहरम साथ हो तब तो यही हुक्म है कि उस बस्ती में इद्दत पूरी करे। और अगर मेहरम साथ न हो तो औ़रत को इख़्तियार है चाहे उस बस्ती में इद्दत पूरी करे या अपनी बस्ती में वापस आकर। इन हज़रात का यह इख़्तिलाफ़ सिर्फ़ आख़िरी सूरत में है, पिछली तमाम सूरतों में मेहरम साथ हो या न हो बिल्इत्तिफ़ाक़ वही हुक्म है जो वहाँ लिखा गया है। (शामी, दुर्रे मुख़्तार, फ़त्हुल क़दीर)

शौहर के इन्तिक़ाल पर बेवा की चूड़ियाँ तोड़ना

पीछे "सोग" के बयान में मालूम हो चुका है कि इद्दत में चूड़ियाँ भी चाहे काँच की हों पहनना जायज़ नहीं। लेकिन औरतों में जो रस्म है कि शौहर के इन्तिक़ाल पर बेवा की चूड़ियाँ उतारने के बजाय तोड़ डालती हैं, या वह खुद ही तोड़ डालती है यह हिन्दुओं की रस्म है और माली नुक़सान होने की वजह से फ़ुज़ूलख़र्ची भी है, इसलिये तोड़ी न जायें बल्कि उतार ली जायें ताकि बेवा इद्दत के बाद पहन सके। लेकिन अगर उतारने में कुछ तकलीफ़ और दुश्वारी हो तो मजबूरन तोड़ दी जायें।

(इमदादुल-फ़तावा जिल्द 2 पेज 451)

इद्दत में घर से बिना शरई उज़्र के निकलना

बाज़ औरतें इद्दत में बैठ जाती हैं लेकिन फिर मामूली-मामूली उज़्र पेश आने पर घर से बाहर निकल जाती हैं, जैसे शादी विवाह की तक़रीब में या इसी क़िस्म की दूसरी तक़रीबों में, घर में मर्दों के होते हुए दवा दारू, खाने की चीज़ों और दूसरे कामों के लिये हालाँकि इन उज़्रों की बिना पर इद्दत से निकलना और बाहर आना-जाना जायज़ नहीं। जिस-जिस उज़्र से बाहर निकलना जायज़ है उनका तफ़सीली बयान पीछे आ चुका है। कोई और उज़्र पेश आ जाए और बाहर निकलना ज़रूरी और लाज़िमी हो तो मोतबर उलेमा से मसला पूछ लें। अगर वे इजाज़त दें तो निकलें वरना नहीं।

बिना उज़्र इद्दत में निकलने से इद्दत टूटना

बाज़ नावाक़िफ़ हज़रात यह समझते हैं कि अगर वह बेवा इद्दत में बग़ैर किसी उज़्र के घर से बाहर आ जाये तो नये सिरे से इद्दत वाजिब होगी, पहली इद्दत टूट गयी, यह बिल्कुल ग़लत बात है। इस तरह इद्दत नहीं टूटती लेकिन बिना शरई उज़्र इद्दत में घर से निकलना जायज़ नहीं, बड़ा गुनाह है।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत)

इद्दत में बनाव-सिंघार की चीज़ें इस्तेमाल करना

बाज़ औरतें इद्दत में बनाव-सिंघार की चीज़ें इस्तेमाल करती हैं और

कुछ ख़्याल नहीं करतीं कि ऐसा करना जायज़ है या नहीं, हालाँकि इद्दत में मैकअप, तेल व ख़ुशबू, बनाव-सिंघार, कंघी, सुर्मा, सुर्ख़ी, मेहंदी, भड़कदार कपड़े और बनने संवरने की तमाम चीज़ें इस्तेमाल करना हराम है जिसकी तफ़सील पीछे सोग के बयान में आ चुकी है।

इद्दत में निकाह या मंगनी करना

एक कोताही आ़म तौर पर यह होती है कि बाज़ लोग इद्दत के अन्दर बेवा से निकाह कर लेते हैं। इद्दत पूरी होने का इन्तिज़ार नहीं करते। फिर बाज़ लोग अपने नज़दीक बड़ी एहतियात यह करते हैं कि निकाह को तो जायज़ समझते हैं मगर उससे सोहबत नहीं करते और मियाँ-बीवी वाले ताल्लुक़ात नहीं रखते। याद रखना चाहिये! इद्दत के अन्दर निकाह जायज़ नहीं, अगर कर लिया तो निकाह नहीं होगा बल्कि इद्दत में तो मंगनी करना और खुले लफ़्ज़ों में निकाह का पैग़ाम देना भी जायज़ नहीं, क़ुरआन हकीम में इसकी मनाही आई है। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत)

इद्दत में एहतियातन कुछ दिन बढ़ाना

एक आ़म ग़लती यह है कि अगर बेवा की इद्दत चार महीने दस दिन है, उसमें अगर एक या दो महीने उन्तीस के हों तो उस कमी के बदले में दस दिन इद्दत में और बढ़ा देते हैं, यह ग़लत बात है। इद्दत का हिसाब ख़ूब याद रखना चाहिये। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत)

इद्दत से निकालने के लिये औ़रतों का इकट्ठा होना

जब कोई औ़रत बेवा हो जाये तो इद्दत के ख़त्म होने पर छह माही की रस्म अदा की जाती है। जिसकी सूरत यह होती है कि बेवा के यहाँ इद्दत के ख़त्म पर बहुत सी औ़रतें जमा होती हैं और यूँ कहती हैं कि इसको इद्दत से निकालने के लिये आई हैं। और बाज़ औ़रतें इद्दत से निकलने के लिये यह ज़रूरी समझती हैं कि औ़रत इद्दत वाले घर से निकल कर दूसरे घर में आ जाये और इसका बड़ा एहतिमाम करती हैं। ये दोनों बातें ग़लत हैं। बेवा की इद्दत के जब चार माह दस दिन गुज़र जायें, या बच्चा पैदा हो जाये तो वह इद्दत से ख़ुद-बख़ुद निकल जाती है, चाहे उसी घर में रहे।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत)

इद्दत के बाद बेवा के निकाह को ऐब समझना

एक बड़ी ख़तरनाक ख़राबी जो हिन्दुओं की जाहिलाना रस्म है और बहुत से मुस्लिम ख़ानदानों में आ गई है, यह है कि बाज़ औरतें जिनके शौहर का इन्तिक़ाल हो गया हो या जिनको तलाक़ हो गई हो, वे इद्दत के बाद भी दूसरे निकाह को ऐब समझती हैं, हालाँकि क़ुरआन करीम ने इद्दत के बाद दूसरे निकाह की तरग़ीब दिलाई है और जो लोग इससे रोकते हों उन्हें ज़ोरदार अन्दाज़ में तंबीह फ़रमाई है कि हरगिज़ उनको दूसरा निकाह करने से न रोकें। आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की पाक बीवियों (रज़ियल्लाहु अ़न्हुन्-न) भी हज़रत आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा के सिवा कोई कुंवारी न थी, बल्कि उनमें से अक्सर बेवा और बाज़ तलाक़ पाई हुई थीं। सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम भी इसी पर अ़मल-पैरा रहे। ऐसा मुबारक अ़मल जिसकी तरग़ीब क़ुरआन ने दी, जिस पर आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने मुसल्सल अ़मल फ़रमाया उसे ऐब समझना सख़्त जहालत है, ख़तरनाक गुमराही है। बाज़ औरतें तो इस मामले में ऐसी बातें ज़बान से कह डालती हैं जो कुफ़्र की हद तक पहुँच जाती हैं।

बाज़ औरतें ऐब तो नहीं समझतीं लेकिन बेनिकाह रहने को ज़्यादा इज़्ज़त की बात समझती हैं, यह भी गुमराही है जो कुफ़्र तो नहीं मगर उसके क़रीब है। वरना कामिल मुसलमान क्या वजह कि ख़िलाफ़े सुन्नत को ज़्यादा ऐज़ाज़ व सम्मान का सबब समझे।

बहरहाल! इस बेहूदा रस्म से मुसलमानों को परहेज़ लाज़िम है। जहाँ तक मुम्किन हो बेवा का निकाह इद्दत के बाद कर देना ही मुनासिब है। बल्कि उसका निकाह तो कुंवारी के निकाह से भी ज़्यादा अहम है, क्योंकि पहले तो वह ख़ाली ज़ेहन थी कि निकाह के फ़ायदों का तजुर्बा न था, अब तो वे फ़ायदे उसके तजुर्बे में आ चुके हैं। इस हालत में अगर उसका निकाह न किया जायेगा तो परागन्दा ख़्यालों और हसरतों का उस पर हुजूम हो जायेगा, जिससे कभी सेहत, कभी आबरू, कभी दीन और कभी सब कुछ बरबाद हो जाता है। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत जिल्द 2 पेज 41,42)

बाज़ बेवा औरतें निकाह करना भी चाहती हैं तो ख़ानदान के लोग उन्हें

रोकते और शर्म दिलाते हैं। याद रखना चाहिये कि उन्हें निकाह से रोकना या शर्म दिलाना सख़्त गुनाह और हराम है।

बाज़ लोग कहते हैं कि हमने पूछा था वह राज़ी नहीं होती, हालाँकि पूछने पर बेवा जो इनकार करती है उसकी वजह यह होती है कि वह जानती है कि अगर मैं एक दम से राज़ी हो जाऊँगी तो ख़ानदान के लोग यही कहेंगे कि यह तो इन्तिज़ार में ही बैठी थी। ख़ाविन्द को तरस रही थी, इसमें बदनामी होगी। इस ख़ौफ़ से वह बेचारी इनकार कर देती है। ख़ानदान के लोगों को चाहिये कि उसको अच्छी तरह निकाह की मस्लेहत बतायें, अन्देशे दूर करें और एहतिमाम से गुफ़्तगू करें, अगर इस पर वह राज़ी न हो तो ये लोग माज़ूर हैं। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत जिल्द 2 पेज 32)

लेकिन अगर कोई बच्चे वाली हो और उम्र भी ढल गयी हो और खाने-पीने, रहने-पहनने के ख़र्चों का भी इन्तिज़ाम हो और वह निकाह से इनकार करती हो और हालात का जायज़ा लेने से भी उसका शौहर से बेनियाज़ होना मालूम हो, तो ऐसी औरत के दूसरे निकाह की कोशिश करना ज़रूरी नहीं।

मसलाः जो बेवा इस ख़ौफ़ से कि बच्चे ज़ाया हो जायेंगे या इस वजह से कि कोई उसे क़बूल नहीं करता, दूसरा निकाह नहीं करती, वह माज़ूर है बल्कि बच्चों के ज़ाया हो जाने के ख़ौफ़ से निकाह न करना तो अज्र व सवाब का सबब भी है। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत जिल्द 2 पेज 42)

मसलाः अगर तबीयत में निकाह का तक़ाज़ा है और निकाह की ताक़त भी है और शौहर के हुक़ूक़ भी अदा कर सकती है तो निकाह करना वाजिब है, न करने से गुनाह होगा। और अगर तक़ाज़ा (शौक़ और ख़्वाहिश) बहुत ज़्यादा है कि निकाह किये बग़ैर हराम काम में मुब्तला हो जाने का अन्देशा है तो निकाह करना फ़र्ज़ है। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत जिल्द 2 पेज 39,40)

मसलाः अगर तबीयत में निकाह का तक़ाज़ा तो नहीं लेकिन शौहर के हुक़ूक़ अदा करने की क़ुदरत है तो इस सूरत में निकाह सुन्नत है, क़ुदरत नहीं तो मना है। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत जिल्द 2 पेज 39,40)

मसलाः आक़िल, बालिग़ अगर कुफ़्व (अपनी बराबरी) में 'मेहरे मिस्ल' (यानी उस ख़ादान में आम तौर पर जो मेहर लड़कियों का तय किया जाता है) के साथ अपने निकाह की बातचीत ख़ुद ठहरा ले और गवाहों की

मौजूदगी में 'ईजाब व क़बूल' कर ले तो निकाह आयोजित हो जायेगा। लेकिन ऐसा करना बुरा है। निकाह उसके वलियों के वास्ते से होना चाहिये। लेकिन अगर वली (अभिभावक) ग़फ़लत और लापरवाही बरतें, उसकी मर्ज़ी की जगह निकाह न करें तो औरत को अपना निकाह ख़ुद कर लेना बुरा नहीं, बशर्ते कि कुफ़्व (1) में हो। ग़ैरे कुफ़्व में किया तो (फ़तवा इस पर है कि) निकाह ही सही नहीं होगा। और मेहरे मिस्ल से कम पर वलियों की इजाज़त के बग़ैर किया तो वे निकाह को ख़त्म करने का दावा कर सकते हैं। (इमदादुल-फ़तावा मय हाशिया जिल्द 2 पेज 189)

(1) बे-मेल और बे-जोड़ न हो। मुसलमान हो, नसब में बराबर हो, दीनदारी, मालदारी और पेशा या फन में बराबरी का हो। मुख़्तसर यह कि शौहर उसके बराबर के दर्जे का हो। (लेखक)

सातवाँ बाब

तर्का और उसकी तक़सीम

मरने वाला इन्तिक़ाल के वक़्त अपनी मिल्कियत में जो कुछ मनक़ूला व ग़ैर-मनक़ूला (चल और अचल) माल व जायदाद, नक़द रुपया, ज़ेवरात, कपड़े और किसी भी तरह का छोटा बड़ा सामान छोड़ता है चाहे सूई धागा ही हो, शरीअ़त की रू से वह सब उसका तर्का है। इन्तिक़ाल के वक़्त उसके बदन पर जो कुछ कपड़े हों वे भी उसमें दाख़िल हैं, नीज़ मय्यित के जो क़र्ज़े किसी के ज़िम्मे रह गये हों और मय्यित की वफ़ात के बाद वुसूल हों वे भी तर्के में दाख़िल हैं।

मय्यित के कुल तर्के में तरतीब वार चार हुक़ूक़ वाजिब हैं। उनको शरई क़ायदे के मुताबिक़ ठीक-ठीक अदा करना वारिसों की अहम ज़िम्मेदारी है। यहाँ तक कि अगर मय्यित की जेब में एक इलायची भी पड़ी हो तो किसी शख़्स को यह जायज़ नहीं कि सब हक़दारों की इजाज़त के बग़ैर उसको मुँह में डाल ले, क्योंकि वह एक आदमी का हिस्सा नहीं। वे चार हुक़ूक़ ये हैं:

1. मुर्दे के कफ़न दफ़न का इन्तिज़ाम।
2. देन और क़र्ज़। अगर मय्यित के ज़िम्मे किसी का रह गया हो।
3. जायज़ वसीयत अगर मय्यित ने की हो।
4. वारिसों पर मीरास की तक़सीम।

यानी तर्का में से सबसे पहले कफ़न दफ़न के ख़र्चे अदा किये जायें फिर अगर कुछ तर्का बचे तो मय्यित के ज़िम्मे लोगों के क़र्ज़ हों वे सब अदा किये जायें। उसके बाद अगर कुछ तर्का बाक़ी रहे तो उसके एक तिहाई की हद तक मय्यित की जायज़ वसीयत पर अ़मल किया जाये। अगर मय्यित के ज़िम्मे न कोई क़र्ज़ था न उसने तर्का के मुताल्लिक़ कुछ वसीयत की थी तो कफ़न दफ़न के ख़र्चों के बाद जो तर्का बचे वह सबका सब वारिसों का है, जो शरीअ़त के मुक़र्रर किए हुए हिस्सों के मुताबिक़ उनमें तक़सीम हो। ज़िक्र हुए चारों हुक़ूक़ की तफ़सील मुस्तक़िल उन्वानात के

तहत आगे बयान होगी।

वे चीज़ें जो तर्का में दाख़िल नहीं

इन चारों हुक़ूक़ की तफ़सील से पहले यह समझ लेना भी ज़रूरी है कि मय्यित के पास जो चीज़ें ऐसी थीं कि शरई तौर पर वह उनका मालिक न था, अगरचे वह बिला-तकल्लुफ़ उनको मालिकों की तरह इस्तेमाल करता रहा हो, वे उसके तर्का में दाख़िल न होंगी। ऐसी सब चीज़ें उनके असल हक़दारों को वापस की जायें। कफ़न दफ़न वग़ैरह में उनका ख़र्च करना जायज़ नहीं, जैसेः

(1) जो चीज़ें मय्यित ने किसी से आ़रिज़ी तौर पर माँगी हुई ली थीं, या किसी ने उसके पास अमानत रख दी थीं, वे तर्का में दाख़िल न होंगी। ऐसी सब चीज़ें उनके मालिकों को वापस की जायें।

(मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 27)

(2) अगर मय्यित ने किसी की कोई चीज़ ज़बरदस्ती या चोरी या ख़ियानत करके रख ली थी तो वह भी तर्का में दाख़िल नहीं, उसके मालिक को वापस की जाये। (मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 28)

(3) अगर मय्यित ने मरज़ुल-मौत (1) से पहले अपनी कोई चीज़ हिबा कर दी यानी किसी को तोहफ़ा या हदिया दे दी थी और उसपर लेने वाले का क़ब्ज़ा भी करा दिया था, तो वह चीज़ मय्यित की मिल्क से निकल गयी और लेने वाला उसका मालिक हो गया। इसलिये मय्यित के इन्तिक़ाल के बाद वह उसके तर्का में दाख़िल न होगी। लेकिन अगर सिर्फ़ ज़बानी या लिखित तौर पर कहा था कि ''यह चीज़ तुमको देता हूँ'' या ''मैंने यह चीज़ तुम्हें हिबा कर दी है'' और क़ब्ज़ा नहीं कराया था तो इस कहने या लिखने का कोई एतिबार नहीं। यह न हिबा हुआ न वसीयत, बल्कि यह चीज़ मय्यित ही की मिल्क में रहेगी और मय्यित के इन्तिक़ाल के बाद उसके तर्का में दाख़िल होगी। (बहिश्ती ज़ेवर)

और अगर मरज़ुल-मौत में दी थी और उसका क़ब्ज़ा भी करा दिया था तो यह देना वसीयत के हुक्म में है। इसलिये यह चीज़ तर्का में शुमार होगी

---

(1) यानी जिस बीमारी में मय्यित का इन्तिक़ाल हुआ। मरज़ुल-मौत की मुफ़स्सल तशरीह इसी के किताब के पेज 165 पर देखें।

और कफ़न दफ़न और क़र्ज़ों की अदायगी के बाद जिन शर्तों के साथ दूसरी वसीयतों पर अ़मल होता है उस पर भी होगा। इस मसले की और तफ़सील वसीयत के बयान में मुस्तक़िल उन्वान के तहत आयेगी।

(बहिश्ती ज़ेवर, मुफ़ीदुल-वारिसीन, शामी)

मौत के बाद वसूल होने वाली पेंशन भी तर्के में दाख़िल नहीं

(4) पेंशन जब तक वसूल न हो जाये मिल्क में दाख़िल नहीं होती। इसलिये मय्यित की पेंशन की जितनी रक़म उसकी मौत के बाद वसूल हो वह तर्का में शुमार न होगी, क्योंकि तर्का वह होता है जो मय्यित की वफ़ात के वक़्त उसकी मिल्कियत में हो और यह रक़म उसकी वफ़ात तक उसकी मिल्कियत में नहीं आयी थी, इसलिये तर्का में जो चार हुक़ूक़ वाजिब होते हैं वे इस रक़म में वाजिब न होंगे, और मीरास भी उसमें जारी न होगी। लेकिन हुकूमत (या वह कम्पनी जिससे पेंशन मिली है) जिसको यह रक़म दे देगी वही उसका मालिक हो जायेगा, क्योंकि यह एक क़िस्म का इनाम है, तन्ख़्वाह या उजरत नहीं। पस अगर हुकूमत या कम्पनी यह रक़म मय्यित के किसी एक रिश्तेदार की मिल्कियत कर दे तो वही उसका तन्हा मालिक होगा। और अगर सब वारिसों के वास्ते दे तो सब वारिस आपस में तक़सीम कर लेंगे। (1) मगर यह तक़सीम मीरास की वजह से न होगी, बल्कि यूँ समझा जायेगा कि हुकूमत या कम्पनी ने उनको यह इनाम अपनी तरफ़ से दिया है।

मय्यित की बाज़ मिल्कें भी तर्के में दाख़िल नहीं होतीं

यहाँ तक के बयान का ख़ुलासा यह हुआ कि मय्यित के इन्तिक़ाल के वक़्त जो कुछ उसकी मिल्कियत में था वह सब उसका तर्का है। और जो

(1) इस मसले की और तफ़सील मसाईल की बड़ी किताबों में देखी जा सकती है या ज़रूरत पड़ने पर आ़लिमों से मालूम कर लिया जाए।

चीज़ उस वक़्त उसकी मिल्कियत में नहीं थी वह तर्का में दाख़िल नहीं। लेकिन इस क़ानून से बाज़ ख़ास सूरतें अलग हैं। यानी बाज़ी मुतैयन चीज़ें जिनकी ज़ात ही के साथ किसी और शख़्स का हक़ जुड़ा हो, वे मय्यित की मिल्क होने के बावजूद तर्के में दाख़िल नहीं होतीं, इसकी दो मिसालें यहाँ ज़िक्र की जाती हैं।

(1) जो चीज़ें मय्यित ने ख़रीद ली थीं लेकिन क़ीमत अदा नहीं की थी और अभी उस चीज़ पर क़ब्ज़ा भी नहीं किया था बल्कि बेचने वाले ही के पास मौजूद थी, और मय्यित ने उसके सिवा कोई माल भी नहीं छोड़ा (जिससे कफ़न दफ़न वग़ैरह के ख़र्चों को अदा करने के बाद वह क़ीमत अदा की जा सके) तो वह चीज़ अगरचे मय्यित की मिल्क हो चुकी थी मगर उसके तर्के में दाख़िल न होगी। (1)

(2) इसी तरह जो चीज़ मय्यित ने क़र्ज़ के बदले में गिरवी रख दी थी और उस क़र्ज़ की अदायगी के लिये कोई माल भी नहीं छोड़ा तो वह भी अगरचे मय्यित की मिल्क थी मगर उसके तर्के में दाख़िल न होगी। यानी जब मय्यित ने कुछ माल ही नहीं छोड़ा तो वह बेचने वाला जिसने अपनी चीज़ की क़ीमत नहीं पाई और वह क़र्ज़ ख़्वाह (जिसके पास चीज़ गिरवी रखी हुई है) जिसका क़र्ज़ अभी वसूल नहीं हुआ उन चीज़ों को जो उनके क़ब्ज़े में मौजूद हैं बेचकर के सबसे पहले अपना हक़ ले सकते हैं। उनका हक़ अदा हो जाने के बाद बेचे हुए की क़ीमत में से अगर कुछ बाक़ी रहे तो वह तर्का समझा जायेगा और उसमें कफ़न दफ़न वग़ैरह, क़र्ज़ व वसीयत और मीरास क़ायदे के मुताबिक़ जारी होंगे और कुछ बाक़ी न रहे तो अज़ीज़ रिश्तेदार अपने पास से कफ़न दफ़न वग़ैरह करें।

(दुर्रे मुख़्तार, शामी, मुफ़ीदुल वारिसीन)

हमने यहाँ सिर्फ़ ये दो मिसालें ज़िक्र की हैं। अगर इनसे मिलती-जुलती कोई और सूरत पेश आये कि मय्यित की किसी ख़ास और मुतैयन मम्लूक चीज़ में दूसरे का हक़ लगा हुआ हो तो किसी मुहक़्क़िक़ आ़लिमे दीन से

(1) अगर मय्यित ने क़ब्ज़ा कर लिया था और क़ीमत अदा नहीं की थी तो बेचने वाला उस चीज़ को वापस नहीं ले सकता। यह तर्का में दाख़िल होगी और उससे कफ़न दफ़न वग़ैरह के ख़र्चे अदा करने के बाद बेचने वाले को उसकी क़ीमत क़र्ज़ के क़ायदे के मुताबिक़ अदा की जायेगी। क़र्ज़ के अहकाम आगे क़र्ज़ के बयान में आयेंगे। (रफ़ी)

पूछकर अ़मल किया जाये। खुद अपनी राय और अन्दाज़े से हरगिज़ अ़मल न फ़रमायें, क्योंकि ज़रा से फ़र्क़ से (जिसे हर शख़्स नहीं समझ सकता) हुक्म बदल जाता है।

जो चीज़ ज़िन्दगी में किसी के लिये ख़ासकर दी हो वह तर्का में दाख़िल है

अगर किसी ने ज़िन्दगी में अपनी औलाद की शादी के लिये नक़्द रुपया या कपड़ा और ज़ेवरात वग़ैरह जमा किया था और इरादा था कि इसको ख़ास फ़ुलाँ बेटे या बेटी की शादी में ख़र्च करूँगा, या बेटी के दहेज में दूँगा, मगर तक़दीर से उस शख़्स का इन्तिक़ाल हो गया और वे चीज़ें उस औलाद को मालिकाना तौर पर क़ब्ज़े में नहीं दी थीं, तो यह सब माल व असबाब तर्के में दाख़िल होगा और उस बेटे या बेटी का कोई ख़ास हक़ न होगा बल्कि कफ़न दफ़न वग़ैरह, क़र्ज़ की अदायगी और वसीयतों की तामील के बाद मीरास के क़ायदे के मुताबिक़ उसका जितना हिस्सा बनता है वही मिलेगा। (मुफ़ीदुल-वारिसीन)

यह समझ लेने के बाद कि तर्का किसको कहते हैं और इसमें कौनसी चीज़ें दाख़िल हैं, अब उन चार हुक़ूक़ की तफ़सील समझिये जो तर्का से मुताल्लिक़ हैं और जिनमें यह तर्का तरतीब वार तक़सीम किया जायेगा।

(1) कफ़न दफ़न वग़ैरह के ख़र्चे

मय्यित के तर्के में से सबसे पहले उसकी कफ़न दफ़न वग़ैरह का ख़र्च लिया जाये मगर यह काम बहुत सीधे सादे शरई तरीक़े से सुन्नत के मुताबिक़ करें (जिसकी तफ़सील किताब के शुरू में आ चुकी है) और कफ़न भी मय्यित की हैसियत के मुताबिक़ दें। कपड़ा सफ़ेद होना चाहिये मगर ऐसी क़ीमत का हो जिस क़ीमत का कपड़ा वह अक्सर पहनकर घर से बाहर निकलता और लोगों से मिलता था और मस्जिद व बाज़ार में जाता था। न इतनी कम क़ीमत का घटिया कफ़न दें जिससे उसकी तहक़ीर व तौहीन हो, न इतना क़ीमती दें कि जिसमें फ़ुज़ूलख़र्ची हो और क़र्ज़ ख़्वाहों (यानी जिनका उस पर क़र्ज़ है) या वारिसों के हक़ में नुक़सान आये। क़ब्र

भी कच्ची बनाई जाये चाहे मय्यित मालदार हो या फ़क़ीर। गुस्ल देने या क़ब्र खोदने वाला अगर उजूरत पर लेना पड़े तो यह ख़र्च भी हैसियत के मुताबिक़ दरमियानी दर्जे का करें। अगर आ़म मुसलमानों के क़ब्रिस्तान में जगह न मिले तो क़ब्र के लिये ज़मीन ख़रीद ली जाये, उसकी क़ीमत भी कफ़न दफ़न के दूसरे सामान (1) की तरह तर्के में से ले ली जाये।

(मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 32)

मसलाः बड़ा चादरा जो जनाज़े के ऊपर ढाँप दिया जाता है कफ़न में दाख़िल नहीं। (2) और वह जाय-नमाज़ जो कफ़न के कपड़े में से इमाम के लिये बचा ली जाती है, कफ़न से बिल्कुल ज़ायद और फ़ुज़ूल है। इसलिये अगर मय्यित के तर्का में से क़र्ज़ की अदायगी से ज़ायद माल न हो, या वारिस नाबालिग़ हों तो यह जाय-नमाज़ और चादर बनाकर क़र्ज़ ख़्वाहों का या यतीमों का नुक़सान करना हरगिज़ जायज़ नहीं, सख़्त मना है। बाज़ नावाक़िफ़ लोग इस मसले को सुनकर हसेंगे लेकिन यह सुनकर उनकी आँखें खुल जायेंगी कि शरीअ़त की मोतबर किताबों में यहाँ तक लिखा है कि अगर मय्यित ज़्यादा मक़रूज़ हो तो वारिसों पर क़र्ज़ ख़्वाह ज़बरदस्ती कर सकते हैं कि सिर्फ़ दो ही कपड़ों में कफ़न दें, यानी कफ़न मसनून से भी एक कपड़ा (कफ़नी या इज़ार) कम करा सकते हैं, फिर इन ज़ायद चादरों और जाय-नमाज़ों की क्या हक़ीक़त है? (मुफ़ीदुल वारिसीन पेज 33)

मसलाः शरीअ़त के मुताबिक़ कफ़न दफ़न वग़ैरह के अ़लावा और जो तरह-तरह की रस्में, फ़ुज़ूलख़र्ची और बिद्अ़तें उस मौक़े पर की जाती हैं जैसे मय्यित वालों की तरफ़ से दावत वग़ैरह उनके ख़र्चे तर्के से लेना हरगिज़ जायज़ नहीं। इसी तरह ताज़ियत के लिये आने वालों की मेहमानदारी में भी तर्के की कोई चीज़ ख़र्च करना जायज़ नहीं। जो शख़्स ऐसा करेगा चाहे वारिस हो या ग़ैर वारिस तो उस ज़ायद ख़र्च का उसे तावान देना पड़ेगा। या अगर वह वारिस है तो उसके मीरास के हिस्से में से कम किया जायेगा।

(मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 33)

---

(1) कफ़न दफ़न के कुल सामान की मुकम्मल फ़ेहरिस्त किताब के शुरू में आ चुकी है। वह सब सामान ख़ुशबू समेत तर्का से लिया जा सकता है। (शामी)

(2) इसकी तफ़सील भी किताब के शुरू में कफ़न दफ़न के सामान की फ़ेहरिस्त में बयान हो चुकी है। उसे दोबारा देख लिया जाये। (रफ़ी)

मसलाः सदक़ात व ख़ैरात जो बाज़ नावाक़िफ़ लोग मय्यित के तर्के में से (तर्का की तक़सीम से पहले) कर देते हैं, जैसे ग़ल्ला, पैसे, कपड़े वग़ैरह ख़ैरात कर दिये जाते हैं, यह मुर्दे के कफ़न दफ़न के ख़र्चों में हरगिज़ शुमार न होंगे, बल्कि करने वाले के ज़िम्मे तावान वाजिब होगा। इस मामले में एहतियात करनी चाहिये। बाज़ दफ़ा मय्यित के वारिसों में छोटे-छोटे क़ाबिले रहम यतीम बच्चे होते हैं, या मय्यित मक़रूज़ होता है और दूसरे रिश्तेदार रस्मों की पाबन्दी और 'माले मुफ़्त दिले बे रहम' समझ कर बेजा ख़र्च करते हैं, और आख़िरत का अज़ाब अपने सर लेते हैं क्योंकि उससे क़र्ज़ ख़्वाहों का या वारिसों का हक़ मारा जाता है। कभी यह होता है कि मय्यित के सिले हुए कपड़े मय्यित की तरफ़ से अल्लाह वास्ते दे दिये जाते हैं। कहीं शौहर मर जाता है और बेवा और नाबालिग़ बच्चे रह जाते हैं तो बेवा साहिबा बे-धड़क उसके तर्का (छोड़े हुए माल व जायदाद) में से ख़ैरात करती हैं, यह ख़बर नहीं कि उस माल में मासूम बच्चों का हक़ है, अगरचे वह उनकी माँ है लेकिन उनके माल को बिना ज़रूरत ख़र्च करने की मुख़्तार नहीं। बच्चे अगर इजाज़त भी दे दें तो उनकी इजाज़त शरई तौर पर मोतबर नहीं।

मय्यित की तरफ़ से सदक़ा करना बेशक बहुत पसन्दीदा और सवाब का सबब है और मय्यित को उसका सवाब पहुँचता है। लेकिन ये सदक़ात उसी वक़्त पसन्दीदा और लाभदायक हो सकते हैं कि शरीअ़त के मुवाफ़िक़ हों। शरीअ़त हुक्म देती है कि हक़दारों और यतीमों के माल पर हाथ साफ़ मत करो बल्कि जिस किसी को तौफ़ीक़ हो अपने माल से सदक़ा करे। इसलिये लाज़िम है कि पहले तर्का की शरई तक़सीम क़ायदे के मुताबिक़ कर ली जाये फिर बालिग़ वारिस अपने हिस्से में से जो चाहें दें, तक़सीम से पहले हरगिज़ न देना चाहिये। (मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 34, बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः मय्यित अगर औ़रत हो और उसका शौहर ज़िन्दा हो तो कफ़न दफ़न वग़ैरह का ख़र्च शौहर के ज़िम्मे वाजिब है, औ़रत के तर्के से न लिया जायेगा। अगर शौहर नहीं तो मामूल के मुताबिक़ औ़रत ही के तर्के से ख़र्च किया जाये। (शामी जिल्द 2 पेज 810, मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 36)

मसलाः मय्यित चाहे मर्द हो या औ़रत अगर उसका कोई अ़ज़ीज़ क़रीब या कोई और शख़्स अपनी ख़ुशी से कफ़न और दूसरे सामान और

दफ़न का ख़र्च अपने पास से करना चाहे और वारिस भी उस पर राज़ी हों तो कर सकता है, बशर्ते कि ख़र्च देने वाला आ़क़िल बालिग़ हो। ऐसी सूरत में तर्के में से यह ख़र्च न लिया जाये। (मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 35)

मसलाः अगर इत्तिफ़ाक़ से दरिन्दों ने क़ब्र उखाड़ डाली और कफ़न ज़ाया करके मय्यित को निकाल डाला या कफ़न-चोर ने मय्यित को निकाल कर नंगा डाल दिया, तो दोबारा भी कफ़न का ख़र्च मय्यित के तर्के में से दिलाया जायेगा। ऐसी सूरत में ग़ुस्ल व नमाज़ दोबारा नहीं किया जाता।

(मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 35, शामी)

मसलाः अगर मय्यित ने माल बिल्कुल नहीं छोड़ा तो मय्यित को तैयार करने, कफ़न और दफ़न के ख़र्चे किसके ज़िम्मे होंगे? इस मसले की पूरी तफ़सील हम किताब के शुरू में मुस्तक़िल उन्वान के तहत बयान कर चुके हैं, वहाँ देख ली जाये।

मसलाः तर्का में जो चार हुक़ूक़ तरतीब वार वाजिब होते हैं उनमें सबसे पहले मय्यित के कफ़न दफ़न का इन्तिज़ाम है। अगर कफ़न दफ़न के ख़र्च से कुछ भी न बचा तो न क़र्ज़ ख़्वाहों को कुछ मिलेगा न वसीयत में ख़र्च हो सकता है, न वारिसों को मीरास में कुछ मिल सकता है।

(मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 36)

(2) क़र्ज़ों की अदायगी

कफ़न वग़ैरह की ज़रूरतों और तदफ़ीन के ख़र्चे अदा करने के बाद सबसे अहम काम लोगों के उन क़र्ज़ों की अदायगी है जो मय्यित के ज़िम्मे रह गये हैं। (1) अगर मय्यित ने बीवी का मेहर अदा नहीं किया था तो वह भी क़र्ज़ है और उसकी अदायगी भी ऐसी ही ज़रूरी और लाज़िमी है जैसी दूसरे क़र्ज़ों की। ग़र्ज़ कफ़न दफ़न वग़ैरह के बाद जो तर्का बचे उसमें सबसे पहले मय्यित के तमाम क़र्ज़े अदा करना फ़र्ज़ है। चाहे उसने क़र्ज़े अदा करने की वसीयत की हो या न की हो, और चाहे उसका यह बाक़ी रहा सारा तर्का क़र्ज़ों ही की अदायगी में ख़त्म हो जाये। अगर क़र्ज़ों की

(1) यानी यह मख़्लूक़े ख़ुदा के क़र्ज़ों का बयान है। अल्लाह तआ़ला के क़र्ज़े जो मय्यित के ज़िम्मे रह गये हों, जैसे क़ज़ा नमाज़ों, रोज़ों का फ़िदया, ज़कात, हज और नज़्र व मन्नत वग़ैरह तो उनका हुक्म मुस्तक़िल उन्वान के तहत आगे आयेगा। (रफ़ी)

अदायगी के बाद कुछ तर्का बचा तब तो मय्यित की वसीयत में भी शरई क़ायदे के मुताबिक़ ख़र्च किया जायेगा और उन वारिसों को भी उनके हिस्से मिलेंगे। और कुछ भी न बचा तो न वसीयत में ख़र्च किया जा सकेगा न वारिसों को कुछ मिलेगा, क्योंकि शरीअ़त में क़र्ज़ों की अदायगी वसीयत और मीरास पर बहर हाल मुक़द्दम है। (मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 36-51)

आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने क़र्ज़ के मुताल्लिक़ निहायत सख़्त ताकीद और तंबीह फ़रमाई है। जो लोग अपने ज़िम्मे क़र्ज़ छोड़ जाते और उसकी अदायगी के लिये तर्का में माल भी न छोड़ते, तो रसूले मक़बूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ऐसे लोगों की नमाज़े जनाज़ा ख़ुद न पढ़ाते थे बल्कि सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हु से फ़रमा देते कि तुम लोग नमाज़ पढ़ दो और अपनी दुआ़ व नमाज़ से आप उनको मेहरूम रखते थे।

हदीसः हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु का बयान है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास जब (नमाज़े जनाज़ा के लिये) ऐसी मय्यित लाई जाती जो मक़रूज़ थी तो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम दरियाफ़्त फ़रमाते कि क्या इसने अपना क़र्ज़ अदा करने के लिये माल छोड़ा है? अगर बताया जाता कि इसने इतना माल छोड़ा है कि क़र्ज़ अदा करने के लिये काफ़ी है तो उस पर (जनाज़े की) नमाज़ पढ़ते, वरना आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से फ़रमा देते कि इस पर तुम नमाज़ पढ़ दो। (मुस्लिम शरीफ़ जिल्द 2 पेज 35)

हालाँकि उन लोगों का क़र्ज़ भी कुछ हद से ज़्यादा न होता था, और वे ज़रूरत ही में क़र्ज़ लेते थे, फिर भी आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम इस क़द्र सख़्ती फ़रमाते थे। आज फ़ुज़ूल रस्मों और बेजा ख़र्चों के वास्ते लोग बड़े-बड़े क़र्ज़े लेते हैं और मर जाते हैं और वारिस भी कुछ फ़िक्र नहीं करते।

हदीसः सही हदीस में इरशाद है कि मोमिन का जब तक क़र्ज़ अदा न कर दिया जाये उसकी रूह को (सवाब या जन्नत में दाख़िले से) रोका जाता है। एक शख़्स ने अ़र्ज़ किया कि या रसूलल्लाह (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम)! मेरे भाई का इन्तिक़ाल हो गया और छोटे बच्चे छोड़ गया है, क्या मैं उन पर माल ख़र्च करूँ? (और क़र्ज़ अदा न करूँ) आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि तुम्हारा भाई क़र्ज़ की वजह से मुक़ैयद

(यानी बन्दिश में) है, क़र्ज़ अदा करो।

(मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 40 मिश्कात के हवाले से)

मसलाः अगर मुर्दे को तैयार करने और कफ़न दफ़न के बाद बाक़ी रहा तर्का तमाम क़र्ज़ों की अदायगी के लिये काफ़ी है तो बिना किसी फ़र्क़ के तमाम क़र्ज़े अदा कर दिये जायें। और अगर काफ़ी नहीं और क़र्ज़ सिर्फ़ एक ही शख़्स का है तो जितना तर्का कफ़न दफ़न वग़ैरह से बचा है वह सब उसको दे दिया जाये, बाक़ी को वह अगर चाहे तो माफ़ कर दे या आख़िरत पर मौक़ूफ़ (बाक़ी) रखे। (मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 38)

मसलाः अगर कफ़न दफ़न वग़ैरह के बाद बचा हुआ तर्का क़र्ज़ों की अदायगी के लिये काफ़ी नहीं और क़र्ज़ कई आदमियों का है तो वह उनमें कितना-कितना किस तरह तक़सीम होगा और किस क़िस्म के क़र्ज़ को दूसरे क़र्ज़ों पर मुक़द्दम किया जायेगा? इसमें बहुत तफ़सील है, ज़रूरत के वक़्त किसी मुफ़्ती और मोतबर आ़लिमे दीन को पूरी सूरतेहाल (स्थिति) बताकर मसला मालूम कर लिया जाये, या किताब मुफ़ीदुल-वारिसीन का ग़ौर के साथ मुताला किया जाये, उसमें तफ़सील मौजूद है। (1)

मसलाः अगर कफ़न दफ़न वग़ैरह के बाद तर्का बिल्कुल न बचा, या इतना थोड़ा बचा कि सब क़र्ज़े उससे अदा न हो सकें तो बाक़ी क़र्ज़ों का अदा करना वारिसों के ज़िम्मे वाजिब नहीं। हाँ मुहब्बत का तक़ाज़ा और बेहतर व पसन्दीदा यही है कि जितना हो सके मय्यित की तरफ़ से क़र्ज़े अदा करके उसको राहत पहुँचायें। अगर कोई शख़्स अदा न करे तो क़र्ज़ ख़्वाह दूसरे आ़लम (यानी आख़िरत) में इन्साफ़े ख़ुदावन्दी के मुन्तज़िर रहें, जहाँ हर शख़्स को उसका हक़ दिलाया जायेगा और जिसके ज़िम्मे हक़ रह गया है उसकी नेकियाँ हक़दारों को दिलवाई जायेंगी। लेकिन हक़दारों के लिये भी बेहतर यह है कि वे अपना हक़ माफ़ कर दें, उस माफ़ी की वजह से उनको इतना बड़ा सवाब हासिल होगा कि अगर क़ियामत के दिन में

---

(1) जो क़र्ज़ा मय्यित के ज़िम्मे उस बीमारी में साबित हुआ हो जिसमें उसका इन्तिक़ाल हो गया और जो पहले से साबित शुदा हो दोनों के बहुत से अहकाम में फ़र्क़ है। जिस आ़लिमे दीन से मसला दरियाफ़्त किया जाये उसे यह ज़रूर बता दिया जाये कि कौनसा क़र्ज़ वफ़ात की बीमारी में साबित हुआ था और कौनसा पहले से साबित शुदा था। और इस क़र्ज़ का सुबूत मय्यित के इक़रार से हुआ था या गवाहों वग़ैरह से। (रफ़ी)

मक़रूज़ की नेकियाँ भी उनको दिलवा दी जायें तो भी इतना बड़ा सवाब न होगा। क़र्ज़ को माफ़ कर देने और मुफ़्लिस मक़रूज़ को मोहलत देने की बहुत बड़ी फ़ज़ीलत क़ुरआन व हदीस से साबित है, इसलिये माफ़ कर देना सबसे बेहतर है। (मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 41)

हदीसः हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु का बयान है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि एक शख़्स लोगों को क़र्ज़ दिया करता था, और अपने ख़ादिम से कह देता था कि जब तुम किसी तंगदस्त के पास (क़र्ज़ वसूल करने) जाओ तो उससे दरगुज़र और चश्मपोशी का मामला करना (कि जो कुछ वह आसानी से दे दे ले लेना, वरना मोहलत दे देना या माफ़ कर देना) शायद अल्लाह तआ़ला हमारे साथ भी (आख़िरत में ऐसा ही) चश्मपोशी और दरगुज़र का मामला फ़रमा दे, पस (इन्तिक़ाल के बाद) जब वह अल्लाह तआ़ला के सामने हाज़िर हुआ तो अल्लाह तआ़ला ने उसकी मग़फ़िरत फ़रमा दी।

एक और रिवायत में है कि उस शख़्स के पास इस नेकी के सिवा कोई और नेक अ़मल न था, इसके बावजूद उसके सब गुनाह माफ़ हो गये।

(दोनों रिवायतें सही मुस्लिम जिल्द 2 पेज 18 में हैं)

हदीसः हज़रत अबू क़तादा रज़ियल्लाहु अ़न्हु का बयान है कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को यह फ़रमाते हुए सुना है कि जिस शख़्स को यह पसन्द हो कि अल्लाह तआ़ला उसे क़ियामत के दिन की तकलीफ़ों से निजात दे उसे चाहिये कि वह तंगदस्त को तकलीफ़ से बचाये, या उसको (अपना क़र्ज़) माफ़ कर दे। (सही मुस्लिम जिल्द 2 पेज 18)

अल्लाह तआ़ला के क़र्ज़ों की अदायगी

यहाँ तक सब बयान उन क़र्ज़ों का है जो मय्यित के ज़िम्मे बन्दों के रह गये हों। और अगर अल्लाह तआ़ला के क़र्ज़े यानी हुक़ूक़ (फ़राईज़ व वाजिबात) रह गये हों, जैसे नमाज़ों, रोज़ों का फ़िदया, ज़कात, हज, सदक़ा-ए-फ़ित्र, नज़्र या कफ़्फ़ारा वग़ैरह ऐसा रह गया था जो मय्यित ने अदा नहीं किया था, तो उनका हुक्म यह है कि अगर बन्दों के तमाम क़र्ज़े अदा करने के बाद तर्के में कुछ माल बाक़ी रहे और मय्यित ने अल्लाह के इन हुक़ूक़ को अदा करने की वसीयत भी की हो तो उस बचे हुए माल के

एक तिहाई में से इन हुक़ूक़ को अदा किया जाये। अगर एक तिहाई में वे पूरे अदा न हो सकें तो जितने अदा हो सकें अदा कर दें, तिहाई से ज़्यादा माल ख़र्च करके उनको अदा करना वारिसों पर लाज़िम नहीं। क्योंकि बाक़ी दो तिहाई माल वारिसों का है। इसलिये अब आक़िल, बालिग़ वारिसों को इख़्तियार है कि चाहें तो अपने-अपने हिस्से और माल में से ख़र्च करके उन बाक़ी हुक़ूक़ को भी अदा कर दें और मय्यित को आख़िरत की पकड़ से बचायें और ख़ुद भी सवाब कमायें (लेकिन) मजनूँ या नाबालिग़ वारिसों का हिस्सा उसमें ख़र्च करना हरगिज़ जायज़ नहीं, अगरचे वे ख़ुशी से इजाज़त भी दे दें, और चाहें तो बाक़ी दो तिहाई माल सब वारिस शरई हिस्सों के मुताबिक़ आपस में तक़सीम कर लें। इस सूरत में अल्लाह तआला के जो हुक़ूक़ अदा होने से रह जायेंगे उनकी ज़िम्मेदारी मय्यित पर होगी, वारिसों की कोई पकड़ और उनसे कोई सवाल न होगा।

(मुफ़ीदुल वारिसीन पेज 39, इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत जिल्द 1 पेज 185)

इसी तरह अगर दो तिहाई माल इतना हो कि अल्लाह तआला के सब हुक़ूक़ उससे अदा हो सकते हैं लेकिन मरने वाले ने सिर्फ़ बाज़ हुक़ूक़ अदा करने की वसीयत की और बाक़ी हुक़ूक़ की न की, या इतने कम माल की वसीयत की कि उससे वे सब हुक़ूक़ अदा नहीं हो सकते, जैसे तिहाई माल दो हज़ार था जिससे सब हुक़ूक़ अदा हो सकते थे लेकिन मय्यित के उन हुक़ूक़ में सिर्फ़ पन्द्रह सौ रुपये ख़र्च करने की वसीयत की तो वारिसों पर अदायगी सिर्फ़ वसीयत की हद तक लाज़िम होगी, पूरे दो हज़ार रुपये ख़र्च करके उन सब हुक़ूक़ को अदा करना लाज़िम न होगा, लेकिन मरने वाला पूरे हुक़ूक़ की वसीयत न करने के सबब गुनाहगार होगा। (दलीलुल ख़ैरात पेज 28)

ख़ुलासा

ख़ुलासा यह कि बन्दों के क़र्ज़ों और अल्लाह तआला के क़र्ज़ों (हुक़ूक़) में तीन फ़र्क़ हैं:

(1) एक यह कि बन्दों के क़र्ज़ों का अदा करना मय्यित की वसीयत पर मौक़ूफ़ नहीं, बल्कि वसीयत न की हो तब भी कफ़न दफ़न वग़ैरह के ख़र्चों के बाद उनका अदा करना फ़र्ज़ है। और अल्लाह तआला के हुक़ूक़ का अदा करना मय्यित की वसीयत पर मौक़ूफ़ है, वसीयत न करे तो उनका

अदा करना वारिसों पर लाज़िम नहीं।

(2) दूसरा फ़र्क़ यह है कि बन्दों का क़र्ज़ अदा करने में कोई हद नहीं थी कफ़न दफ़न के बाद सारा तर्का भी इसमें ख़र्च हो जाये तो ख़र्च करके अदा करना फ़र्ज़ है और अल्लाह तआला के हुक़ूक़ बन्दों के तमाम क़र्ज़े अदा करने के बाद जो तर्का बचे उसके सिर्फ़ एक तिहाई में से अदा करना फ़र्ज़ है, तिहाई से ज़्यादा ख़र्च करना वारिसों पर लाज़िम नहीं।

(3) तीसरा फ़र्क़ ज़ाहिर है कि अल्लाह तआला के हुक़ूक़ का अदा करना उसी सूरत में फ़र्ज़ है जबकि बन्दों के तमाम क़र्ज़े अदा हो चुके हों।

(मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 40)

तंबीहः क़र्ज़ की इस दूसरी क़िस्म यानी अल्लाह तआला के माली हुक़ूक़ की अदायगी चूँकि वसीयत पर मौक़ूफ़ है, मय्यित ने वसीयत न की हो तो अदायगी लाज़िम नहीं इसलिये हम इसको वसीयत के बयान में दोबारा ज़िक्र करेंगे और वहीं नमाज़ रोज़ों के फ़िदये और दूसरे अल्लाह के हुक़ूक़ की मिक़दारें (मात्राएँ) भी बयान की जायेंगी।

(3) जायज़ वसीयतों पर अ़मल करना

मय्यित के तर्का (छोड़े हुए माल व जायदाद) में तरतीब वार जो चार हुक़ूक़ वाजिब होते हैं उनमें से दो की तफ़सील पीछे आ चुकी है यानी कफ़न-दफ़न वग़ैरह के ख़र्चे और क़र्ज़ों की अदायगी, अब तीसरे हक़ यानी वसीयत की ज़रूरी तफ़सीलात का बयान होता है।

यह कहना कि "मैं इतने माल की फ़ुलाँ के लिये वसीयत करता हूँ" या यह कहना कि "मेरे मरने के बाद मेरा इतना माल फ़ुलाँ शख़्स को दे देना" या "फ़ुलाँ काम में लगा देना" यह वसीयत है, चाहे बीमारी में कहा हो या तन्दुरुस्ती में, और चाहे कहने वाला उसी बीमारी में मरा हो या बाद में। (बहिश्ती ज़ेवर)

अगर अपनी मौत का ज़िक्र बिल्कुल न किया, न वसीयत का लफ़्ज़ बोला बल्कि सिर्फ़ यूँ कहा कि मेरी फ़ुलाँ चीज़ फ़ुलाँ शख़्स को दे दो, या फ़ुलाँ काम में लगा दो, तो यह वसीयत नहीं और इस पर वसीयत के अहकाम जारी न होंगे, क्योंकि वसीयत शरीअ़त में वही है जिसमें अपनी मौत के बाद के लिये कोई हिदायत दी गयी हो। (दुर्रे मुख़्तार जिल्द 5 पेज 568)

इसी तरह अगर किसी ने मस्जिद तामीर कराने के लिये या कुआँ वग़ैरह बनाने के वास्ते या अल्लाह के रास्ते में तक़सीम करने के लिये या किसी को तोहफ़ा हदिया देने के इरादे से रुपया रखा था या सामान जमा किया था, या हज करने के वास्ते रक़म रखी थी और क़ज़ाये इलाही से सफ़रे आख़िरत पेश आ गया तो ये सब चीज़ें तर्का में दाख़िल होकर मीरास में तक़सीम होंगी और उनको वसीयत में शुमार नहीं किया जायेगा। क्योंकि उसने ऐसी कोई हिदायत लोगों को नहीं की जिसको वसीयत कहा जा सके।

(मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 29)

सही और बातिल वसीयतें

मसलाः हर आ़क़िल बालिग़ को अपने माल में सिर्फ़ इतनी वसीयत करने का इख़्तियार है कि कफ़न-दफ़न वग़ैरह और क़र्ज़ के अदा करने के बाद जो तर्का बचे उसके एक तिहाई के अन्दर वह वसीयत पूरी हो सके। अगर ज़ायद की वसीयत की तो तिहाई से ज़्यादा ख़र्च करके उसको पूरा करना वारिसों पर लाज़िम नहीं, क्योंकि बाक़ी दो तिहाई सिर्फ़ वारिसों का हक़ है, लेकिन जो वारिस आ़क़िल, बालिग़ हों वे अपने-अपने हिस्से में से अगर उससे ज़ायद वसीयत को भी पूरा करना चाहें तो कर सकते हैं।

(दुर्रे मुख़्तार, शामी)

मसलाः अगर किसी का कोई वारिस ही न हो तो उसको कफ़न-दफ़न और क़र्ज़ की अदायगी से बचे हुए सारे माल की वसीयत कर जाने का इख़्तियार है। और अगर वारिस सिर्फ़ बीवी है तो तीन चौथाई तक की वसीयत दुरुस्त है। इसी तरह अगर औ़रत का वारिस शौहर के अ़लावा कोई नहीं तो आधे माल तक की वसीयत सही है क्योंकि उन सूरतों में किसी वारिस की हक़-तल्फ़ी नहीं होती। (बहिश्ती ज़ेवर, दुर्रे मुख़्तार जिल्द 5 पेज 572)

मसलाः अगर मय्यित के ज़िम्मे क़र्ज़ इतना ज़्यादा हो कि अदा होने के बाद कुछ तर्का बाक़ी ही न रहे तो हर क़िस्म की वसीयत बेकार और बातिल है। अगर क़र्ज़-ख़्वाह अपना क़र्ज़ा माफ़ कर दें तो जो कुछ माल रह जाये उसके एक तिहाई में वसीयत पर अ़मल किया जायेगा, बाक़ी वारिसों को मिलेगा। (मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 62)

मसलाः नाबालिग़ या मजनूँ की वसीयत शरअ़न् बातिल है उस पर

अ़मल करना एक तिहाई में भी वाजिब नहीं। (दुर्रे मुख़्तार, शामी जिल्द 5 पेज 576)

मसलाः मय्यित ने अगर अपने किसी वारिस के लिये जैसे माँ-बाप, शौहर, बेटे वग़ैरह के लिये वसीयत की तो यह वसीयत भी बातिल है क्योंकि हर वारिस का हिस्सा मीरास में शरीअ़त ने ख़ुद मुक़र्रर कर दिया है वही उसको मिलेगा। वसीयत की बुनियाद पर किसी वारिस को कुछ नहीं दिया जा सकता, ताकि दूसरे वारिसों की हक़-तल्फ़ी न हो। लेकिन अगर मय्यित का उस वारिस के अ़लावा कोई और वारिस ही न हो, या बाक़ी सब वारिस राज़ी हों तो उनकी इजाज़त से दे देना जायज़ है, लेकिन नाबालिग़ या मजनूँ की इजाज़त मोतबर नहीं, सिर्फ़ आ़क़िल बालिग़ वारिस अपने-अपने हिस्से में से चाहें तो दे सकते हैं। (बहिश्ती ज़ेवर, मुफ़ीदुल-वारिसीन)

मसलाः अपने किसी वारिस को मीरास से मेहरूम करने या उसके मीरास के हिस्से में कमी करने की वसीयत भी बातिल है, उस पर अ़मल हरगिज़ जायज़ नहीं और ऐसी वसीयत करना गुनाह भी है।

(मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 57, दुर्रे मुख़्तार)

मसलाः किसी गुनाह के काम में माल ख़र्च करने की वसीयत भी बातिल है, और उसमें तर्का को ख़र्च करना वारिसों की इजाज़त से भी जायज़ नहीं। (दुर्रे मुख़्तार, शामी जिल्द 5 पेज 605, बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः अगर मय्यित ने अपने क़ातिल के लिये वसीयत की चाहे क़त्ल से पहले या ज़ख़्मी हो जाने के बाद, तो अगर क़ातिल नाबालिग़ या दीवाना नहीं था तो यह वसीयत भी अक्सर सूरतों में बातिल और बाज़ सूरतों में दुरुस्त है। ऐसा मसला पेश आ जाये तो उलेमा से पूछकर अ़मल किया जाये। (दुर्रे मख़्तार, शामी जिल्द 5 पेज 569,575)

मसलाः अगर वसीयत करने वाले ने अपनी ज़िन्दगी में वसीयत से रुजू कर लिया, जैसे यूँ कहा कि मैं उस वसीयत से रुजू करता हूँ या उसे जारी न किया जाये, या उसे मन्सूख़ करता हूँ तो वह वसीयत बातिल हो जायेगी, जैसे कि की ही नहीं थी। जब तक वसीयत करने वाला ज़िन्दा है उसको इस तरह अपनी वसीयत बातिल करने का पूरा इख़्तियार है। (1)

---

(1) लेकिन अगर झूठ बोले और यूँ कहे कि मैंने वसीयत की ही नहीं थी हालाँकि गवाह मौजूद हैं, या लोगों को आ़म तौर से मालूम है कि वसीयत की थी, उस झूठे इन्कार से वसीयत बातिल न होगी और झूठ बोलने का गुनाहे बेलज़्ज़त अलग होगा। (मुफ़ीदुल वारिसीन)

इसी तरह अगर ज़िन्दगी में ऐसा अ़मल करे जिससे मालूम हो कि वसीयत से फिर गया है तब भी वसीयत बातिल हो जायेगी। जैसे एक ज़मीन की किसी के लिये वसीयत की थी, फिर उसी ज़मीन में अपना मकान बना लिया, या अलमारी की वसीयत की थी और फिर उसी को फ़रोख़्त कर दिया, या किसी कपड़े के थान की वसीयत की थी फिर उसे काटकर कपड़े बना लिये तो इन सब सूरतों में यह समझा जायेगा कि उसने वसीयत से रुजू कर लिया है, इसलिये वसीयत बातिल हो जायेगी।

(मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 64)

मसलाः अगर किसी ख़ास ज़मीन या ख़ास मकान या ख़ास कपड़े या ख़ास जानवर वग़ैरह की वसीयत की थी और फिर वह किसी तरह उसकी मिल्कियत से निकल गया या ज़ाया हो गया या मर गया तो वसीयत बातिल हो गयी, क्योंकि जिस ख़ास चीज़ की वसीयत की थी वह मौजूद ही न रही।

(मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 64)

मसलाः मय्यित ने जिसको माल दिये जाने की वसीयत की थी वह मय्यित के इन्तिक़ाल के बाद अगर वसीयत क़बूल करने से इनकार कर दे और कह दे कि मैं नहीं लेता तो वसीयत बातिल हो जायेगी। अब बाद में वह उसका मुतालबा नहीं कर सकता। लेकिन अगर इनकार मय्यित की ज़िन्दगी में किया था तो बातिल न होगी, क्योंकि वसीयत को क़बूल या रद्द करना वही मोतबर है जो मय्यित के इन्तिक़ाल के बाद हो। मौत से पहले क़बूल या रद्द का एतिबार नहीं। (दुर्रे मुख़्तार, शामी जिल्द 5 पेज 577)

वसीयतों पर अ़मल करने का तरीक़ा

कफ़न-दफ़न के ख़र्चों के बाद (और अगर मय्यित के ज़िम्मे लोगों के क़र्ज़े भी थे तो उनकी अदायगी के बाद) अगर कुछ तर्का बचे तो देखें कि मय्यित ने कोई जायज़ वसीयत अपने तर्का के मुताल्लिक़ की है या नहीं? अगर नहीं की तो यह बचा हुआ सारा माल उसके वारिसों में तक़सीम कर दिया जायेगा, क्योंकि वसीयत न होने की सूरत में वही उसके हक़दार हैं। और अगर वसीयत की थी, जैसे ज़बानी या लिखित रूप में उसने कहा हो कि मेरे मरने के बाद मेरे माल से मस्जिद बना देना, कुआँ बनवा देना या मदरसा या ख़ानक़ाह में इतना रुपया लगा देना या फ़ुलाँ शख़्स को इतना

रुपया या फ़ुलाँ चीज़ दे देना, या फ़क़ीरों और मिस्कीनों को फ़ुलाँ-फ़ुलाँ चीज़ें ख़ैरात कर देना, या कुछ नमाज़ें या रोज़े जो उसके ज़िम्मे रह गये थे उनके मुताल्लिक़ कहा कि मेरे मरने के बाद उनका फ़िदया अदा कर देना (1) या अल्लाह तआ़ला के माली फ़राईज़ व वाजिबात जो उसके ज़िम्मे रह गये थे जैसे ज़कात, हज, सदक़ा-ए-फ़ित्र किसी क़िस्म का कफ़्फ़ारा या नज़्र(मन्नत) वग़ैरह, उनके मुताल्लिक़ कहा कि मेरे मरने के बाद उनको अदा कर देना तो यह सब वसीयत शुमार होगी, जिस पर अ़मल करने का तरीक़ा यह है कि कफ़न-दफ़न के ख़र्चों और क़र्ज़ों की अदायगी के बाद जो तर्का बाक़ी रहे उसके तीन हिस्से बराबर-बराबर करेंगे, उनमें से दो तिहाई हिस्से सिर्फ़ वारिसों का हक़ है, जो उन पर शरई क़ायदे के मुताबिक़ तक़सीम होंगे (2) और एक तिहाई हिस्सा वसीयत में ख़र्च किया जायेगा। चाहे उस एक तिहाई से उसकी सारी वसीयत पूरी हो या पूरी न हो।

मसलाः अगर सारी वसीयतें पूरी होकर उस तिहाई में से कुछ बाक़ी बचा तो वह भी सब वारिसों का हक़ है। (मुफ़ीदुल-वारिसीन)

मसलाः एक से ज़्यादा वसीयतों में भी यही हुक्म है कि उस एक तिहाई के अन्दर-अन्दर जिस क़द्र वसीयतें पूरी हो सकें अदा कर दी जायें, बाक़ी छोड़ दी जायें, क्योंकि बाक़ी वसीयतों का पूरा करना और नाफ़िज़ करना वारिसों के ज़िम्मे लाज़िम नहीं। (शामी, बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः वारिसों में से जो आ़क़िल, बालिग़ और हाज़िर हों वे अपनी ख़ुशी से अपने-अपने हिस्सों में से अगर मय्यित की बाक़ी वसीयतों को पूरा करना चाहें तो कर सकते हैं, लेकिन ग़ैर-हाज़िर या नाबालिग़ या दीवाने (मजनूँ) वारिस का हिस्सा उस एक तिहाई से ज़ायद ख़र्च में लगाना जायज़ नहीं, क्योंकि नाबालिग़ और मजनूँ की इजाज़त शरई तौर पर मोतबर नहीं, और ग़ैर-हाज़िर का हाल मालूम नहीं कि इजाज़त देगा या नहीं, इसलिये जब वारिसों में से कोई ग़ैर-हाज़िर हो या नाबालिग़ या दीवाना हो तो एक तिहाई

(1) अगर फ़िदया के बजाय यह वसीयत की कि मेरी तरफ़ से इतनी नमाज़ें पढ़ लेना या मेरी तरफ़ से इतने रोज़े तुम लोग रख लेना, यह वसीयत मोतबर नहीं, क्योंकि ख़ालिस बदनी इबादतें जैसे नमाज़ और रोज़ा कोई भी किसी दूसरे की तरफ़ से अदा नहीं कर सकता। हाँ उनका फ़िदया अदा कर सकता है। (मुफ़ीदुल वारिसीन)

(2) वारिसों पर मीरास की तक़सीम का बयान आगे आयेगा। (रफ़ी)

माल वसीयत में ख़र्च करने के बाद बाक़ी दो तिहाई सब वारिसों में शरई हिस्सों के मुताबिक़ तक़सीम कर दें। फिर आ़क़िल बालिग़ वारिसों में से जो चाहे वह अपने हिस्से से (या अपना और माल मिलाकर भी) मय्यित की बाक़ी वसीयतें पूरी कर दे। (मुफ़ीदुल-वारिसीन)

एक से ज़्यादा वसीयतों में तरतीब

मसलाः अगर मय्यित ने चन्द वसीयतें की थीं जो एक तिहाई माल में अन्जाम नहीं पा सकतीं और ज़्यादा ख़र्च करने की वारिसों ने इजाज़त नहीं दी तो जो वसीयतें शरई तौर पर ज़्यादा ज़रूरी हैं उनको पहले पूरा किया जाये, उनसे कुछ बाक़ी रहे तो कम ज़रूरी वसीयतें भी पूरा करना वाजिब है। उनसे भी कुछ बचे तो ग़ैर-ज़रूरी वसीयतों पर जितना हो सके अ़मल करना वाजिब है। जैसे क़ज़ा रोज़ों के फ़िदये की भी वसीयत की और सदक़ा-ए-फ़ित्र अदा करने की भी और कुआँ बनवाने की भी, तो सबसे पहले रोज़ों का फ़िदया अदा किया जाये, क्योंकि रोज़े फ़र्ज़ हैं, फिर अगर कुछ माल बचे तो उससे सदक़ा-ए-फ़ित्र जितना अदा हो सके कर दें, बाक़ी छोड़ दें, क्योंकि यह वाजिब है फ़र्ज़ नहीं। और कुआँ बनवाना बिल्कुल ही छोड़ दें क्योंकि यह तो वाजिब भी नहीं सिर्फ़ मुस्तहब है। माल बचता तो यह भी बनवाना वाजिब होता। (दुर्रे मुख़्तार, शामी, मुफ़ीदुल-वारिसीन)

और अगर सब वसीयतें बराबर दर्जे की हैं, ज़्यादा ज़रूरी, ज़रूरी और ग़ैर-ज़रूरी का फ़र्क़ नहीं तो वसीयत करने वाले ने जिसकी वसीयत पहले की थी उसको पहले पूरा किया जाये। फिर कुछ माल बाक़ी रहे तो दूसरी को पूरा करें, वरना न करें। जैसे रोज़े का फ़िदया भी अदा करने की वसीयत की और नमाज़ के फ़िदये की भी। ये दोनों फ़र्ज़ होने की वजह से बराबर हैं, इसलिये जिसकी वसीयत पहले की थी उसको पहले अदा करें। या फ़र्ज़ हज और ज़कात अदा करने की वसीयत की थी और दोनों पूरे नहीं हो सकते तो जिसकी वसीयत पहले की हो वह अदा किया जाये (बाज़ मोतबर उलेमा का क़ौल है कि हज व ज़कात अगर दोनों अदा न हो सकें तो ज़कात को मुक़द्दम करके अदा कर देना चाहिये) या जैसे एक हज़ार रुपये की वसीयत मस्जिद के लिये की थी और एक हज़ार की दीनी मदरसे के लिये, और तिहाई माल सिर्फ़ एक हज़ार है तो जिसकी वसीयत पहले की थी उसको

पूरा किया जाये, क्योंकि इन दोनों में से कोई भी फ़र्ज़ या वाजिब नहीं, दोनों मुस्तहब हैं। (मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 60-61, शामी जिल्द 5 पेज 580-581)

तंबीहः यह क़ानून जो ऊपर बताया गया है कि जब सारी वसीयतें बराबर दर्जे की हों तो जो वसीयत पहले की थी वह मुक़द्दम की जायेगी। यह उस सूरत में है कि वसीयतें मुतैयन शख़्सों के लिये न हों, अगर मुताय्यन शख़्सों के लिये वसीयतें की थीं, जैसे अपने एक तिहाई माल की वसीयत 'ज़ैद' के लिये की, फिर 'ख़ालिद' के लिये भी एक तिहाई माल की वसीयत कर दी तो उस सूरत में पहली वसीयत को बाद की वसीयत पर मुक़द्दम न करेंगे, बल्कि वह तिहाई माल ज़ैद और ख़ालिद दोनों में बराबर तक़सीम होगा। (शामी जिल्द 5 पेज 580)

इस मसले में तफ़सीलात और बारीकियाँ बहुत हैं। जब ऐसा मसला पेश आये तो दीन के माहिर आ़लिमों से पूछकर अ़मल किया जाये।

नमाज़ व रोज़ा वग़ैरह के फ़िदये के मसाईल और उनकी मिक़दार

1. हर दिन की नमाज़ें वित्र समेत छह लगाई जायेंगी, और हर नमाज़ का फ़िदया एक सेर साढ़े बारह छटाँक गेहूँ या उसकी क़ीमत होगी। एहतियात इसमें है कि पूरे दो सेर गेहूँ या उसकी क़ीमत अदा की जाये। इस तरह एक-एक दिन की नमाज़ों का फ़िदया पूरे बारह सेर गेहूँ या उसकी क़ीमत होगी।

2. हर रोज़े का फ़िदया एक नमाज़ के फ़िदये के बराबर है। यानी एक सेर साढ़े बारह छटाँक (और एहतियातन दो सेर) गेहूँ या उसकी क़ीमत। रमज़ान के रोज़ों के अ़लावा अगर कोई नज़्र (मन्नत) मानी हुई थी तो उसका भी फ़िदया देना होगा।

3. ज़कात जितने साल की हो और जितनी मिक़दार (मात्रा) माल की रही है उसका हिसाब करके अदा करना होगा।

4. फ़र्ज़ हज अगर मय्यित अदा नहीं कर सका तो मय्यित की बस्ती से किसी को हज्जे बदल के लिये भेजा जायेगा और उसका आने-जाने का पूरा किराया और खाने व ठहरने के तमाम ज़रूरी ख़र्चे अदा करने होंगे। अगर

तर्का के एक तिहाई में इतनी गुंजाईश न हो तो जिस बस्ती से ख़र्च कम आता हो वहाँ से भेज दिया जाये।

5. जितने सदक़ा-ए-फ़ित्र रहे हों हर एक के एक सेर साढ़े बारह छटाँक (और एहतियातन पूरे दो सेर) गेहूँ या उसकी क़ीमत अदा की जाये।

6. क़ुरबानी कोई रह गयी हो तो उस साल में एक बकरे या एक गाय का अन्दाज़ा करके क़ीमत का सदक़ा किया जाये।

7. सज्दा-ए-तिलावत रह गया हो तो एहतियात इसमें है कि हर सज्दे के बदले एक नमाज़ के फ़िदये के बराबर सदक़ा किया जाये।

8. अगर छूटी हुई नमाज़ों या रोज़ों वग़ैरह की सही तायदाद मालूम न हो तो अन्दाज़े से हिसाब किया जाये। (ये सब मसाईल रिसाला **"हीला-ए-इस्क़ात"** से लिए गए हैं)।

नाजायज़ वसीयतों की चन्द मिसालें

यहाँ तक जो अहकाम बयान हुए ये सब उन वसीयतों के हैं जो शरई तौर पर दुरुस्त हों, बातिल न हों। बातिल वसीयतों का बयान पीछे आ चुका है। उन्हीं बातिल वसीयतों में से एक यह है कि किसी नाजायज़ काम में माल ख़र्च करने की वसीयत की हो, जैसे तीजा (सोयम) करने की या ग्यारहवीं, बारहवीं, दसवाँ, बीसवाँ, चालीसवाँ, (चेहलुम) करने या राईज मीलाद या उर्स कराने की वसीयत की, या क़ब्र पक्की बनाने या उस पर क़ुब्बा (गुंबद) बनाने की वसीयत की, या यह वसीयत की कि क़ब्र पर किसी हाफ़िज़ को पैसे देकर बिठा देना कि पढ़-पढ़कर सवाब बख़्शता रहे।(1) या किसी वारिस को मेहरूम करने की या सिनेमा-घर बनाने की वसीयत की तो ऐसी वसीयतें करने वाला सख़्त गुनाहगार है और इन वसीयतों पर अ़मल करना भी ज़ायज़ नहीं। (शामी जिल्द 5 पेज 605, बहिश्ती ज़ेवर)

वसीयत कर जाने की ताकीद और सम्बन्धित हिदायतें

अगर किसी के ज़िम्मे नमाज़ों या रोज़ों का फ़िदया या ज़कात या हज

(1) क़ुरआन पाक की तिलावत पर उजूरत लेना हराम है। जो तिलावत उजूरत लेकर की जाये उसका सवाब न पढ़ने वाले को मिलता है न मय्यित को, बल्कि ऐसा करने वाला उलटा गुनाहगार होता है।

रह गया हो या क़सम वग़ैरह का कफ़्फ़ारा या सदक़ा-ए-फ़ित्र या नज़्र (मन्नत) या और कोई माली इबादत जो फ़र्ज़ या वाजिब थी अदा होने से रह गयी हो और इतना माल भी हो तो उन चीज़ों की अदायगी के लिये मरने से पहले वसीयत कर जाना वाजिब है, नहीं करेगा तो गुनाहगार होगा।

(बहिश्ती ज़ेवर, दुर्रे मुख़्तार जिल्द 5 पेज 568)

मसलाः जिस शख़्स के ज़िम्मे लोगों के क़र्ज़े हों या उसके पास अमानतें हों जिनकी कोई ऐसी रसीद या सनद नहीं जिसे पेश करके क़र्ज़-ख़्वाह और अमानत के मालिक अपना सारा माल वसूल कर सके या इसी क़िस्म के और मामलात हों जिनमें वसीयत न होने की सूरत में लोगों की हक़-तल्फ़ी का अन्देशा है तो उस पर लाज़िम और वाजिब है कि उन लोगों के हुक़ूक़ को लिखित रूप में या ज़बानी तौर पर वाज़ेह कर जाये वरना सख़्त गुनाहगार होगा। (बहिश्ती ज़ेवर, मुफ़ीदुल-वारिसीन, शामी)

ज़िन्दगी का कुछ भरोसा नहीं, किसी को नहीं मालूम कब मौत का पैग़ाम आ जाये और उस वक़्त वसीयत करने का मौक़ा भी मिलेगा या नहीं, इसलिये ईमान का तक़ाज़ा यह है कि मौत के लिये हर वक़्त तैयार रहे और सेहत की हालत ही में इस क़िस्म के मामलों की वसीयत कर रखे।

हदीसः हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु का बयान है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमायाः

"जिस मुसलमान के पास ऐसी कोई चीज़ है जिसके मुताल्लिक़ उसे वसीयत करनी है, उसे दो रातें भी इस हालत में गुज़ारने का हक़ नहीं कि वसीयत उसके पास लिखी हुई मौजूद न हो। (मुस्लिम शरीफ़ जिल्द 2 पेज 39)

मसलाः अगर किसी के शरई वारिस पहले से मालदार हैं या उसकी मीरास में से उनको इस क़द्र हिस्सा मिलेगा कि मीरास पाने के बाद बहुत ग़नी और दौलतमन्द हो जायेंगे तो ऐसे शख़्स को अपने माल में से मस्जिदों और दीनी मदरसों वग़ैरह के लिये या ऐसे रिश्तेदारों के लिये जिनको मीरास में हिस्सा नहीं मिलेगा वसीयत कर जाना मुस्तहब है। यानी वसीयत करे तो सवाब होगा, न की तो कोई गुनाह नहीं। लेकिन अपने एक तिहाई माल से ज़्यादा की वसीयत बहरहाल नाजायज़ है, बल्कि बेहतर यह है कि एक तिहाई से भी कम की वसीयत करे। (बहिश्ती ज़ेवर, मुफ़ीदुल-वारिसीन)

और अगर शरई वारिस पहले से भी ग़नी नहीं और उसके पास माल

भी इतना ज़्यादा नहीं कि मीरास पाकर वे लोग दौलतमन्द हो जायें तो मुस्तहब यह है कि अपने माल में से सदक़ा व ख़ैरात वग़ैरह की कुछ वसीयत न करे और सारा तर्का वारिसों के लिये छोड़ दे, क्योंकि जब ये लोग मुफ़्लिस और हाजत मन्द हैं तो उनको भी जो नफ़ा और फ़ायदा मय्यित के माल से होगा उसका सवाब मय्यित को सदक़ा व ख़ैरात से भी दोगुना होगा। लेकिन अगर ज़रूरी वसीयत हो जैसे नमाज़ रोज़ा का फ़िदया तो उसकी वसीयत बहरहाल करना वाजिब है वरना गुनाहगार होगा।

(मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 59, बहिश्ती ज़ेवर, शामी)

मसलाः यह वसीयत कर देना भी मुस्तहब है कि मेरा कफ़न-दफ़न सुन्नत के मुताबिक़ किया जाये और मेरे मरने पर नौहा, मातम और चीख़ना हरगिज़ न किया जाये, और ख़िलाफ़े शरीअ़त रस्मों और बिद्अ़तों से बचा जाये। लेकिन जिस शख़्स के रिश्तेदारों में इन नाजायज़ कामों का रिवाज हो और गुमान ग़ालिब हो कि ये हरकतें की जायेंगी तो उसके लिये इन चीज़ों की मनाही कर देना लाज़िम और ज़रूरी है। (मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 58)

मसलाः अपनी कफ़न-दफ़न वग़ैरह के लिये ऐसे तमाम उमूर (बातों और मामलात) की वसीयत कर देना जायज़ है जो शरअ़न् मना और मक्रूह न हों। जैसे यह कि फ़ुलाँ जगह दफ़न करना, फ़ुलाँ शख़्स नमाज़ पढ़ाये, वारिसों पर इन उमूर की पाबन्दी लाज़िम तो नहीं लेकिन अगर कोई बात ख़िलाफ़े शरीअ़त न हो तो ऐसी वसीयत को पूरा कर देना बेहतर है।

(मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 59)

मसलाः ऐसे लोगों को माल दिये जाने की वसीयत करना मक्रूह है जो अल्लाह तआ़ला के नाफ़रमान और बुराईयों व गुनाहों में मुब्तला हैं, और ग़ालिब गुमान यह है कि उसके माल को भी उसी में ख़र्च करेंगे। अगर ऐसे शख़्स के लिये वसीयत कर दी तो वसीयत के क़ायदों के मुताबिक़ माल तो उसे दिया जायेगा लेकिन वसीयत करने वाला गुनाहगार होगा।

(शामी, दुर्रे मुख़्तार जिल्द 5 पेज 605)

वसीयत नामा

वसीयत के लिये बेहतर और आसान सूरत यह है कि एक ख़ासी मोटी कापी तैयार कर लें। उसके मुख्य पेज पर "वसीयत नामा" और "ज़रूरी

याद दाश्तें" लिख दिया जाये और अन्दर नीचे दिए गए उन्वानों में से हर उन्वान के लिये कई-कई पन्ने मुक़र्रर कर लिये जायें:

1. नमाज़ें जो अहक़र के (यानी मेरे) ज़िम्मे बाक़ी हैं।

2. ज़कात जो अहक़र के ज़िम्मे बाक़ी है।

3. रमज़ान और मन्नत के रोज़े जो अहक़र के ज़िम्मे बाक़ी हैं।

4. फ़र्ज़ हज।

5. सदक़ा-ए-फ़ित्र जो अहक़र के ज़िम्मे बाक़ी हैं।

6. क़ुरबानियाँ जिन बरसों की अहक़र के ज़िम्मे बाक़ी हैं उनकी क़ीमत का सदक़ा करना है (क्योंकि क़ुरबानी के दिन गुज़र जाने के बाद क़ुरबानी नहीं हो सकती, उसकी क़ीमत का सदक़ा ही वाजिब है)

7. सदक़ा-ए-फ़ित्र जो अहक़र के ज़िम्मे अपने बच्चों के बाक़ी हैं।

8. सज्दा-ए-तिलावत जो अहक़र के ज़िम्मे बाक़ी हैं।

9. क़सम के कफ़्फ़ारे जो अहक़र के ज़िम्मे बाक़ी हैं।

10. दूसरों का क़र्ज़ जो अहक़र के ज़िम्मे है।

11. अहक़र का क़र्ज़ जो दूसरों के ज़िम्मे है।

12. अहक़र की अमानतें जो दूसरों के पास हैं।

13. दूसरों की अमानतें जो अहक़र के पास हैं।

14. वसीयत नामा।

इस तरह उन्वानात क़ायम करने के बाद हर उन्वान के तहत जो सूरतेहाल हो लिखते रहें। अगर उस उन्वान से मुताल्लिक़ कोई चीज़ आपके ज़िम्मे नहीं तो यही लिख दें। अगर ज़िम्मे है तो उसकी तफ़सील लिख दें। फिर उसमें जितनी-जितनी अदायगी ज़िन्दगी में होती जाये उसको कम करते रहें। कोई चीज़ और वाजिब हो जाये तो उसका इज़ाफ़ा कर दें।

बहरहाल! हर उन्वान के तहत मुकम्मल हिसाब लिखा रहना चाहिये और आख़िरी उन्वान "वसीयत नामा" के अन्दर भी लिख दें कि पिछले पन्नों में जो हुक़ूक़ और हिसाबात दर्ज हैं उनके मुताबिक़ अदायगी की जाये। उसके अ़लावा वसीयत नामा में मौक़े के मुताबिक़ इन्दिराज करते रहें और ज़रूरत के मुताबिक़ तरमीम व इज़ाफ़ा करते रहें। अपने किसी क़ाबिले एतिमाद को बता दिया जाये कि यह कापी फ़लाँ जगह रखी है ताकि किसी वक़्त भी मौत का पैग़ाम आ जाये तो अल्लाह और बन्दों के हुक़ूक़ अदा हो

सकें और अपने ऊपर दुनिया व आख़िरत का भार (बोझ) न रहे।

जिस बीमारी में इन्तिक़ाल हो उस बीमारी में तोहफ़ा या सदक़ा देना भी वसीयत के हुक्म में है

वसीयत के मसलों से यह बात अच्छी तरह ज़ेहन में बैठ गयी होगी कि वसीयत चाहे मौत की बीमारी में की जाये या तन्दुरुस्ती में उसका हर सूरत में एक ही हुक्म है कि वह कफ़न-दफ़न वग़ैरह के ख़र्चों और क़र्ज़ के अदा करने के बाद बचे हुए माल के सिर्फ़ एक तिहाई हिस्से में नाफ़िज़ होती है। उस एक तिहाई की हद तक हर आ़क़िल व बालिग़ को मरने से पहले हर वक़्त इख़्तियार है कि चाहे तो किसी के लिये वसीयत कर जाये, बाक़ी दो तिहाई माल वारिसों का हक़ है। चुनाँचे शरीअ़त ने ऐसी हर वसीयत को बातिल और बेबुनियाद क़रार दिया है जिससे वारिसों के इस हक़ में कमी आती हो। उनके इसी हक़ की हिफ़ाज़त के लिये शरीअ़त ने मरने वाले पर मौत की बीमारी में तोहफ़े देने या सदक़े व ख़ैरात वग़ैरह करने पर भी कुछ पाबन्दियाँ लगा दी हैं जिनका ख़ुलासा यहाँ ज़िक्र किया जाता है।

मौत की बीमारी (जिस बीमारी में इन्तिक़ाल हो जाए) से पहले-पहले हर आ़क़िल बालिग़ को अल्लाह तआ़ला ने इख़्तियार दिया है कि अपना जिस क़द्र माल और सामान व जायदाद वह किसी को देना चाहे दे दे। तिहाई से ज़्यादा बल्कि सारा माल भी दे सकता है, कोई पाबन्दी नहीं। चाहे वह माल लेने वाला उसका वारिस हो या कोई दूसरा रिश्तेदार हो या अजनबी। लेने वाला बहरहाल उसका मालिक हो जायेगा। लेकिन शर्त यह है कि जितना माल देना चाहता है उसको अपने बाक़ी माल से अलग कर दे और जिसको देना चाहता है उसे देकर क़ब्ज़ा करा दे, वरना अगर मुश्तरक माल देगा या क़ब्ज़ा नहीं करायेगा तो यह देना शरई तौर पर मोतबर नहीं होगा। यानी देने वाला ही उसका मालिक रहेगा और उसके मरने के बाद उसके तर्के में शामिल होगा, लेने वाले को कुछ न मिलेगा।

(मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 42)

लेकिन जिस वक़्त से 'मरज़ुल-मौत' यानी वह बीमारी शुरू होती है जिसमें यह मुसाफ़िर दुनिया से रुख़्सत हो जायेगा उसी वक़्त से वारिसों का

हक़ उसके माल में किसी क़द्र लग जाता है और मरीज़ को पूरा इख़्तियार नहीं रहता। अब अगर वह किसी को कोई तोहफ़ा या हदिया दे दे या सदक़ा ख़ैरात करे तो यह देना बिल्कुल वसीयत के हुक्म में होगा। यानी जिन शर्तों के साथ और जिस हद तक वसीयत दुरुस्त है उन्हीं शर्तों के साथ और उसी हद तक यह देना भी मोतबर होगा। और जिन सूरतों में वसीयत बातिल हो जाती है उनमें यह देना भी बातिल और ग़ैर-मोतबर होगा।

खुलासा यह कि मौत की बीमारी में दिये हुए तोहफ़े, हदिये और सदक़ात व ख़ैरात सबके सब वसीयत के हुक्म में हैं। जो पाबन्दियाँ वसीयत में हैं उनमें भी होंगी। नीचे दर्ज मसाइल इसी उसूल पर आधारित हैं।

मसलाः जिस तरह तिहाई माल से ज़्यादा की वसीयत कर जाना दुरुस्त नहीं, इसी तरह 'मरजुल-मौत' (1) में अपना माल तिहाई से ज़्यादा किसी को बिला मुआवज़ा देना जैसे हदिया, हिबा, फ़िदया और सदक़ा में देना भी दुरुस्त नहीं क्योंकि इसमें वारिसों की हक़-तल्फ़ी है।

अगर तिहाई से ज़्यादा दे दिया तो जब तक मय्यित के इन्तिक़ाल के बाद सब वारिस उसकी इजाज़त न दें यह देना दुरुस्त न होगा। जितना तिहाई से ज़्यादा है वारिसों को वापस लेने का इख़्तियार है और नाबालिग़ या मजनूँ अगर इजाज़त दें तब भी मोतबर नहीं। और 'मरज़ुल-मौत' में किसी वारिस को तिहाई के अन्दर भी सब वारिसों की इजाज़त के बग़ैर देना दुरुस्त नहीं, और यह सब हुक्म उस वक़्त है जबकि अपनी ज़िन्दगी में देकर क़ब्ज़ा भी करा दिया हो। और अगर दे तो दिया यानी लिखित तौर पर या ज़बानी कह दिया कि "इतना माल मैंने फ़ुलाँ को दे दिया है" लेकिन क़ब्ज़ा अभी नहीं हुआ तो मरने के बाद वह देना बिल्कुल ही बातिल और ग़ैर-मोतबर है, उसको कुछ न मिलेगा। वह सब माल वारिसों का हक़ है।

'मरज़ुल-मौत' (यानी जिस बीमारी में इन्तिक़ाल हो जाए) में ख़ुदा की राह में देने और नेक काम जैसे वक़्फ़ वग़ैरह में लगाने का भी यही हुक्म है। ग़र्ज़ यह कि तिहाई से ज़्यादा माल बिला मुआवज़ा देना किसी तरह भी दुरुस्त नहीं और वारिस को देना तिहाई में भी दुरुस्त नहीं।

(बहिश्ती ज़ेवर, दुर्रे मुख़्तार)

(1) मरज़ुल मौत की तशरीह (तफ़सील) अगले उन्वान में आयेगी।आयेगा। (रफ़ी)

मसलाः बीमार के पास 'मरज़ुल मौत' में मिज़ाज-पुर्सी के लिये कुछ लोग आ गये और कुछ दिन यहीं रहे और उसके माल में से खाते पीते रहे, तो अगर मरीज़ की ख़िदमत के लिये उनके रहने की ज़रूरत हो तो कुछ हर्ज नहीं, और अगर ज़रूरत न हो तो उनकी दावत, ख़ातिर तवाज़ो और खाने-पीने में भी तिहाई से ज़्यादा लगाना जायज़ नहीं। और अगर ज़रूरत भी न हो और वे लोग वारिस हों तो तिहाई माल से कम भी बिल्कुल जायज़ नहीं। यानी उनको उसके माल में से खाना जायज़ नहीं। हाँ अगर सब वारिस राज़ी हों तो जायज़ है। (बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः मरज़ुल-मौत में अपना क़र्ज़ माफ़ करने का भी इख़्तियार नहीं है। अगर किसी वारिस पर क़र्ज़ था, उसको माफ़ किया, माफ़ नहीं हुआ। (1) और अगर किसी ग़ैर वारिस को माफ़ किया तो तिहाई माल से जितना ज़्यादा होगा वह वारिसों की इजाज़त के बग़ैर माफ़ न होगा। (बहिश्ती ज़ेवर)

मसलाः अक्सर दस्तूर है कि बीवी अपनी मौत के वक़्त मेहर माफ़ कर देती है, यह माफ़ करना भी बीवी के सब वारिसों की इजाज़त के बग़ैर सही नहीं, क्योंकि माफ़ करना 'मरज़ुल-मौत' में वारिस (शौहर) के लिये हुआ है जिससे दूसरे वारिसों की हक़-तल्फ़ी होगी।

(बहिश्ती ज़ेवर, इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत जिल्द 1 पेज 238)

मसलाः अगर 'मरज़ुल-मौत' में यह इक़रार किया कि फ़ुलाँ शख़्स का इतना क़र्ज़ मेरे ज़िम्मे है, या यह इक़रार किया कि मेरा क़र्ज़ जो फ़ुलाँ के ज़िम्मे था वह मैंने वसूल कर लिया है, तो बाज़ सूरतों में यह इक़रार मोतबर है और बहुत सी सूरतों में मोतबर नहीं। क्योंकि ऐसे इक़रार से वारिसों के हिस्से में कमी आती है इसलिये जो सूरत पेश आये किसी मोतबर आ़लिम को बताकर मसला पूछ लिया जाये, अपने अन्दाज़ और ख़्याल से हरगिज़ अ़मल न फ़रमायें। (मुफ़ीदुल-वारिसीन में इन मसाईल की तफ़सील मौजूद है वहाँ देखे जा सकते हैं)।

तंबीहः जिन बीमारियों में मुब्तला होकर मरीज़ तन्दुरुस्त हो गया वे बिल्कुल सेहत की तरह शुमार होंगी और उन बीमारियों में जितने तसर्रुफ़ात किये थे वे सब नाफ़िज़ और जारी होंगे। यानी जो कुछ किसी के लिये

(1) लेकिन अगर बाक़ी सब वारिस आ़क़िल बालिग़ हों और सब ख़ुशी से माफ़ कर दें तो माफ़ हो जायेगा। रफ़ी

इक़रार किया था या किसी को कुछ तोहफ़ा या सदक़ा वग़ैरह दिया था या किसी को क़र्ज़ माफ़ किया था वग़ैरह वग़ैरह वह सब सही और दुरुस्त होगा, चाहे ये बीमारियाँ सख़्त और हलाक करने वाली हों या मामूली और हल्की।

(मुफ़ीदुल-वारिसीन)

मरज़ुल-मौत कब से शुमार होगा?

'मरज़ुल-मौत' उस बीमारी को कहते हैं जिसमें मुब्तला होकर आदमी दुनिया से रुख़्सत हो जाये। ज़िन्दगी में हरगिज़ यह मालूम नहीं हो सकता कि वह बीमारी कौनसी है जिसमें मरीज़ दुनिया से रुख़्सत हो जायेगा।

(मुफ़ीदुल-वारिसीन)

मसलाः जब कोई शख़्स किसी मर्ज़ (बीमारी) में मुब्तला होकर मर जाये तो जिस वक़्त से मुब्तला हुआ था उसी वक़्त से मरज़ुल-मौत की हालत शुमार होगी। लेकिन जो बीमारी साल भर तक या ज़्यादा रही हो उसको शुरू ही से मरज़ुल-मौत शुमार न करेंगे, बल्कि जिस वक़्त बीमारी सख़्त होकर हलाकत की नौबत पहुँची है उस दिन से मरज़ुल-मौत शुमार होगा और उसी रोज़ से मरज़ुल-मौत के वे अहकाम जारी होंगे जो ऊपर बयान हुए हैं। पस अगर कोई शख़्स साल दो साल से तपेदिक़ (टी. बी.) में या फ़ालिज या मिर्गी या बवासीर वग़ैरह ख़तरनाक बीमारियों में मुब्तला था, उसके बाद एक हफ़्ता के लिये बीमारी ज़्यादा और सख़्त होकर उसी में इन्तिक़ाल हो गया, तो मरज़ुल-मौत सिर्फ़ एक हफ़्ता शुमार होगा, उससे पहले के सब मामलात हिबा, सदक़ा वग़ैरह बिल्कुल जायज़ और सेहत की हालत की तरह समझे जायेंगे।

(शामी, दुर्रे मुख़्तार जिल्द 5 पेज 579, मुफ़ीदुल वारिसीन)

मसलाः जिस बीमारी में बिला तकल्लुफ़ नमाज़ वग़ैरह के लिये मस्जिद में जाता था, बाज़ार से अपनी ज़रूरतें ख़रीद लाता था, या घर में कुछ काम करता रहता था, बिस्तर से नहीं लग गया था, वह भी शुरू से 'मरज़ुल-मौत' शुमार न होगा।

इसी तरह औरत जिस बीमारी में अपने घर के काम-काज करती थी वह 'मरज़ुल-मौत' शुमार न होगा। जैसे बहुत दिनों से तीसरे या चौथे रोज़ बुख़ार आता था कोई ज़्यादा बीमारी न थी। फिर एक महीने के बाद ऐसा

सख़्त बुख़ार चढ़ा कि आठ दिन तक न उतरा और उसी में इन्तिक़ाल हो गया, बस ये आठ दिन 'मरज़ुल-मौत' के समझे जायेंगे। एक महीने से जो बुख़ार आता था वे दिन सेहत के ज़माने की तरह शुमार होंगे और उनमें किये हुए सब मामलात हिबा और सदक़ा वग़ैरह जायज़ और दुरुस्त होंगे।

(मुफ़ीदुल-वारिसीन)

ग़र्ज़ जिस बीमारी में मरीज़ मर जाये और वह बीमारी साल भर से कम हो और उसमें अपने मामूल के और ज़रूरी काम न कर सके उसको मरज़ुल-मौत कहते हैं। (मुफ़ीदुल-वारिसीन)

मसलाः औरत अगर विलादत (पैदाईश) की तकलीफ़ में मर गयी तो जिस वक़्त से बच्चा होने का दर्द शुरू हुआ था उसी वक़्त से मरज़ुल-मौत शुमार होगा। (मुफ़ीदुल-वारिसीन, बहिश्ती ज़ेवर)

जिस ख़तरनाक हालत में मौत का गुमान ग़ालिब हो

मसलाः अगर जहाज़ या कश्ती पर सवार थे और इस क़द्र तूफ़ान आया कि बचने की उम्मीद न रही और मौत का गुमान ग़ालिब हो गया। फिर जहाज़ या कश्ती डूबकर लोग हलाक हो गये तो जितनी देर ज़िन्दगी से मायूसी रही थी वह वक़्त उन लोगों के हक़ में मरज़ुल-मौत शुमार होगा और उसमें मरज़ुल-मौत के वही अहकाम जारी होंगे जो पिछले उन्वान के तहत बयान हुए हैं। लेकिन अगर जहाज़ व कश्ती सही सलामत निकल आई तो उस मायूसी की हालत के सब मामलात बिल्कुल सही और पूरी तरह नाफ़िज़ होंगे। (मुफ़ीदुल-वारिसीन)

मसलाः जिस शख़्स के क़त्ल का हुक्म हो चुका है और जेल में बन्द है उसकी यह हालत मरज़ुल-मौत के मानिंद नहीं समझी जायेगी, लेकिन जिस वक़्त उसको क़ैद से निकाल कर क़त्ल करने की जगह की तरफ़ ले चलें और क़त्ल कर डालें, तो क़ैद से निकल कर क़त्ल होने तक जितनी देर लगी है यह मरज़ुल-मौत के हुक्म में है। और अगर उस दिन किसी वजह से क़त्ल मुल्तवी (स्थगित) रहा या क़त्ल बिल्कुल मन्सूख़ हो गया, तो जेल से निकल कर क़त्ल होने की जगह तक आने की हालत मरज़ुल-मौत के हुक्म में न होगी और उसमें जो तसर्रुफ़ात किये थे वे बिल्कुल जारी और सही व दुरुस्त हो जायेंगे। (मुफ़ीदुल-वारिसीन)

वसी यानी मय्यित का वकील और नायब

वसीयत करने वाला जिस शख़्स को अपनी मौत के बाद तर्का (छोड़े हुए माल व जायदाद) से क़र्ज़ों की अदायगी या वसीयतों की तामील, मीरास की तक़सीम और अपने बच्चों के मामलात का इन्तिज़ाम वग़ैरह करने के लिये अपना नायब और वकील मुक़र्रर कर दे उसको "वसी" कहते हैं। जिसको वसी बनाया था अगर उसने ज़बान से क़बूल कर लिया तब भी उस पर लाज़िम हो गया, या कोई काम ऐसा किया जिससे मालूम हो गया कि यह शख़्स वसी बनने पर राज़ी है तब भी वसी बन गया।

लेकिन जब तक वसीयत करने वाला ज़िन्दा है वसी को इख़्तियार है कि वसी बनने से इनकार कर दे, लेकिन उसकी मौत के बाद इख़्तियार न रहेगा। (मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 65)

अगर एक शख़्स को बाज़ मामलात का वसी बनाया और दूसरे मामलात का कुछ ज़िक्र नहीं किया और न उनके लिये किसी और को वसी बनाया है तो तमाम मामलात का वसी यही शख़्स समझा जायेगा। अगर तमाम मामलात में दो शख़्सों को वसी बनाया है तो उन दोनों को आपस में मिलकर काम करना चाहिये, सिर्फ़ एक शख़्स अगर तसर्रुफ़ात करेगा तो नाजायज़ होंगे। लेकिन अगर कफ़न-दफ़न वग़ैरह का इन्तिज़ाम और मय्यित के बाल बच्चों और घर वालों की फ़ौरी ज़रूरतों को एक शख़्स भी अन्जाम दे दे तो जायज़ व मोतबर होगा। (दुर्रे मुख़्तार जिल्द 5 पेज 616, मुफ़ीदुल-वारिसीन)

वसी बनना और फिर दियानतदारी से काम करना निहायत ही दुश्वार और सख़्त मुश्किल है, इसलिये उससे जहाँ तक मुम्किन हो बचना चाहिये और सख़्त मजबूरी के बग़ैर हरगिज़ इख़्तियार न करना चाहिये। और अगर किसी ज़रूरत व मस्लेहत से कभी इख़्तियार करे तो अल्लाह की पकड़ और आख़िरत के अ़ज़ाब से डरकर पूरी दियानतदारी और ख़ैरख़्वाही से काम करना चाहिये, माले मुफ़्त समझकर बेजा ख़र्च करना और बिना सोचे समझे मालिकाना तसर्रुफ़ करना हरगिज़ जायज़ नहीं। लेकिन अगर उसके इन्तिज़ामी काम इतने ज़्यादा हों कि उनमें लगकर अपने रोज़गार की फ़िक्र की फ़ुर्सत न मिलती हो तो ज़रूरत के मुताबिक़ अपने ख़र्चों और ज़रूरियात के लिये वसीयत करने वाले के माल से ले लेना जायज़ है। ऐसी सूरत पेश

आये तो मोतबर आ़लिमों से पूछ लिया जाये। (मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 65)

(4) वारिसों पर मीरास की तक़सीम

मय्यित के तर्का में तरतीब वार चार हुक़ूक़ वाजिब होते हैं उनमें से तीन की तफ़सील पीछे आ चुकी है, यानी कफ़न-दफ़न वग़ैरह, क़र्ज़ों की अदायगी और जायज़ वसीयतों का पूरा करना। अब चौथे हक़ यानी "वारिसों पर मीरास की तक़सीम" का बयान होता है।

जायज़ वसीयतों पर अ़मल करना तिहाई तर्का की हद तक करने के बाद जो कुछ माल बाक़ी रहे वह सबका सब मय्यित के तमाम वारिसों की मिल्कियत है। जो उनमें शरीअ़त के मुक़र्रर किये हुए हिस्सों के मुताबिक़ तक़सीम होगा।

मसलाः अगर मय्यित पर न कोई क़र्ज़ था न उसने कोई वसीयत की थी तो कफ़न दफ़न वग़ैरह के ख़र्चों से बचा हुआ सारा माल वारिसों में तक़सीम होगा। और अगर क़र्ज़ था वसीयत न थी तो क़र्ज़ से जितना माल बचा वह वारिसों को मिलेगा। (दुर्रे मुख़्तार)

शरीअ़त ने हर वारिस का हिस्सा मुक़र्रर कर दिया है जिसमें रद्दोबदल, तरमीम या कमी-बेशी का किसी को इख़्तियार नहीं। लेकिन ख़ुद शरीअ़त ही ने हर वारिस का हिस्सा हर हालत में एक नहीं रखा बल्कि मुख़्तलिफ़ हालतों में मुख़्तलिफ़ हिस्से मुक़र्रर किये हैं। यानी वारिसों की कमी-बेशी से उनके हिस्सों का तनासुब (अनुपात) बदल दिया है। बाज़ वारिसों की कमी-बेशी से उनके हिस्सों का तनासुब बदल दिया है। बाज़ वारिसों की वजह से बाज़ दूसरे वारिसों का हिस्सा या तो बिल्कुल ख़त्म हो जाता है या उसमें कमी हो जाती है, जिसकी तफ़सीलात इल्मे मीरास की किताबों में ज़िक्र की गयी हैं यहाँ बयान नहीं की जा सकतीं। क्योंकि इल्मे मीरास एक मुस्तक़िल फ़न है जिसमें बहुत बारीकियाँ हैं, अ़वाम के लिये उनका समझना बहुत दुश्वार है।

इसलिये जब किसी का इन्तिक़ाल हो तो इन्तिक़ाल के वक़्त उसके माँ-बाप लड़के-लड़कियाँ और बीवी या शौहर में जो-जो ज़िन्दा हो (चाहे वे मुख़्तलिफ़ मुल्कों में हों) उनकी मुकम्मल फ़ेहरिस्त, तायदाद और रिश्ता लिखकर किसी मोतबर आ़लिम व मुफ़्ती से जो मीरास के मसलों में महारत

रखता हो, वारिसों के हिस्से पूछ लें और उसके बताये हुए तरीक़े और हिसाब के मुताबिक़ मीरास तक़सीम कर दें। अगर मय्यित के इन्तिक़ाल के वक़्त ऊपर ज़िक्र हुए वारिसों में से बाज़ ज़िन्दा हों बाज़ न हों तो मय्यित के दूसरे ज़िन्दा रिश्तेदारों की तायदाद भी मय रिश्ता लिखें। मय्यित के जो हक़ीक़ी (सगे) भाई-बहन हों, या सिर्फ़ बाप शरीक हों या सिर्फ़ माँ शरीक, उनकी भी अलग-अलग ज़रूर वज़ाहत कर दें। सौतेले माँ-बाप और सास-ससुर और ससुराली रिश्तेदार शरई तौर पर वारिस नहीं, उनको फ़ेहरिस्त में शामिल न किया जाये।

मय्यित के इन्तिक़ाल के बाद अगर उसका कोई वारिस मीरास के तक़सीम होने से पहले इन्तिक़ाल कर गया तो उसका हिस्सा उसके वारिसों में तक़सीम होगा। इसलिये उस इन्तिक़ाल कर जाने वाले को भी फ़ेहरिस्त में शामिल करना ज़रूरी है।

कई रिश्तेदार एक हादसे में हलाक हो गये तो उसका हुक्म

मसलाः अगर कई रिश्तेदार एक हादसे में हलाक हो गये और यह मालूम न हो सके कि किसकी मौत पहले और किसकी बाद में हुई। जैसे एक जहाज़ में बहुत से रिश्तेदार एक साथ डूब गये या किसी गाड़ी वग़ैरह के हादसे में या किसी इमारत के गिर जाने से हलाक हो गये, और यह मालूम न हो कि कौन पहले मरा है कौन बाद में? तो ऐसी सूरत में कोई दूसरे का वारिस न होगा और शरई तौर पर यूँ समझा जायेगा कि गोया ये सब एक साथ हलाक हुए हैं, न यह उसका वारिस होगा न वह उसका। उनके बाद जो वारिस ज़िन्दा रहे हैं सिर्फ़ उनमें मीरास तक़सीम होगी।

(मुफ़ीदुल-वारिसीन पेज 70)

शौहर तलाक़ की इद्दत में मर जाये तो औरत वारिस होगी या नहीं?

मय्यित के इन्तिक़ाल के वक़्त उसकी बीवी अगर तलाक़ की इद्दत में

थी तो वह बाज़ सूरतों में वारिस होगी बाज़ में न होगी। इसकी तफ़सील पीछे इद्दत के बयान में आ चुकी है वहाँ देख ली जाये, पूरी तरह समझ में न आये तो फिर उलेमा-ए-किराम से दरियाफ़्त फ़रमा लें।

गुमशुदा वारिस का मीरास का हिस्सा

जो वारिस मय्यित के इन्तिक़ाल से पहले कहीं लापता हो गया हो और तलाश के बावजूद यह मालूम न हो सके कि ज़िन्दा है या मर गया? तो ऐसे शख़्स को "गुमशुदा" कहा जाता है। इसके मुताल्लिक़ शरई हुक्म यह है कि उसका मीरास का हिस्सा बतौर अमानत महफ़ूज़ रखा जाये। अगर आ गया तो ले लेगा, न आया यहाँ तक कि इन्तिज़ार की मुक़र्ररा शरई मुद्दत गुज़र जाने के बाद मुसलमान हाकिम ने शरई क़ायदे के मुताबिक़ उसे मुर्दा क़रार दे दिया तो वह अमानत रखा हुआ हिस्सा भी मय्यित के बाक़ी वारिसों में तक़सीम होगा, गुमशुदा के वारिसों में नहीं। लेकिन गुमशुदा का अपना माल गुमशुदा ही के मौजूदा वारिसों में तक़सीम होगा।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत जिल्द 2 पेज 213-218)

इस मसले में भी तफ़सीलात बहुत हैं, ऐसी सूरत पेश आ जाये तो किसी साहिबे फ़तवा आ़लिमे दीन से पूछकर अ़मल किया जाये।

कोई वारिस माँ के पेट में हो तो मीरास की तक़सीम रुकी रहेगी

अगर मय्यित के इन्तिक़ाल के वक़्त उसका कोई वारिस माँ के पेट में है, अभी उसकी पैदाईश नहीं हुई तो मीरास में शरई तौर पर वह भी हिस्सेदार है। मगर चूँकि यह मालूम नहीं कि लड़का है या लड़की, इसलिये जब तक उसकी पैदाईश न हो जाये मीरास तक़सीम न की जाये, क्योंकि लड़के और लड़की का हिस्सा बराबर नहीं। तथा जब तक यह तय न हो कि वह लड़का है या लड़की, बहुत सी सूरतों में बाक़ी वारिसों के हिस्से भी यक़ीनी तौर पर तय नहीं हो सकते। अगर लड़का फ़र्ज़ करके मीरास तक़सीम कर दी, बाद में लड़के की बजाय लड़की हुई तो सारा हिसाब व किताब और तक़सीम नये सिरे से करनी पड़ेगी। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत)

मसलाः क़ातिल अपने मक़्तूल का वारिस नहीं होता। यानी अगर मय्यित को किसी ऐसे रिश्तेदार ने ज़ुल्मन् क़त्ल किया हो जो शरई तौर पर उसका वारिस था तो उस क़त्ल की वजह से शरीअ़त ने उसे अपने मक़्तूल (क़त्ल होने वाले) की मीरास से मेहरूम कर दिया है अगरचे वह मक़्तूल का कितना ही क़रीबी रिश्तेदार हो। जैसे बाप या बेटा हो तब भी वारिस न रहेगा। लेकिन शर्त यह है कि क़त्ल करने वाला आ़क़िल बालिग़ हो। अगर नाबालिग़ या मजनूँ ने क़त्ल किया तो वह अपने मक़्तूल की मीरास से मेहरूम न होगा। (शरीफ़िया शरह सिराजी पेज 11,12)

मसलाः मुसलमान और काफ़िर के दरमियान भी मीरास जारी नहीं होती। यानी मुसलमान काफ़िर और काफ़िर मुसलमान का वारिस नहीं हो सकता अगरचे दोनों में कितनी ही क़रीबी रिश्तेदारी हो, चाहे बाप बेटे ही हों। (शरीफ़िया शरह सिराजी पेज 14)

तर्का के मुताल्लिक़ कोताहियाँ

शरीअ़त का हुक्म है कि तर्का में जिन हुक़ूक़ की अदायगी वाजिब है जल्द उनको अदा करके बाक़ी मीरास वारिसों के दरमियान तक़सीम कर दी जाये, देरी होने से बहुत ज़्यादा पेचीदगियाँ और बदगुमानियाँ पैदा होती हैं। और बाज़ मर्तबा ज़्यादा देरी होने से मीरास की तक़सीम में सख़्त उलझनें और मुश्किलात पैदा हो जाती हैं और हक़-तल्फ़ी तक नौबत पहुँच जाती है।

ये जज़्बात बिल्कुल बेकार और बेबुनियाद हैं कि अगर मरहूम का तर्का फ़ौरन तक़सीम किया जाये तो दुनिया यह कहेगी कि बस इसी के मुन्तज़िर थे कि मरहूम की आँख बन्द हो और उसके सरमाये पर क़ब्ज़ा कर लिया जाये। मगर अल्लाह तआ़ला के हुक्म के आगे ये सब ख़्यालात व जज़्बात बेकार हैं। सब वारिसों को बता दिया जाये कि तर्का की तक़सीम अल्लाह तआ़ला का हुक्म है और उसके मुताबिक़ जल्द से जल्द अ़मल किया जाये। अब हम तर्का के मुताल्लिक़ बाज़ अहम-अहम कोताहियाँ ज़िक्र करते हैं जो कसरत से हमारे समाज में फैली हुई हैं उन्हें तवज्जोह से पढ़िये और इस्लाह की फ़िक्र कीजिये।

मय्यित का क़र्ज़ अदा न करना

आ़म तौर पर एक कोताही यह की जाती है कि लिखित क़र्ज़े के अ़लावा अगर कोई दूसरा क़र्ज़ा शरई दलील से मय्यित के ज़िम्मे साबित हो तो बहुत ही कम कोई तर्का से उसको अदा करता है, वरना साफ़ इनकार कर देते हैं। जैसे कि मय्यित के ऐसे ही क़र्ज़े जो दूसरों के ज़िम्मे हों वे लोग उनसे मुकर जाते हैं। ये दोनों बातें खुला ज़ुल्म हैं, खुसूसन मय्यित पर अगर क़र्ज़ हो तो वारिसों को समझना चाहिये कि मरहूम की रूह जन्नत में जाने से रुकी रहेगी जब तक क़र्ज़ न अदा हो, तो क्या अपने अ़ज़ीज़ के लिये इतनी ज़बरदस्त मेहरूमी क़ाबिले बरदाश्त है? (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत- 242)

जायज़ वसीयत पूरी न करना

एक बड़ी बे-एहतियाती यह हो रही है कि मय्यित की जायज़ वसीयत की परवाह नहीं की जाती, हालाँकि जहाँ तक शरीअ़त ने वसीयत का इख़्तियार दिया है यानी तिहाई तर्का तक वह उसकी मिल्क है, वसीयत करने के बाद किसी को उसमें दख़ल देने का कोई हक़ नहीं है। अगर उसमें मरहूम की वसीयत की ख़िलाफ़वर्ज़ी करके उसकी जायज़ वसीयत पूरी न की तो उसकी हक़-तल्फ़ी होगी और बन्दे का हक़ रह जायेगा। इसलिये बड़े फ़िक्र व ध्यान से मय्यित की वसीयत पूरी करनी चाहिये। अगर मरहूम ने किसी नाजायज़ काम में ख़र्च करने की वसीयत की हो तो उसे पूरा करना जायज़ नहीं। ('इस्लामे हक़ीक़ी' वअ़ज़ से लिया गया)

बिना वसीयत नमाज़ रोज़े का फ़िदया मुश्तरक तर्के से देना

एक कोताही यह है कि बाज़ लोग परहेज़गारी के जोश में मय्यित की वसीयत के बग़ैर ही मुश्तरक (सब के साझे वाले) तर्का में से मय्यित की नमाज़ों और रोज़ों का फ़िदया दे देते हैं, या उसकी तरफ़ से ज़कात या हज करा देते हैं, हालाँकि पीछे बार-बार मालूम हो चुका है कि अगर मय्यित ने वसीयत न की हो तो उसकी तरफ़ से जो वारिस फ़िदया या ज़कात या हज

अदा करना चाहे अपने मीरास के हिस्से से या अपने दूसरे माल से अदा करे जिसका बहुत सवाब है, लेकिन दूसरे वारिसों के हिस्से में से उनकी मर्ज़ी के बग़ैर देना जायज़ नहीं और नाबालिग़ या मजनूँ के हिस्से में से देना उनकी इजाज़त से भी जायज़ नहीं। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत जिल्द 1 पेज 239)

नमाज़ रोज़ों के फ़िदये की परवाह न करना

एक कोताही यह है कि कोई वसीयत किये बग़ैर मर जाये तो वारिस नमाज़ रोज़ों के फ़िदया वग़ैरह से कम दर्जे के मसारिफ़ (ख़र्च करने की जगहों) में बल्कि फ़ुज़ूल मसारिफ़ (ख़र्च करने की बेजा जगहों) में यहाँ तक कि इससे बढ़कर यह कि नाजायज़ रस्मों और बिद्अ़तों में मय्यित का तर्का उड़ाते हैं, मगर इस तरफ़ बहुत कम लोग तवज्जोह करते हैं कि और ख़र्चे बन्द करके अपने मीरास के हिस्से में से कुछ मय्यित की तरफ़ से फ़िदये में दे दें। या अगर मय्यित के ज़िम्मे ज़कात या हज वग़ैरह रह गये हैं तो वे अदा कर दें।

अगरचे वसीयत के बग़ैर अदा करने से बाज़ फ़ुक़हा (दीनी मसाईल के उलेमा) के नज़दीक मय्यित अपने फ़राईज़ व वाजिबात से बरी नहीं होता, लेकिन बाज़ फ़ुक़हा के नज़दीक बरी हो जाता है। और जिन फ़ुक़हा के नज़दीक नहीं होता उनके नज़दीक भी इस अदायगी का इस तरह से तो लाभदायक होना यक़ीनी है कि मय्यित को उसका सवाब ही पहुँच जायेगा। क्या अ़जब कि वह सवाब उसके फ़राईज़ व वाजिबात को छोड़ने के अ़ज़ाब को दूर कर दे। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत, रद्दे मोहतार के हवाले से)

फ़िदये की अदायगी के लिये "इस्क़ात का हीला"

आजकल बहुत से देहात में लोगों ने एक रस्म निकाली है जिसको "दौर" या "इस्क़ात का हीला" कहते हैं। जनाज़े के बाद कुछ लोग दायरा बनाकर बैठ जाते हैं और मय्यित के वारिस कुछ नक़द रुपये दायरे में लाते हैं। मस्जिद का इमाम जो दायरे में होता है वह लेकर अ़रबी में कुछ अलफ़ाज़ पढ़ता है, फिर वे रुपये दायरे के एक शख़्स को दे देता है। वह शख़्स दूसरे को और दूसरा तीसरे को देता है। इसी तरह हर एक अपने बराबर वाले को देता जाता है यहाँ तक कि रुपये फिर पहले शख़्स के पास

आ जाते हैं। इसी तरह तीन मर्तबा उस रक़म को फिराया जाता है, उसके बाद आधा इमाम को और आधा ग़रीबों को तक़सीम कर दिया जाता है और जाहिलों को बतलाया जाता है कि इस रस्म के ज़रिये मय्यित की तमाम उम्र के नमाज़-रोज़ों और ज़कात व हज और तमाम फ़राईज़ व वाजिबात से मुक्ति हो जाती है।

बेशक फ़ुक़हा के कलाम में "दौर" व "इस्क़ात" का एक ख़ास तरीक़ा ज़िक्र किया गया है लेकिन वह जिन शर्तों के साथ ज़िक्र किया गया है अ़वाम न उन शर्तों को जानते हैं न उनकी रियायत की जाती है, बल्कि छूट जाने वाले फ़राईज़ व वाजिबात से मुताल्लिक़ तमाम शरई अहकाम को नज़र-अन्दाज़ करके इस रस्म को तमाम फ़राईज़ व वाजिबात से मुक्ति का एक आसान नुस्ख़ा बना लिया गया है, जो चन्द पैसों में हासिल हो जाता है। फिर किसी को क्या ज़रूरत रही कि उम्र भर नमाज़ रोज़े की मेहनत उठाये।

ख़ूब समझ लेना चाहिये कि "इस्क़ात का हीला" बाज़ फ़ुक़हा-ए-किराम ने ऐसे शख़्स के लिये तजवीज़ फ़रमाया था जिसके कुछ नमाज़ रोज़े वग़ैरह इत्तिफ़ाक़न छूट गये हों, क़ज़ा करने का मौक़ा नहीं मिला और मौत के वक़्त वसीयत की लेकिन इतना तर्का नहीं छोड़ा कि जिसके एक तिहाई से तमाम छूटे हुए नमाज़ रोज़ों का फ़िदया अदा किया जा सके। यह नहीं कि उसके तर्के में माल मौजूद हो, उसको तो वारिस बाँट खायें और थोड़े से पैसे लेकर यह हीला-हवाला करके ख़ुदा और मख़्लूक़े ख़ुदा को फ़रेब दें। फ़िक़्ह की किताबों दुर्रे मुख़्तार व शामी वग़ैरह में इसका ख़ुलासा मौजूद है, साथ ही इस हीले की कुछ और शर्तें भी हैं जिनकी आजकल बिल्कुल रियायत नहीं की जाती। बस चन्द आदमी बैठकर एक रक़म की हेरा-फेरी का एक टोटका सा लेकर उठ जाते हैं और समझते हैं कि हमने मय्यित का हक़ अदा कर दिया और वह तमाम फ़राईज़ व वाजिबात से बरी हो गया, हालाँकि इस बेहूदा हरकत से मय्यित को न तो कोई सवाब पहुँचा न उसके फ़राईज़ व वाजिबात अदा हुए। करने वाले मुफ़्त में गुनाहगार हुए।

ग़र्ज़ यह कि इस हीले की इब्तिदाई बुनियाद मुम्किन है कि कुछ सही और शरई क़ायदों के मुताबिक़ हो, लेकिन जिस तरह का रिवाज और पाबन्दी आजकल चल गयी है वह बेशक नाजायज़ और बहुत सी ख़राबियों

पर मुश्तमिल है, जिनकी तफ़सील मुफ़्ती-ए-आज़म हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रहमतुल्लाहि अलैहि के रिसाला "हीला-ए-इस्क़ात" में देखी जा सकती है। (1)

किसी ख़ास शख़्स से नमाज़ पढ़वाने या ख़ास जगह दफ़न करने की वसीयत

बाज़ लोग किसी ख़ास शख़्स से नमाज़ पढ़वाने या किसी ख़ास मक़ाम पर दफ़न होने की वसीयत कर जाते हैं, फिर वारिस उसका इस क़द्र एहतिमाम करते हैं कि कभी-कभी शरई वाजिबात की भी ख़िलाफ़वर्ज़ी (उल्लंघन) हो जाती है। याद रखिये! शरीअ़त की रू से ऐसी वसीयतें लाज़िम नहीं होतीं। अगर कोई बात शरीअ़त के ख़िलाफ़ लाज़िम न आये तो उस पर अ़मल जायज़ है वरना जायज़ नहीं। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत 1-243)

मीरास तक़सीम न करना

एक संगीन कोताही जो बहुत कसरत से हो रही है यह है कि मय्यित की मीरास तक़सीम नहीं की जाती। जिसके क़ब्ज़े में जो माल है वही उसका मालिक बन बैठता है और तरह-तरह के हीले बहाने करके उसको अपने लिये हलाल बनाने की कोशिश करता है। पढ़े लिखे लोग भी इसमें गिरफ़्तार हैं और यह समझ लेते हैं कि हम सब एक ही तो हैं। आपस में एक दूसरे को तसर्रुफ़ की इजाज़त भी है इसलिये तक़सीम की क्या ज़रूरत है। और यह तावील वही शख़्स कर सकता है जो क़ाबिज़ है, क्योंकि इसी में उसका नफ़ा है।

दूसरे वारिस छोटे या मातहत होने की वजह से शर्मा-शर्मी से कुछ नहीं कहते मगर दिल से कोई इजाज़त नहीं देता। इसलिये उनकी यह ज़ाहिरी इजाज़त ख़ुशदिली से नहीं होती जिसकी बिना पर एक वारिस का तमाम तर्के पर क़ब्ज़ा कर लेना बिल्कुल हराम और नाजायज़ होता है, ख़ासकर उस सूरत में जबकि बाज़ वारिस नाबालिग़ या मजनूँ हों, या ग़ायब हों। ग़ायब की इजाज़त का कुछ इल्म नहीं और नाबालिग़ या मजनूँ अगर खुले तौर भी

(1) यह पूरा रिसाला अब "जवाहिरुल फ़िक़्ह" पहली जिल्द में छप गया है।

इजाज़त दे दे और खुशदिली से दे तब भी उसकी इजाज़त मोतबर नहीं। इसलिये क़ब्र के अ़ज़ाब और दोज़ख़ के अ़ज़ाब से डरें और ज़ुल्म व ग़ज़ब से बाज़ आयें और वारिसों को शरीअ़त के मुताबिक़ उनका पूरा-पूरा हक़ पहुँचायें। ('इस्लामे हक़ीक़ी' वअ़ज़ से लिया गया)

तर्के पर क़ब्ज़ा करके तिजारत करना

एक कोताही यह हो रही है कि मय्यित के इन्तिक़ाल के बाद मय्यित का कारोबार उसकी ज़िन्दगी से जिस वारिस के क़ब्ज़े में होता है वही बाद में भी उस पर क़ाबिज़ रहता है और उसको चलाता है, जिससे कारोबार बढ़ता है और तरक़्क़ी करता है और यह सब कुछ वारिसों की बिना इजाज़त होता है। कुछ वारिस नाबालिग़ हों तो उनकी इजाज़त का कुछ एतिबार नहीं, फिर बाद में एक अ़र्सा गुज़र जाने के बाद तक़सीम का ख़्याल आता है तो फिर असल और नफ़ा दोनों की तक़सीम में सख़्त झगड़ा होता है और शरई एतिबार से भी उस नफ़े में बड़ी उलझनें हैं। इसलिये पहले तक़सीम करें उसके बाद आपसी रज़ामन्दी से मुश्तरक (साझा तौर पर) या अलग अलग कारोबार करें। नाबालिग़ की तरफ़ से उनका वली शरीक होने या न होने का मामला कर सकता है।

लड़कियों को मीरास न देना ज़ुल्म है

एक कोताही यह है कि बाज़ लोग बहनों और लड़कियों को मीरास नहीं देते, उनको शादी के मौक़े पर तोहफ़े-तहाईफ़ देने से समझते हैं कि उनका जो हक़ था वह अदा हो गया। याद रखिये इस तरह तोहफ़े-तहाईफ़ देने से हरगिज़ मीरास से उनका हक़ ख़त्म नहीं होता, उनका मीरास का हिस्सा पूरा-पूरा अदा करना वाजिब है और उनको मीरास से मेहरूम करना हराम और ज़ुल्म है। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 241)

बहनों से मीरास का हिस्सा माफ़ करा लेना

यह ज़ुल्म तो अक्सर दीनदार और अहले इल्म घरानों में भी पाया जाता है कि बहनों से मीरास का हिस्सा माफ़ करा लेते हैं। लेकिन ख़ूब समझ लें और याद रखें कि रस्मी तौर पर बहनों के माफ़ करने से आप हरगिज़ अपनी ज़िम्मेदारी से बरी नहीं हो सकते, इसलिये कि बहनें जाहिलीयत के

ज़माने के रिवाज के मुताबिक़ अपना मीरास का हिस्सा तलब करने को बहुत ऐब की बात समझती हैं और भाईयों की नाराज़गी और लोगों के ताना देने व बुरा-भला कहने से डरती हैं। काफ़िराना रिवाज ने ज़ुल्मे अ़ज़ीम के साथ-साथ उन मज़लूम औ़रतों की ज़बान भी बन्द कर रखी है।

अगर ऐसा ज़ालिम दुनियावी अ़ज़ाब से बच भी गया तो हिसाब व किताब का एक मुतैयन दिन यक़ीनन आने वाला है, जिसके बारे में हक़ तआ़ला का इरशाद है:

وَلَعَذَابُ الْاٰخِرَةِ اَكْبَرُ

कि यक़ीनन आख़िरत का अ़ज़ाब (दुनियावी अ़ज़ाब से) बहुत बड़ा है।

ग़र्ज़े कि पहले तो बहनों का दिले न चाहते हुए सिर्फ़ ज़बान से अपना हिस्सा माफ़ करना ही शरई तौर पर मोतबर नहीं। दूसरे अगर कहीं कोई औ़रत ख़ुशदिली के साथ माफ़ कर दे तब भी यह माफ़ कराना इस्लामी उसूल के ख़िलाफ़ है। क्योंकि ख़िलाफ़े शरीअ़त हिन्दुओं की ज़ालिमाना रस्म को रिवाज देना और उसकी ताईद भी है। इसलिये इससे बचना चाहिये।

बाज़ लोग कहते हैं कि वक़्त-वक़्त पर ईद वग़ैरह के मौक़ों पर बहनों को जो हदिये देने का दस्तूर है वे उसके बदले में अपना मीरास का हिस्सा भाईयों को देती हैं, जो एक तरह का सौदा है। लेकिन यह ख़्याल ग़लत है, क्योंकि इस पर बहनों की रज़ामन्दी नहीं पाई जाती, बल्कि वे रिवाज से मजबूर हैं। तथा मुख़्तलिफ़ मौक़ों में दिये जाने वाले हदियों और तोहफ़ों की मिक़दार (मात्रा) जिन्स और मालियत से मालूम नहीं इसलिये यह सौदा यानी ख़रीद व बेच सही नहीं। ख़ुलासा यह कि हराम को हलाल बनाने वाले और बेज़ुबान मज़लूम बहनों का मीरास का हिस्सा हज़म करने के लिये जो चालें भी चली जाती हैं वे शरीअ़त की रू से मरदूद और बातिल हैं। सलामती इसी में है कि साफ़ दिल से उनका पूरा-पूरा हिस्सा उनके क़ब्ज़े में दे दिया जाये।

बेवा को दूसरा निकाह करने पर मीरास से मेहरूम करना

बाज़ जगह यह दस्तूर है कि अगर बेवा दूसरा निकाह कर ले तो उसे

मरहूम शौहर की मीरास से मेहरूम कर देते हैं, इसलिये वह बेचारी मीरास के हिस्से को महफ़ूज़ रखने की ख़ातिर दूसरा निकाह नहीं करती और उम्र भर बेवगी की मुसीबतें बरदाश्त करने के साथ मरहूम शौहर के अ़ज़ीज़ व रिश्तेदारों के रात-दिन तरह-तरह के मज़ालिम का निशाना बनती रहती है। याद रखिये! यह भी सरासर ज़ुल्म और हराम है। दूसरा निकाह करने के बावजूद शरीअ़त की रू से बेवा बदस्तूर अपने मीरास के हिस्से की मालिक रहती है।

बेवा को दूसरे क़बीले से होने की बिना पर मेहरूम करना

सिन्ध में एक रिवाज यह भी है कि जो औ़रत शौहर के क़बीले से न हो उसे शौहर के माल से मीरास का हिस्सा नहीं देते। यह भी बहुत बड़ा ज़ुल्म और जहालत है। बेवा का हिस्सा क़ुरआने करीम ने बहरहाल फ़र्ज़ किया है, चाहे वह शौहर के ख़ानदान से हो या किसी दूसरे ख़ानदान से।

बेवा का नाहक़ तमाम तर्के पर क़ब्ज़ा करना

एक कोताही यह है कि बाज़ औ़रतें मरहूम के इन्तिक़ाल के बाद अपने आपको तमाम मन्क़ूला (चल) माल का मालिक समझती हैं, यह भी ज़ुल्म है। जो चीज़ शौहर ने उसको अपनी ज़िन्दगी में मौत की बीमारी से पहले हिबा करके क़ब्ज़े में दे दी वह बेशक उसकी है, बाक़ी सब तर्का मुश्तरक है। शरई क़ायदों के मुताबिक़ सब वारिसों पर तक़सीम करना वाजिब है।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 241)

तर्के में से चोरी करना

एक कोताही यह है कि जो चीज़ जिस वारिस के क़ब्ज़े में आ जाती है वह उसको छुपा लेता है। याद रखिये क़ियामत के दिन सब उगलना पड़ेगा।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 241)

दुल्हन मैके या ससुराल में मर जाये तो उसके दहेज का हुक्म

एक कोताही यह है कि अगर दुल्हन अपने मैके में मर जाये तो उसके तमाम साज़ व सामान और दहेज वग़ैरह पर ससुराल के लोग क़ब्ज़ा कर लेते हैं। और अगर ससुराल में मर जाये तो शौहर और उसके सरपरस्त क़ब्ज़ा कर लेते हैं। यह भी सरासर नाजायज़ है आख़िरत में एक-एक पाई का हिसाब देना होगा। बहरहाल दुल्हन के दहेज और तमाम तर्के में दुल्हन के तमाम वारिसों का हिस्सा है, जिनमें शौहर भी दाख़िल है और दुल्हन के माँ-बाप वग़ैरह भी। अगरचे दुल्हन का इन्तिक़ाल कहीं भी हुआ हो।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत जिल्द 1 पेज 241)

मुतवल्ली की हैसियत से तर्के पर क़ब्ज़ा करना

बाज़ मर्तबा कोई वारिस अपने आपको सबसे बड़ा और मुतवल्ली समझ कर पूरे तर्के (छोड़े हुए माल व जायदाद) पर जब्रन क़ाबिज़ और मुतसर्रिफ़ रहता है और उसमें मन मानी कार्रवाई करता रहता है। दूसरे वारिसों के मुतालबे पर भी तक़सीम नहीं करता और यतीमों के माल में भी तसर्रुफ़ करने से नहीं डरता।

فَمَآ اَصْبَرَهُمْ عَلَى النَّارِ.

(ये लोग जहन्नम की आग पर कितने साबिर और जुर्रत करने वाले हैं) क़ियामत के दिन एक-एक पाई का हिसाब देना होगा और जो आग अपने पेट में भरी है उसका अ़ज़ाब भुगतना होगा।

मरने से पहले बन्दों के हुक़ूक़ की माफ़ी-तलाफ़ी ज़रूरी है

बन्दों के हुक़ूक़ का मामला निहायत संगीन है। क्योंकि वे हक़ वाले की माफ़ी के बग़ैर माफ़ नहीं होते। एक हदीस में रसूले अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम इरशाद फ़रमाते हैं कि:

"जिसके ज़िम्मे किसी (मुसलमान या इनसान) भाई का कुछ हक़ हो उसकी आबरू के मुताल्लिक़ या और किसी क़िस्म का वह आज उससे माफ़ करा ले, ऐसे वक़्त (हिसाब के दिन) से पहले कि जब उसके पास न दीनार होगा न दिर्हम"। (मिश्कात शरीफ़ ज़ुल्म का बाब)

बन्दों के हुक़ूक़ दो क़िस्म के होते हैं। एक माली, दूसरे ग़ैर-माली।

माली हुक़ूक़ के मुताल्लिक़ ज़रूरी मसाईल पीछे इसी बाब में तर्का, क़र्ज़ों, वसीयत और मीरास के बयान में आ चुके हैं, उनका ग़ौर से मुताला कर लिया जाये। और ग़ैर-माली हुक़ूक़ का मुख़्तसर बयान यह है:

बन्दों के ग़ैर-माली हुक़ूक़

रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में अज़ीज़ों, रिश्तेदारों, दोस्त व अहबाब के ताल्लुक़ात में और लेन-देने के मामलात में अक्सर व बेश्तर (यानी बहुत सी बार) ऐसी बातें हो जाती हैं जिनसे वाजिब हुक़ूक़ पर असर पड़ता है और जिसका भी हक़ ज़ाया हो उसको तकलीफ़ होती है। बाज़ बातों में बदगुमानी की वजह से रिश्तेदारों से ताल्लुक़ात तोड़ लिये जाते हैं। कहीं बेमौक़ा गुस्से पर जज़्बात बेक़ाबू हो जाते हैं और दूसरे फ़रीक़ को जान या आबरू का सख़्त नुक़सान पहुँच जाता है। कहीं हसद और कीना का जुर्म हो जाता है या ग़ीबत और झूठ या धोखा-फ़रेब से दूसरे शख़्स को आबरू या माल का नुक़सान हो जाने से तकलीफ़ पहुँच जाती है। इसी तरह और भी बहुत सी बातें हैं जिनसे दूसरे शख़्स की हक़-तल्फ़ी होती है और उसके लिये तकलीफ़ और दिल के दुखने का सबब होती हैं। ये सब गुनाहे कबीरा (बड़े गुनाह) हैं। क़ुरआन व सुन्नत में इनकी सख़्त मनाही आई है और इन पर आख़िरत के सख़्त अज़ाब की ख़बर दी गयी है। इसलिये लाज़िमी और ज़रूरी है कि अपनी ज़िन्दगी का जायज़ा लेकर अपनी मौत से पहले उनका तदारुक व तलाफ़ी की जाये और साहिबे मामला से माफ़ी माँगी जाये और अल्लाह तआ़ला से भी उन गुनाहों के लिये दिल की शर्मिन्दगी के साथ तौबा व इस्तिग़फ़ार की जाये। अगर किसी वजह से हक़दारों से माफ़ कराना मुम्किन नहीं रहा, जैसे वे लोग मर चुके हों तो उनके लिये हमेशा मग़फ़िरत की दुआ़ करता रहे और सवाब भी पहुँचाया करे, हो सकता है कि अल्लाह तआ़ला क़ियामत में उन लोगों को राज़ी करके माफ़ करा दे। (बहिश्ती ज़ेवर)

इसके विपरीत यही सब बातें दूसरों की तरफ़ से हमारे साथ भी वाक़े होती हैं। इसलिये नफ़्स की शराफ़त इसी में है और अक़्ल का तक़ाज़ा और शरीअ़त का मुतालबा यही है कि हमें भी अपने ताल्लुक़ात वालों को खुले दिल माफ़ कर देना चाहिये। इसमें अपने नफ़्स को इत्मीनान होता है और दूसरे शख़्स को आख़िरत की पकड़ से बचाने का ज़रिया भी है और यह बात अल्लाह के नज़दीक बहुत महबूब और पसन्दीदा है।

क़ुरआन व हदीस में किसी मुसलमान भाई की माज़िरत (उज़्र और माफ़ी) क़बूल कर लेने और उसे माफ़ कर देने के बड़े फ़ज़ाईल आये हैं। बल्कि सरकारे दो आ़लम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है कि "जो शख़्स अपने मुसलमान भाई से माज़िरत करे और वह उसको क़बूल न करे, उस पर ऐसा गुनाह होगा जैसा ज़ुल्मन् टैक्स वसूल करने वाले पर होता है"। (इब्ने माजा)

एक दूसरी हदीस में है:

"जिस शख़्स से उसका भाई माज़िरत करे और वह उसको क़बूल न करे वह मेरे पास हौज़े कौसर पर नहीं आने पायेगा।" (तरग़ीब व तरहीब)

खुलासा यह है कि मरने से पहले हर शख़्स को अल्लाह के नज़दीक और मख़्लूक़ के नज़दीक अपने ईमानी तक़ाज़े के सबब अपने ज़मीर को बिल्कुल पाक व साफ़ कर लेना चाहिये।

यह ज़रूरी नहीं है कि जिन लोगों से माफ़ी व तलाफ़ी की जाए उनसे ताल्लुक़ात, मुलाक़ात और दोस्ती भी रखी जाये, क्योंकि ऐसा करना बाज़ वक़्त मुश्किल और बाज़ वक़्त मस्लेहत के ख़िलाफ़ होता है, इसलिये माफ़ करना या माफ़ी चाहना इसलिये नहीं है कि आईन्दा दोस्ती और बेतकल्लुफ़ी भी क़ायम रखी जाये, बल्कि शरई हुक़ूक़ से खुद को बरी करना मक़सूद है।

रिश्तेदारों के साथ अच्छे सुलूक के लिये हदीस शरीफ़ में है कि "वे रिश्ता तोड़ें मगर तुम रिश्ता जोड़ो" यानी मौक़े पर उनके रंज व परेशानी और ग़म में या और ज़िन्दगी की मुश्किलात में शरीक रहो। अपनी तरफ़ से उनके लिये हर तरह से इमदाद करो और अच्छा सुलूक करते रहो। उसमें अल्लाह तआ़ला की खुशनूदी और रज़ा को सामने रखना चाहिये।

आठवाँ बाब

बिद्अ़तें और ग़लत रस्में

मौत, मय्यित और मय्यित के पीछे रह जाने वालों के मुताल्लिक़ जो फ़ितरी दस्तूरे अ़मल इस्लाम ने दिया है वह हदीस और फ़िक़ा की मुस्तनद व मोतबर किताबों के हवाले से आपके सामने आ चुका है। यही वह मोतदिल और संतुलित तरीक़े कार है जो क़ुरआन व सुन्नत और फ़िक़ा में मुसलमानों के लिये मुक़र्रर किया गया है।

आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की मुबारक ज़िन्दगी में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के कितने ही जिगर के टुकड़े और अ़ज़ीज़ व क़रीबी अफ़राद फ़ौत हुए, और कितने ही जाँनिसार सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम जुदाई का दाग़ दे गये। कोई लड़ाई के मैदान में शहीद हुआ, किसी ने बीमारी के बिस्तर पर जान दी, कोई लावारिस रुख़्सत हुआ, किसी ने बाल-बच्चों और रिश्तेदारों को ग़मगीन छोड़ा, किसी का तर्का (छोड़ा हुआ माल व जायदाद) कफ़न-दफ़न वग़ैरह के लिये भी काफ़ी न हुआ, और किसी का माल व दौलत उसके वारिसों में तक़सीम हुआ। इन तरह-तरह के हालात में रहमतुल-लिल्आ़लमीन सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ज़ाते अक़्दस ही उन सबकी रहबर व रहनुमा थी। जिस तरह का वाक़िआ़ पेश आया उसके मुनासिब शरई अहकाम व आदाब उसी ज़ाते अक़्दस ने बताये और सिखलाये। ज़बानी तालीम भी दी और अ़मली तरबियत भी। आप अपने सहाबा को जहाँ ईमान और ज़ुहुद व इबादत से लेकर हुकूमत चलाने तक के क़ायदे और क़ानून सिखला रहे थे वहीं शादी और ग़मी के अहकाम व आदाब की भी तालीम व तरबियत दे रहे थे। क्योंकि आपके भेजे जाने का मक़सद ही यही था कि उम्मत के लिये ज़िन्दगी का हर गोशा आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीमात व हिदायात से रोशन हो जाये।

चुनाँचे आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम उनकी हर शादी व ग़मी में

शरीक रहे। उनकी इयादत (बीमारी व परेशानी में मिज़ाज-पुर्सी) भी फ़रमाई और कफ़न-दफ़न वग़ैरह भी। नमाज़े जनाज़ा और दफ़न के इन्तिज़ामात भी फ़रमाये, और ताज़ियत व ईसाले सवाब भी। क़ब्रों की ज़ियारत भी फ़रमाई और उनके छोड़े हुए माल व जायदाद की तक़सीम, क़र्ज़ों की अदायगी, वसीयतों पर अ़मल और मीरास की तक़सीम भी, मय्यित के घर वालों के साथ ग़मगुसारी, बेवाओं की ख़बरगीरी और यतीमों की सरपरस्ती। ग़र्ज़ मौत, मय्यित और मय्यित के घर वालों से मुताल्लिक़ एक मुकम्मल ज़ाबता और क़ानून अपने क़ौलों व अफ़आ़ल के ज़रिये उम्मत को दिये गये। कोई पहलू ऐसा नहीं छोड़ा जो नामुकम्मल रह गया हो, या जो हमें किसी और क़ौम से लेने या ख़ुद ईजाद करने की ज़रूरत हो।

इस पाकीज़ा दस्तूरुल-अ़मल (यानी इस्लामी क़ानून) में इनसानी ज़रूरतों और फ़ितरी जज़्बात की रियायत क़दम-क़दम पर नुमायाँ है। इसमें ग़मज़दों के लिये तसल्ली व ग़मगुसारी का भी पूरा सामान है और अ़दल व इन्साफ़ का भी निहायत मोतदिल और जामे इन्तिज़ाम। मय्यित का एहतिराम का भी हर जगह ध्यान रखा गया है और उसका आख़िरत का राहत व आराम भी। और काम करने का तरीक़ा ऐसा रखा गया है कि दुनिया की कोई तहज़ीब आज तक उससे ज़्यादा आसान, पाकीज़ा, सम्मानित और सादा तरीक़े कार तज्वीज़ नहीं कर सकी।

इस दस्तूरुल-अ़मल (काम करने के तरीक़े और क़ानून) को आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सहाबा-ए-किराम ने सीखकर ज़िन्दगी भर अपनी ज़िन्दगी के हर शोबे (विभाग) में इस पर अ़मल किया, और इसकी ज़बानी व अ़मली तालीम अपनी नस्लों को कर गये। मुहद्दिसीने किराम ने इसको बिल्कुल उसी तरह अपनी किताबों में महफ़ूज़ किया, दीन के इमामों ने इसकी तशरीह व तौज़ीह (व्याख्या) फ़रमाई और बाद के फ़ुक़हा-ए-किराम (मसाईल बयान करने वाले उलेमा) ने अपनी किताबों के ज़रिये हम तक इसे बिल्कुल उसी हालत में पहुँचा दिया। उन्हीं हज़रात की बेमिसाल कोशिशों की बदौलत आज यह हमारे सामने मुकम्मल व मुस्तनद शक्ल में मौजूद है।

लेकिन एक नज़र इस दस्तूरुल-अ़मल पर डालने के बाद जब दूसरी नज़र उन बिद्अ़तों और रस्मों व रिवाजों पर डाली जाती है जो मौत, मय्यित और मय्यित के घर वालों के मुताल्लिक़ हमारे समाज में आज वबा की तरह

फैल चुकी हैं, तो हैरत व अफ़सोस के सिवा कुछ हाथ नहीं आता। यह बात हैरतनाक और अफ़सोस से भरी नहीं तो फिर क्या है कि जिस उम्मत के पास ऐसा क़ीमती और बेनज़ीर दस्तूरुल-अ़मल (क़ानून) मौजूद है वह उसे छोड़कर अपने खुद घड़े हुए या दूसरे मज़ाहिब की पैरवी में बेहूदा और बिद्अ़तों की जकड़-बन्द, कमी ज़्यादती और तरह-तरह की ख़ुराफ़ात में गिरफ़्तार है।

हमारे आमाल की नहूसत के नतीजे में यूँ तो हमारे हर मज़हबी शोबे में बिद्अ़तों और खुद गढ़ी हुई रस्मों का रिवाज बढ़ता जा रहा है लेकिन उनकी जितनी भरमार मौत और मय्यित के मामले में है शायद ही उतनी किसी और शोबे में हो। जिस घर में मौत हो जाती है महीनों बल्कि बरसों तक भी ये ख़ुराफ़ात उस घर का पीछा नहीं छोड़तीं। कहीं हिन्दुओं की रस्में इख़्तियार कर ली गयी हैं, कहीं पारसियों की, कहीं अंग्रेज़ी रस्म व रिवाज को शामिल कर लिया गया है, कहीं खुद गढ़ी हुई बिद्अ़तों को, और उनकी ऐसी पाबन्दी की जाती है जैसे ये उनपर फ़र्ज़ या वाजिब कर दी गयी हों। उन जाहिलाना रस्मों और बिद्अ़तों में कितना वक़्त, कितनी मेहनत और कितनी दौलत बरबाद की जाती है। अगर कोई उनके आँकड़े जमा करे तो सर पीटकर रह जाये। कभी-कभी उन रस्मों में ख़र्चे मय्यित के तर्का (छोड़े हुए माल) से किये जाते हैं जो यतीम वारिसों पर खुला हुआ ज़ुल्म है।

ग़र्ज़ कि रहमतुल-लिल्आ़लमीन सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के लाये हुए दस्तूरुल-अ़मल (क़ानून व शरीअ़त) और ज़िन्दगी के नमूने को छोड़कर कहीं दूसरी क़ौमों की मुश्रिकाना रस्मों में मुब्तला हैं, कहीं खुद अपनी बनाई हुई बिद्अ़तों की भूल-भुलय्यों में, हालाँकि क़ुरआन करीम अपने खुले और वाज़ेह अन्दाज़ में अब भी यह ऐलान कर रहा है कि:

لَقَدْ كَانَ لَكُمْ فِيْ رَسُوْلِ اللّٰهِ اُسْوَةٌ حَسَنَةٌ. (سورة احزاب: ٢١)

तर्जुमाः तुम्हारे लिये रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का उम्दा नमूना मौजूद है।

हम पीछे भी कई जगहों पर ग़लत रस्मों और बिद्अ़तों की निशानदेही करते आये हैं, लेकिन ज़रूरत इसकी है कि यहाँ बिद्अ़त के मौज़ू (विषय) पर किसी क़द्र तफ़सील से कलाम किया जाये, और उन बिद्अ़तों की ख़ास

तौर पर निशानदेही की जाये जो ज़्यादा राईज हैं। क्योंकि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है किः

اذا حدث فی امتی البدع شُتِم اصحابی فلیظھر العالم علمہ فمن لم یفعل فعلیہ لعنۃ اللہ والملئکۃ والناس اجمعین. (کتاب الاعتصام للشاطبی)

तर्जुमाः जब मेरी उम्मत में बिद्अ़तें पैदा हो जायें और मेरे सहाबा को बुरा कहा जाये तो उस वक़्त के आ़लिम पर लाज़िम है कि अपना इल्म दूसरों तक पहुँचाये और जो ऐसा न करेगा तो उस पर लानत है अल्लाह की, फ़रिश्तों की और सब इनसानों की।

(सुन्नत व बिद्अ़त पेजः 26 , किताबुल-एतिसाम के हवाले से)

इससे पहले कि उन बिद्अ़तों की एक-एक करके निशानदेही की जाये ज़रूरी मालूम होता है कि बिद्अ़त की हक़ीक़त को उसूली तौर पर वाज़ेह कर दिया जाये, क्योंकि बहुत सी बिद्अ़तों में लोग सिर्फ़ इस वजह से मुब्तला (लिप्त) हैं कि बज़ाहिर वे "नेकी" मालूम होती हैं और उनको सवाब का सबब समझ कर किया जाता है। यह बात दीन की तालीम से नावाक़िफ़ी है।

बिद्अ़त क्या है?

असल लुग़त में "बिद्अ़त" हर नई चीज़ को कहते हैं, और शरीअ़त की इस्तिलाह में इबादत के हर ऐसे नए तरीक़े के ईजाद को कहते हैं जो सवाब की नीयत से रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के बाद इख़्तियार किया गया हो और आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा-ए-किराम के मुबारक ज़माने में उसका जज़्बा और तक़ाज़ा व सबब मौजूद होने के बावजूद न क़ौल से साबित हो न अ़मलन, न वाज़ेह तौर पर न इशारे में।

(सुन्नत व बिद्अ़त पेज 11, किताबुल-एतिसाम के हवाले से)

इस तारीफ़ (परिभाषा) से मालूम हुआ कि दुनियावी ज़रूरतों के लिये जो नये-नये आलात (यंत्र व उपकरण) और तरीक़े रोज़मर्रा ईजाद होते रहते हैं उनका शरई बिद्अ़त से कोई ताल्लुक़ नहीं, क्योंकि वे बतौर इबादत और सवाब की नीयत से नहीं किये जाते। ये सब जायज़ और मुबाह हैं, बशर्ते

कि वे किसी शरई हुक्म के मुख़ालिफ़ न हों, तथा यह भी मालूम हो गया कि जो इबादत आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम या सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से क़ौल से साबित हो या फ़ेल से, वाज़ेह तौर पर या इशारे के तौर पर, वह भी बिद्अ़त नहीं हो सकती।

साथ ही यह भी मालूम हो गया कि जिस काम की ज़रूरत नबी-ए-पाक के ज़माने में मौजूद न थी बाद में किसी दीनी मक़सद को हासिल करने के लिये पैदा हो गयी वह भी बिद्अ़त में दाख़िल नहीं, जैसे राईज इस्लामी मदरसे और तालीमी व तब्लीग़ी अन्जुमनें और दीनी प्रकाशन व प्रसारण के इदारे और क़ुरआन व हदीस समझने के लिये 'सर्फ़' व 'नह्व' और अदबे अ़रबी और फ़साहत व बलाग़त के फ़ुनून या मुख़ालिफ़े इस्लाम फ़िर्क़ों का रद्द करने के लिये मन्तिक़ और फ़ल्सफ़ा की किताबें या जिहाद के लिये नए हथियार और नवीनतम जंग के तरीक़े की तालीम वग़ैरह, कि ये सब चीज़ें एक हैसियत से इबादत भी हैं और आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के ज़माने में मौजूद न थीं मगर फिर भी इनको बिद्अ़त इसलिये नहीं कह सकते कि इनकी ज़रूरत उस मुबारक ज़माने में मौजूद न थी, बाद में जैसी-जैसी ज़रूरत पैदा होती गयी उलमा-ए-उम्मत ने उसको पूरा करने के लिये मुनासिब तदबीरें और सूरतें इस्लामी तालीमात और हदों के अन्दर इख़्तियार कर लीं।

इसको यूँ भी कहा जा सकता है कि ये सब चीज़ें न अपनी ज़ात में इबादत हैं, न कोई उनको इस ख़्याल से करता है कि उनमें ज़्यादा सवाब मिलेगा। बल्कि वे चीज़ें इबादत का ज़रिया होने की हैसियत से इबादत कहलाती हैं। यानी किसी दीनी हुक्म के मक़सद को पूरा करने के लिये वक़्त और जगह की ज़रूरत से कोई नई सूरत इख़्तियार कर लेना मना नहीं। (सुन्नत व बिद्अ़त पेज 13)

इस तफ़सील से यह भी मालूम हो गया कि जिन कामों की ज़रूरत नबी-ए-पाक के मुबारक ज़माने में और उसके बाद के ज़माने में बराबर है उनमें कोई ऐसा तरीक़ा ईजाद करना जो आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से साबित नहीं उसको बिद्अ़त कहा जायेगा और यह क़ुरआन व हदीस की रू से मना और नाजायज़ होगा।

जैसे दुरूद व सलाम के वक़्त खड़े होकर पढ़ने की पाबन्दी। फ़क़ीरों को खाना खिलाकर ईसाले सवाब करने (सवाब भेजने) के लिये खाना सामने रखकर मुख़्तलिफ़ सूरतें पढ़ने की पाबन्दी। जमाअ़त की नमाज़ के बाद पूरी जमाअ़त के साथ कई-कई मर्तबा दुआ़ माँगने की पाबन्दी। ईसाले सवाब के लिये तीजा, चेहलुम वग़ैरह की पाबन्दी। रजब व शाबान वग़ैरह की बरकत वाली रातों में अपनी तरफ़ से ईजाद की हुई नमाज़ें और उनके लिये चिराग़ाँ वग़ैरह और फिर उन खुद ईजाद की हुई चीज़ों को फ़र्ज़ और वाजिब की तरह समझना, उनमें शरीक न होने वालों पर मलामत और लान-तान करना वग़ैरह। (सुन्नत व बिद्अ़त पेज 14)

ज़ाहिर है कि दुरूद व सलाम, सदक़ा व ख़ैरात, मुर्दों को सवाब पहुँचाना, बरकत वाली रातों में नमाज़ व इबादत, नमाज़ों के बाद दुआ़, ये सब चीज़ें इबादत हैं, इनकी ज़रूरत जैसे आज है ऐसे ही सहाबा के ज़माने में भी थी। इनके ज़रिये आख़िरत के सवाब और अल्लाह की रज़ा हासिल करने का ज़ौक़ व शौक़ जैसे आज किसी नेक बन्दे को हो सकता है, रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और आपके सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को उन सबसे ज़ायद था। कौन दावा कर सकता है कि उसको सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से ज़ायद इबादत का ज़ौक़ और अल्लाह की रज़ा व ख़ुशनूदी का शौक़ हासिल है? हज़रत हुज़ैफ़ा बिन यमान रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं किः

كل عبادة لم يتعبد ها اصحاب رسول الله صلى الله عليه وسلم فلا تعبدوها فان الاول لم يدع للاخر مقالا فاتقوا الله يا معشر المسلمين وخذوا بطريق من كان قبلكم.

तर्जुमाः जो इबादत सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने नहीं की वह इबादत न करो, क्योंकि पहले लोगों ने पिछलों के लिये कोई कसर नहीं छोड़ी जिसको ये पूरा करें। ऐ मुसलमानो! खुदा तआ़ला से डरो और पहले लोगों के तरीक़े को इख़्तियार करो।

और इसी मज़मून की रिवायत हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु से भी नक़ल की गयी है।

(सून्नत व बिद्अ़त पेज 14, अल-एतिसाम के हवाले से)

बिद्अ़त के नाजायज़ व मना होने के कारण

ग़ौर करना चाहिये कि जब ये सब काम सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के ज़माने में भी इबादत की हैसियत से जारी थे तो उनके लिये ऐसे तरीक़े इख़्तियार करना जो रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने इख़्तियार नहीं किये आख़िर उनका मक़सद क्या है? क्या यह मक़सद है कि उन इबादतों के ये नये तरीक़े अल्लाह की पनाह! आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को मालूम न थे, आज इन दावेदारों पर यह चीज़ खुली है इसलिये ये कर रहे हैं?

दीन में कोई बिद्अ़त निकालना रसूलुल्लाह सल्ल. पर ख़ियानत की तोहमत लगाना है

और अगर कहा जाये कि उनको मालूम थे मगर लोगों को नहीं बतलाया तो क्या यह अल्लाह अपनी पनाह में रखे, उन हज़रात पर दीन में ख़ियानत और तब्लीग़े रिसालत के फ़राईज़ में कोताही का इल्ज़ाम नहीं है? इसी लिये हज़रत इमाम मालिक रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया है कि जो शख़्स कोई बिद्अ़त ईजाद करता है वह गोया यह दावा करता है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने ख़ुदा की पनाह! रिसालत में ख़ियानत की, कि पूरी बात नहीं बतलाई। (सुन्नत व बिद्अ़त पेज 15)

बिद्अ़त निकालना यह दावा करना है कि दीन नबी-ए-पाक के ज़माने में मुकम्मल नहीं हुआ था

एक तरफ़ तो क़ुरआने करीम का यह ऐलान है किः

اَلْيَوْمَ اَكْمَلْتُ لَكُمْ دِيْنَكُمْ

तर्जुमाः मैंने आज तुम पर तुम्हारा दीन मुकम्मल कर दिया।

दूसरी तरफ़ इबादतों के नये-नये तरीक़े निकाल कर अ़मलन् यह दावा कि इस्लामी शरीअ़त की तकमील आज हो रही है, क्या कोई मुसलमान

जान बूझकर इसको कुबूल कर सकता है?

इसलिये यकीन कीजिये कि इबादतों का जो तरीका रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम और सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम ने, इख़्तियार नहीं किया वह देखने में कितना ही लुभावना और बेहतर नज़र आये वह अल्लाह तआला और उसके रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के नज़दीक अच्छा नहीं। इसी को हज़रत इमाम मालिक रहमतुल्लाहि अलैहि ने फ़रमाया कि "जो काम उस ज़माने में दीन नहीं था उसे आज भी दीन नहीं कहा जा सकता है।

आँ हज़रत सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम और सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम ने इन तरीकों को खुदा की पनाह! न तो नावाकफ़ियत की बिना पर छोड़ा था न सुस्ती या ग़फ़लत की बिना पर, बल्कि इनको ग़लत और नुकसानदेह समझ कर छोड़ा था।

आज अगर कोई शख़्स मग़रिब की नमाज़ तीन के बजाय चार रक्अत और सुबह की दो के बजाय तीन या चार पढ़ने लगे, या रोज़ा मग़रिब तक रखने के बजाय इशा के बाद तक रखे तो हर समझदार मुसलमान उसको बुरा और ग़लत और नाजायज़ कहेगा। हालाँकि उस ग़रीब ने बज़ाहिर कोई गुनाह का काम नहीं किया, कुछ तस्बीहात ज़्यादा पढ़ीं, कुछ अल्लाह का नाम ज़्यादा लिया, फिर उसको सबका इत्तिफ़ाक करके बुरा और नाजायज़ समझना क्या सिर्फ़ इसी लिए नहीं कि उसने आँ हज़रत सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के बतलाये हुए और सिखाये हुए इबादत के तरीके पर ज़्यादती करके इबादत की सूरत बदल डाली, और एक तरह से इसका दावा किया कि शरीअत को आँ हज़रत सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने मुकम्मल नहीं किया था, उसने किया है। या खुदा अपनी पनाह में रखे, आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने अमानत की अदायगी में कोताही और ख़ियानत बरती है कि इबादत के ये नये और मुफ़ीद तरीके लोगों को नहीं बतलाये।

अब ग़ौर कीजिये कि नमाज़ की रक्अतें तीन के बजाय चार पढ़ने में और नमाज़ों, दुआओं, दुरूद व सलाम के साथ ऐसी शर्तें और तरीके इज़ाफ़ा करने में क्या फ़र्क है जो आँ हज़रत सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम और सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम से नकल नहीं की गईं? हकीकत यह है कि इबादतों में अपनी तरफ़ से कैदों और शर्तों का इज़ाफ़ा शरीअते

मुहम्मदिया की तरमीम और उसमें कमी-बेशी करना है, इसलिये उसको सख़्ती के साथ रोका गया है।

बिद्अ़त दीन में कमी-ज़्यादती करने का रास्ता है

बिद्अ़त की सबसे बड़ी ख़राबी यह है कि अगर इबादत में अपनी तरफ़ से क़ैदें, शर्तें और नये-नये तरीक़े ईजाद करने की इजाज़त दे दी जाये तो दीन को बदल दिया जायेगा। कुछ समय के बाद यह भी पता न लगेगा कि असल इबादत जो रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बतलाई थी क्या और कैसी थी? पिछली उम्मतों में दीन को बदल डालने और उसमें कमी-बेशी करने की सबसे बड़ी वजह यह हुई है कि उन्होंने अपनी किताब और अपने पैग़म्बर की बतलाई हुई इबादतों में अपनी तरफ़ से इबादतों के नये-नये तरीक़े निकाल लिये और उनकी रस्म चल पड़ी। कुछ अ़र्सा के बाद असल दीन और नई ईजाद हुई रस्मों में कोई फ़र्क़ न रहा।

खुलासा-ए-कलाम यह कि जो चीज़ शरीअ़त की इस्तिलाह में बिद्अ़त है वह बिल्कुल मना व नाजायज़ है, लेकिन बिद्अ़तों में फिर कुछ दर्जे हैं, बाज़ सख़्त हराम शिर्क के क़रीब हैं, बाज़ मक्रूहे तहरीमी, बाज़ मक्रूहे तन्ज़ीही। (सुन्नत व बिद्अ़त पेज 14-21)

क़ुरआन व हदीस और सहाबा व ताबिईन और दीन के इमामों के आसार (अक़्वाल व रिवायात और हालात) में बिद्अ़तों की ख़राबी और उनसे बचने की ताकीद पर बेशुमार आयतें और रिवायतें हैं, उनमें से बाज़ इस जगह नक़ल की जाती हैं।

बिद्अ़त की निंदा और बुराई क़ुरआन व हदीस में

अ़ल्लामा शातबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने "किताबुल-एतिसाम" में क़ुरआनी आयतें काफ़ी तादाद में इस मौज़ू (विषय) पर जमा फ़रमाई हैं, उनमें से दो आयतें इस जगह लिखी जाती हैं।

(١) وَلَا تَكُوْنُوْا مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ، مِنَ الَّذِيْنَ فَرَّقُوْا دِيْنَهُمْ وَكَانُوْا شِيَعًا كُلُّ حِزْبٍۭ بِمَا لَدَيْهِمْ فَرِحُوْنَ. (الروم: ٣٢)

तर्जुमाः मत हो मुश्रिकों में से जिन्होंने टुकड़े-टुकड़े किया अपने दीन को, और हो गये फ़िर्क़े और पार्टियाँ, हर एक पार्टी अपने तरीक़े पर ख़ुश है।

हज़रत आयशा सिद्दीक़ा रज़ियल्लाहु अन्हा ने रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से इस आयत की तफ़सीर में नक़ल फ़रमाया कि इससे मुराद बिद्अ़तियों की पार्टियाँ हैं। (एतिसाम जिल्द 1 पेज 65)

(٢) قُلْ هَلْ نُنَبِّئُكُمْ بِالْاَخْسَرِيْنَ اَعْمَالًا ، اَلَّذِيْنَ ضَلَّ سَعْيُهُمْ فِى الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا وَهُمْ يَحْسَبُوْنَ اَنَّهُمْ يُحْسِنُوْنَ صُنْعًا. (كهف:١٠٣، ١٠٤)

तर्जुमाः आप फ़रमाईए कि क्या हम तुम्हें बतलायें कि कौन लोग अपने आमाल में सबसे ज़्यादा ख़सारे वाले हैं। वे लोग जिनकी सअ़ी (कोशिश) व अ़मल दुनिया की ज़िन्दगी में ज़ाया व बेकार हो गयी और वह यही समझ रहे हैं कि हम अच्छा अ़मल कर रहे हैं।

हज़रत अ़ली कर्रमल्लाहु वज्हहू और सुफ़ियान सौरी रहमतुल्लाहि अ़लैहि वग़ैरह ने "अख़्सरी-न आमालन्" की तफ़सीर बिद्अ़ती लोगों से की है। और बेशक इस आयत में बिद्अ़ती लोगों की हालत का पूरा नक़्शा खींच दिया गया है, कि वे अपने ख़ुद गढ़े हुए आमाल को नेकी समझ कर ख़ुश हैं कि हम आख़िरत का ज़ख़ीरा हासिल कर रहे हैं हालाँकि अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के नज़दीक उनके आमाल का न कोई वज़न है न सवाब बल्कि उल्टा गुनाह है। (सुन्नत व बिद्अ़त पेज 22)

बिद्अ़त की ख़राबी और उससे रोकने के बारे में हदीस की रिवायतें बेशुमार हैं। उनमें से भी चन्द रिवायतें लिखी जाती हैं।

1. हज़रत आयशा सिद्दीक़ा रज़ियल्लाहु अ़न्हा से रिवायत है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

من احدث فى امرنا هٰذا ما ليس منه فهو ردّ (مشكوة بحواله بخارى)

तर्जुमाः जो शख़्स हमारे दीन में कोई नई चीज़ दाख़िल करे जो दीन में दाख़िल नहीं वह मरदूद (नाक़ाबिले क़बूल) है।

2. हज़रत जाबिर बिन अ़ब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्ल. अपने ख़ुतबे में फ़रमाया करते थेः

اما بعد: فان خير الحديث كتاب الله وخير الهدى هدى محمد صلى الله عليه وسلم وشر الامور محدثاتها وكل بدعة ضلالة. اخرجه مسلم وفي رواية للنسائي كل محدثة بدعة وكلّ بدعة في النار. (اعتصام ج١ ص:٧٦)

तर्जुमाः हम्द व सलात के बाद- समझो कि बेहतरीन कलाम अल्लाह की किताब है और बेहतरीन तरीक़ा और तर्ज़े अ़मल मुहम्मद (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) का तर्ज़े अ़मल है और बदतरीन चीज़ नई ईजाद की जाने वाली बिद्‌अ़तें हैं और हर बिद्‌अ़त गुमराही है। और नसाई की रिवायत में है कि हर नई ईजाद की जाने वाली इबादत बिद्‌अ़त है, और हर बिद्‌अ़त जहन्नम में (ले जाने का सबब) है।

हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु भी यही ख़ुतबा दिया करते थे और हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु अपने ख़ुतबे में इन ज़िक्र हुए अल्फ़ाज़ के बाद यह भी फ़रमाते थेः

انكم ستحدثون ويحدث لكم فكل محدثة ضلالة وكل ضلالة في النار.

(الاعتصام ج١ ص: ٧٦)

तर्जुमाः तुम भी नये-नये काम निकालोगे और लोग तुम्हारे लिये नई-नई सूरतें इबादत की निकालेंगे। ख़ूब समझ लो कि इबादत का हर नया तरीक़ा गुमराही है और हर गुमराही का ठिकाना जहन्नम है।

3. मुस्लिम शरीफ़ में हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

من دعا الى الهدى كان له من الاجر مثل اجور من يتبعه لا ينقص ذٰلك من اجورهم شيئًا ومن دعا الٰى ضلالة كان عليه من الاثم اثام من يتبعه ولا ينقص ذٰلك من اثامهم شيئًا.

तर्जुमाः जो शख़्स लोगों को हिदायत के सही तरीक़े की तरफ़ बुलाये तो उन तमाम लोगों के अ़मल का सवाब उसको मिलेगा जो उसकी पैरवी करें, बग़ैर इसके कि उनके सवाब में कुछ कमी की जाये। और जो शख़्स किसी गुमराही की तरफ़ लोगों को दावत दे तो उस पर उन सब लोगों का गुनाह लिखा जायेगा जो उसकी पैरवी करेंगे, बग़ैर इसके कि उनके गुनाहों में

कुछ कमी की जाये।

बिद्अ़तों के नये-नये तरीक़े ईजाद करने वाले और उनकी तरफ़ लोगों को दावत देने वाले उसके बुरे अन्जाम पर ग़ौर करें कि उसका वबाल तन्हा अपने अ़मल ही का नहीं बल्कि जितने मुसलमान उससे मुतास्सिर (प्रभावित) होंगे उन सबका वबाल उनपर है। (सुन्नत व बिद्अ़त)

4. अबू दाऊद और तिर्मिज़ी ने हज़रत इरबाज़ बिन सारिया रज़ियल्लाहु अ़न्हु से सही सनद के साथ रिवायत किया है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने एक रोज़ हमें ख़ुतबा दिया, जिसमें निहायत असरदार और दिल को छू लेने वाला वअ़ज़ (बयान) फ़रमाया। जिससे आँखें बहने लगीं और दिल डर गये। हाज़िर लोगों में से बाज़ ने अ़र्ज़ किया: या रसूलल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम! आज का बयान तो ऐसा है जैसे रुख़्सती वसीयत होती है, तो आप हमें बतलायें कि हम आईन्दा किस तरह ज़िन्दगी बसर करें? इस पर आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया:

أُوْصِيْكُمْ بِتَقْوَى اللّٰهِ وَالسَّمْعِ وَالطَّاعَةِ لِوُلَاةِ الْاَمْرِ وَاِنْ كَانَ عَبْدًا حَبْشِيًّا فَاِنَّ مَنْ يَّعِشْ مِنْكُمْ بَعْدِى فَسَيَرٰى اِخْتِلَافًا كَثِيْرًا فَعَلَيْكُمْ بِسُنَّتِىْ وَسُنَّةِ الْخُلَفَآءِ الرَّاشِدِيْنَ الْمَهْدِيِّيْنَ تَمَسَّكُوْا بِهَا وَعَضُّوْا عَلَيْهَا بِالنَّوَاجِذِ وَاِيَّاكُمْ وَمُحْدَثَاتِ الْاُمُوْرِ فَاِنَّ كُلَّ مُحْدَثَةٍ بِدْعَةٌ وَكُلَّ بِدْعَةٍ ضَلَالَةٌ. (اعتصام)

तर्जुमा: मैं तुम्हें वसीयत करता हूँ अल्लाह तआ़ला से डरने की और इस्लामी हाकिमों की इताअ़त करने की, अगरचे तुम्हारा हाकिम हब्शी ग़ुलाम ही क्यों न हो। क्योंकि तुममें से जो लोग मेरे बाद ज़िन्दा रहेंगे वे बड़ा इख़्तिलाफ़ (मतभेद और विवाद) देखेंगे इसलिये तुम मेरी सुन्नत और मेरे बाद ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन महदियीन की सुन्नत को इख़्तियार करो और उसको मज़बूती से पकड़ो और दीन में नौईजाद (नये ईजाद किये जाने वाले) तरीक़ों से बचो क्योंकि हर नौईजाद इबादत का तरीक़ा बिद्अ़त है और हर बिद्अ़त गुमराही है।

5. और हज़रत आ़यशा सिद्दीक़ा रज़ियल्लाहु अ़न्हा ने फ़रमाया कि:

"जो शख़्स किसी बिद्अ़ती के पास गया और उसकी ताज़ीम (अदब व

एहतिराम) की तो गोया उसने इस्लाम ढहाने में उसकी मदद की।

(सुन्नत व बिद्अ़त, एतिसाम लिश्शतबी जिल्द 1 पेज 84 के हवाले से)

6. और हज़रत हसन बसरी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है कि:

"अगर तुम चाहते हो कि पुलसिरात पर तुम्हें देर न लगे और सीधे जन्नत में जाओ तो अल्लाह के दीन में अपनी राय से कोई नया तरीक़ा न पैदा करो"। (एतिसाम)

7. हज़रत हुज़ैफ़ा बिन यमान रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि:

"मुसलमानों के लिये जिन चीज़ों का मुझे ख़तरा है उनमें से सबसे ज़्यादा ख़तरनाक दो चीज़ें हैं। एक यह कि जो चीज़ें वे देखें उसको उसपर तरजीह देने लगें जो उनको सुन्नते रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से मालूम है, दूसरे यह कि वे ग़ैर-शऊरी तौर पर (यानी उनको पता भी न लगे) गुमराह हो जायें।" (सुन्नत व बिद्अ़त पेज 26)

8. और हज़रत हुज़ैफ़ा रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि:

"ख़ुदा की क़सम! आने वाले ज़माने में बिद्अ़तें इस तरह फैल जायेंगी कि अगर कोई शख़्स उस बिद्अ़त को छोड़ देगा तो लोग कहेंगे कि तुमने सुन्नत छोड़ दी।" (एतिसाम जिल्द 1 पेज 90)

9. हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि:

"ऐ लोगो! बिद्अ़त इख़्तियार न करो और इबादत में हद से न बढ़ो और न छानबीन करो, पुराने तरीक़ों को लाज़िम पकड़े रहो, उस चीज़ को इख़्तियार करो जो सुन्नत की रू से तुम जानते हो और जिसको इस तरह नहीं जानते उसको छोड़ो।"

10. हज़रत हसन बसरी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि:

"बिद्अ़त वाला आदमी जितना ज़्यादा रोज़े और नमाज़ में मेहनत करता जाता है उतना ही अल्लाह से दूर होता जाता है, तथा यह भी फ़रमाया कि "बिद्अ़त वाले के पास न बैठो कि वह तुम्हारे दिल को बीमार कर देगा।" (सुन्नत व बिद्अ़त पेज 27)

11. हज़रत सुफ़ियान सौरी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि:

"कोई क़ौल बग़ैर अ़मल के मुस्तक़ीम (सही और दुरुस्त) नहीं और कोई क़ौल व अ़मल बग़ैर नीयत के मुस्तक़ीम नहीं और कोई क़ौल और

अमल और नीयत उस वक़्त तक मुस्तक़ीम नहीं जब तक कि वह सुन्नत के मुताबिक़ न हो।" (सुन्नत व बिद्अ़त पेज 27)

12. अबू अ़मर शैबानी रहमतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाते हैं कि:

"बिद्अ़ती शख़्स को तौबा नसीब नहीं होती (क्योंकि वह तो अपने गुनाह को गुनाह ही नहीं समझता, तौबा किससे करे?)

(सुन्नत व बिद्अ़त पेज 27)

बिद्अ़तों के मुताल्लिक़ इन उसूली गुज़ारिशों के बाद अब हम उन कोताहियों, ग़लत रस्मों और बिद्अ़तों की निशानदेही करते हैं जो बीमारी, मौत, मय्यित और मय्यित के घर वालों के मुताल्लिक़ आजकल ज़्यादा राईज हो गयी हैं। और सहूलत के लिये उनको तीन हिस्सों में तक़सीम करते हैं:

नम्बर एक: मौत से पहले की रस्में और कोताहियाँ।

नम्बर दो: ऐन मौत के वक़्त की रस्में।

नम्बर तीन: मौत के बाद की रस्में।

और उम्मीद करते हैं कि पढ़ने वाले हज़रात ख़ुद भी उनसे बचेंगे और दूसरों को भी हिक्मत और नर्मी के साथ रोकने की कोशिश करेंगे।

मौत से पहले की रस्में और कोताहियाँ

मरने से पहले जिस बीमारी में मरने वाला मुब्तला होता है उसमें मय्यित और मय्यित वाले तरह-तरह की कोताहियाँ करते हैं। मुलाहिज़ा हो:

नमाज़ की पाबन्दी न करना

एक कोताही यह होती है कि बाज़ मरीज़ नमाज़ का एहतिमाम नहीं करते हालाँकि मुम्किन है यह ज़िन्दगी का आख़िरी मर्ज़ हो, क्योंकि हर बीमारी मौत की याद दिलाती है, सेहत में फ़िक्र न की तो अब भी ग़ाफ़िल रहना और एहतिमाम न करना बड़े ही अन्देशे और ख़तरे की बात है।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 226 जिल्द 1)

बाज़ मरीज़ (बीमार) तन्दुरुस्ती के ज़माने में तो नमाज़ के पाबन्द होते हैं मगर बीमारी में नमाज़ का ख़्याल नहीं रखते और ख़्याल न रखने की उमूमी वजह यह होती है कि बीमारी या वस्वसे की बिना पर कपड़े या बदन नापाक और गन्दे हैं या वुज़ू और गुस्ल नहीं कर सकते और तयम्मुम को

दिल गवारा नहीं करता कि उससे तबीयत साफ़ नहीं होती, इसलिये नमाज़ क़ज़ा कर देते हैं, यह सख़्त जहालत और नादानी की बात है। ऐसे मौक़े पर आ़लिमों से मसला पूछकर अ़मल करना चाहिये और शरीअ़त की दी हुई सहूलतों पर अ़मल करना चाहिये। इन कारणों की बिना पर नमाज़ क़ज़ा करना जायज़ नहीं। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 224 जिल्द 1)

बाज़ मरीज़ डा. और हकीम के मना कर देने का उज़्र करते हैं और नमाज़ पढ़ना छोड़ देते हैं हालाँकि जब तक इशारे से नमाज़ पढ़ने पर ताक़त हो इशारे से नमाज़ अदा करना लाज़िम है। हाँ जब इशारे पर भी ताक़त न रहे तो बेशक नमाज़ को लेट करना और बाद में क़ज़ा कर लेना दुरुस्त है। बीमारी मौत का पैग़ाम है, उससे इनसान को और ज़्यादा होशियार और फ़िक्रे आख़िरत की तरफ़ और ज़्यादा मुतवज्जह होना चाहिये।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 226 जिल्द 1)

बाज़ मरीज़ नमाज़ के पूरे पाबन्द होते हैं मगर बीमारी के ग़लबे से या नमाज़ के वक़्त नींद के ग़लबे से या बहुत ज़्यादा कमज़ोरी से आँखें बन्द होकर ग़फ़लत सी हो जाती है और नमाज़ के समय वग़ैरह की पूरी तरह ख़बर नहीं होती, यहाँ तक कि नमाज़ क़ज़ा हो जाती है हालाँकि अगर उन्हें नमाज़ की इत्तिला की जाये तो हरगिज़ कोताही न करें, लेकिन ऊपर के लोग ख़िदमत करने वाले मरीज़ की राहत का ख़्याल करके नमाज़ की इत्तिला नहीं करते और अगर बीमार को किसी तरह इत्तिला भी हो जाये तो उल्टा मना कर देते हैं या उसकी इमदाद नहीं करते जैसे वुज़ू, तयम्मुम, कपड़ों की तबदीली, क़िबला-रुख़ करना वग़ैरह कुछ नहीं करते जिससे खुद भी गुनाहगार होते हैं, ऐसा करना न मरीज़ के साथ ख़ैर-ख़्वाही है न अपने साथ। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 226 जिल्द 1)

बाज़ लोग यह समझते हैं कि जब मरीज़ होश में नहीं है तो नमाज़ माफ़ है, यह भी दुरुस्त नहीं, क्योंकि हर बेहोशी में नमाज़ माफ़ नहीं होती, जिसमें नमाज़ माफ़ होती है वह वह बेहोशी है जिसमें ख़बरदार करने से भी आगाह न हो और लगातार छह नमाज़ें बेहोशी में गुज़र जायें, ऐसी शक्ल में नमाज़ बिल्कुल माफ़ है, क़ज़ा भी वाजिब नहीं। और अगर इससे कम बेहोशी हो जैसे चार या पाँच नमाज़ें उस हालत में गुज़र जायें तो उस वक़्त मरीज़ बेहोशी की बिना पर नमाज़ें अदा करने का मुकल्लफ़ नहीं, लेकिन

होश आने पर उनकी क़ज़ा वाजिब है। और अगर क़ज़ा में सुस्ती की तो मरने से पहले उन नमाज़ों का फ़िदया अदा करने की वसीयत करना वाजिब है। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 227 जिल्द 1)

नमाज़ के फ़राईज़ व वाजिबात में कोताही

बाज़ मरीज़ यह कोताही करते हैं कि बावजूद इसके कि वुज़ू कुछ नुक़सान देने वाला नहीं फिर तयम्मुम कर लेते हैं। कई बार ख़िदमत गुज़ार या दूसरे ख़ैरख़्वाह वुज़ू से रोकते हैं और कहते हैं कि मियाँ शरीअ़त में आसानी है तयम्मुम कर लो, यह सख़्त नादानी है। जब तक वुज़ू करना मुज़िर (नुक़सानदेह) न हो तयम्मुम करना जायज़ नहीं।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 227 जिल्द 1)

बाज़ बीमार खड़े होकर नमाज़ पढ़ने की ताक़त रखते हैं मगर फिर भी वे बैठकर नमाज़ अदा करते हैं, हालाँकि जब तक खड़े होकर नमाज़ अदा करने की ताक़त हो बैठकर अदा करना जायज़ नहीं। इसलिये बड़ी एहतियात से नमाज़ को पूरा करना चाहिये।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 227 जिल्द 1)

बाज़ बीमार नमाज़ में बावजूद इसके कि कराहने को ज़ब्त कर सकते हैं लेकिन "आह-आह" ख़ूब साफ़ लफ़्ज़ों से कहते हैं और इसकी बिल्कुल परवाह नहीं करते कि नमाज़ रहेगी या जायेगी। याद रखना चाहिये कि बरदाश्त करने की ताक़त होते हुए नमाज़ में "हाय-हाय" या "आह-आह" "उई" वग़ैरह करने से नमाज़ जाती रहती है। नमाज़ बड़ी एहतियात की चीज़ है, ख़्याल से अदा करनी चाहिये। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत 227-1)

शरई उज़्र के बावजूद तयम्मुम न करना

बाज़ मरीज़ यह बे-एहतियाती करते हैं कि चाहे उन पर कैसी ही मुसीबत गुज़रे, चाहे कैसा ही मर्ज़ बढ़ जाये, जान निकल जाये मगर तयम्मुम जानते ही नहीं। मर जायेंगे मगर वुज़ू ही करेंगे, यह भी गुलू (हद से बढ़ना) और दर-पर्दा हक़ तआ़ला शानुहू की अ़ता की हुई सहूलियत को क़बूल न करना है जो सख़्त गुस्ताख़ी और बेअदबी है। जिस तरह वुज़ू हक़ तआ़ला का हुक्म है तयम्मुम भी उन्हीं का हुक्म है। बन्दे का काम हुक्म मानना है

न कि दिल की चाहत और सफ़ाई को देखना। बन्दगी तो इसी का नाम है कि जिस वक़्त जो हुक्म हो जान व दिल से माने और उस पर अ़मल करे।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 227 जिल्द 1)

बिना ज़रूरत मरीज़ का सतर देखना

एक कोताही आ़म तौर पर यह हो रही है कि बीमार का सतर (जिस्म के वे अंग जिनको छुपाना शरई तौर पर वाजिब है) छुपाने का कोई एहतिमाम नहीं किया जाता। घुटना खुल गया तो कोई परवाह नहीं, रान खुल गई तो कुछ ख़्याल नहीं, मरीज़ अगर तकलीफ़ की सख़्ती से इसका ख़्याल न रख सके तो ऊपर वालों को इसका पूरा ख़्याल रखना लाज़िम है, बिला ज़रूरत उसका सतर देखना जायज़ नहीं।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 228 जिल्द 1)

एक कोताही अक्सर यह होती है कि मरीज़ को जैसे इन्जेक्शन लगवाने या ऑप्रेशन या मरहम-पट्टी करवाने या इलाज करने वाले को मर्ज़ की जगह दिखलाने की ज़रूरत पेश आये तो इसका ख़्याल नहीं रखा जाता कि जितना बदन खोलने की ज़रूरत है सिर्फ़ उतना ही खुले और सिर्फ़ उन लोगों के सामने खुले जिनका ताल्लुक़ इलाज-मुआ़लजे से है। बे-धड़क इलाज करने वाले और दूसरों के सबके सामने बदन खोल दिया जाता है, हालाँकि ग़ैर मुताल्लिक़ हज़रात को मरीज़ के सतर का हिस्सा देखना जायज़ नहीं, इसमें बहुत ही ज़्यादा ग़फ़लत है, इसका बहुत ख़्याल रखें।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 228 जिल्द 1)

मरीज़ मर्द हो या औ़रत इलाज करने वाले को ज़रूरत के मुताबिक़ उनका बदन देखना जायज़ है लेकिन दूसरे हाज़िरीन को उसके सतर का हिस्सा देखना जायज़ नहीं, वहाँ से हट जाना या आँखें बन्द कर लेना या मुँह फेर लेना वाजिब है। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 228 जिल्द 1)

नापाक और हराम दवा का इस्तेमाल करना

एक कोताही यह आ़म हो रही है कि बीमार के इलाज-मुआ़लजे में पाक व नापाक और हलाल व हराम दवा का कुछ ख़्याल ही नहीं किया जाता, बिना तहक़ीक़ और बिना सख़्त ज़रूरत के हराम व नापाक दवायें

पिला दी जाती हैं। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 229 जिल्द 1)

दुआ की तरफ़ तवज्जोह न देना

एक कोताही यह है कि मरीज़ की दवा-दारू, इलाज-मुआलजा और दूसरी तमाम तदबीरें इख़्तियार की जाती हैं, पैसा पानी की तरह बहाया जाता है लेकिन दुआ का एहतिमाम नहीं करते, बल्कि इसका ख़्याल ही नहीं आता, हालाँकि यह दुआ-ए-मन्सूस सबसे बड़ी तदबीर है और इसकी तौफ़ीक़ न होना सख़्त मेहरूमी की बात है। मरीज़ को अगर हो सके तो ख़ुद दुआ करनी चाहिये, क्योंकि बीमारी की हालत में दुआ क़बूल होती है। (वरना ऊपर वालों को और यार रिश्तेदारों को) पूरी तवज्जोह और ध्यान से दुआ करनी चाहिए। घर के एक फ़र्द का बीमार होना और तमाम घर वालों का परेशान होना ख़ुद हक़ तआला की तरफ़ तवज्जोह दिला रहा है और ईमान का तक़ाज़ा भी यह है कि अपने ख़ालिक़ व मालिक की तरफ़ तवज्जोह की जाए और उसी से मदद माँगी जाये और सेहत व आफ़ियत की दुआ की जाये। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 230 जिल्द 1)

दुआ का ग़लत तरीक़ा

एक कोताही यह है कि बाज़ लोग दुआ में शरई हदों की रियायत नहीं रखते, शिकायत के अन्दाज़ में दुआ करने लगते हैं। जैसे यूँ दुआ करते हैं- "ऐ अल्लाह क्या होगा? बस मैं तो बिल्कुल ही तबाह हो जाऊँगा या तबाह हो जाऊँगी, ये बच्चे किस पर डालूँगी, मेरे बाद इनका क्या होगा? ऐ ख़ुदा ऐसा न करना, बस जी मेरा तो कहीं भी ठिकाना ही न रहेगा, वग़ैरह" गोया शिकायत अलग की जाती है और मश्विरा अलग दिया जाता है। अस्तग़फ़िरुल्लाह! क्या हक़ तआला का यही अदब है? इसी का नाम अज़मत है? दुआ हमेशा एक आजिज़ ग़ुलाम की तरह करनी चाहिये उसके बाद ख़ुदा-ए-पाक जो फ़ैसला फ़रमायें उसपर राज़ी रहना वाजिब है।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 231 जिल्द 1)

सदक़े के मुताल्लिक़ कोताहियाँ

मरीज़ या उसके मुताल्लिक़ीन सदक़ा करने में एक ग़लती यह करते हैं

कि किसी बुज़ुर्ग मरहूम के नाम खाना पकवाकर तक़सीम करते हैं या खिलाते हैं और इसमें उनका यह एतिक़ाद होता है कि वह बुज़ुर्ग खुश होकर कुछ सहारा लगा देंगे, यह अक़ीदा शिर्क है। बाज़ लोग बजाय मदद के उनकी दुआ का यक़ीन रखते हैं और वह भी इस तरह कि उनकी दुआ रद्द नहीं हो सकती, ऐसा एतिक़ाद भी ख़िलाफ़े शरीअ़त है।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 231 जिल्द 1)

बाज़ लोग सदक़े में जान का बदला जान ज़रूरी समझते हैं और बकरे वग़ैरह को तमाम रात मरीज़ के पास रखकर और बाज़ लोग मरीज़ का हाथ लगवा कर ख़ैरात करते हैं या मरीज़ के पास बकरे को ज़िबह कर देते हैं, और यह समझते हैं कि मरीज़ का बकरे पर हाथ लगाने से तमाम बलायें गोया उसकी तरफ़ मुन्तक़िल हो गईं, फिर ख़ैरात करने से वे भी चली जाती हैं और जान के बदले जान दे देने से मरीज़ की जान बच गई। याद रखिये ऐसा एतिक़ाद शरीअ़त के ख़िलाफ़ है। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 231 जिल्द 1)

बाज़ लोग खाना, गेहूँ, आटा और रुपया-पैसा मरीज़ के पास रख देते हैं और मरीज़ के चारों तरफ़ तीन या पाँच या सात मर्तबा घुमाकर और मरीज़ का हाथ लगवा कर ख़ैरात करते हैं। इसमें भी यही ख़्याल होता है कि ऐसा करने से मरीज़ की बीमारी और बलायें उस चीज़ में मुन्तक़िल होकर ख़ैरात करने से सब चली जाती हैं, यह एतिक़ाद भी शरीअ़त के ख़िलाफ़ है।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 231 जिल्द 1)

बाज़ लोगों ने सदक़े के लिये ख़ास-ख़ास चीज़ें मुक़र्रर कर रखी हैं जैसे माश, तेल और पैसे जिनमें मुश्तरक बात स्याह रंग की चीज़ मालूम होती है, गोया बला को काली समझ कर उसको दूर करने के लिये भी काली चीज़ें चुनी गई हैं, ये सब मन गढ़त बातें हैं और शरीअ़त के ख़िलाफ़ हैं। शरई तौर पर मुतलक़ सदक़ा बला को दूर करने वाला है कोई ख़ास चीज़ या ख़ास रंग बिल्कुल तय नहीं है। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 232 जिल्द 1)

बाज़ लोग सदक़े में गोश्त वग़ैरह चीलों को देना ज़रूरी ख़्याल करते हैं, यह भी ग़लत है। शरीअ़त ने सदक़ा देने की जगह मुक़र्रर कर दी है, चुनाँचे मुसलमान मिस्कीन उसका बेहतरीन मसूरफ़ (देने की जगह) हैं, चीलें उसका मसूरफ़ नहीं। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 232 जिल्द 1)

शरीअ़त के ख़िलाफ़ वसीयत करना

कई बार मरीज़ अपने बाद के लिये शरीअ़त के ख़िलाफ़ वसीयत करता है लेकिन दूसरे उसको बिल्कुल तंबीह नहीं करते कि जिससे उसकी इस्लाह हो जाये और नाजायज़ वसीयत से बाज़ रहे, या फिर जायज़ वसीयत करे।

(इस्लाहे इन्किलाबे उम्मत पेज 233 जिल्द 1)

बाज़ दफ़ा दूसरे लोग मरीज़ को ख़िलाफ़े शरीअ़त वसीयतों की राय और तरग़ीब देते हैं, जैसे अपने तिहाई से ज़्यादा माल की वसीयत या किसी वारिस के हक़ में वसीयत या किसी जायज़ वारिस को मेहरूम करने की वसीयत या तीजा, दसवाँ, चालीसवाँ करने या क़ब्र में अ़हद नामा रखने की वसीयत वग़ैरह, ये सब शरीअ़त के ख़िलाफ़ हैं। इनकी तरग़ीब देना भी जायज़ नहीं बल्कि अगर मरीज़ ख़ुद ही इनकी वसीयत करने लगे तो दूसरों को उसे मना कर देना चाहिये और उसकी इस्लाह कर देनी चाहिये। फ़र्ज़ करें मरीज़ ऐसी वसीयतों से बाज़ न आये तो ऐसी ख़िलाफ़े शरीअ़त वसीयत लाज़िम नहीं होती, बल्कि बाज़ पर तो अ़मल जायज़ भी नहीं, तफ़सील पिछले बाब में वसीयत के बयान में आ चुकी है।

(इस्लाहे इन्किलाबे उम्मत पेज 233 जिल्द 1)

ख़ास मौत के वक़्त की रस्में

रूह निकलने से पहले जो हालत इनसान पर तारी होती है उसमें इनसान को सख़्त तकलीफ़ होती है, उस हालत को "आ़लमे नज़ा" और "जान निकलने के वक़्त का आ़लम" कहते हैं। उस हालत की पहचान यह है कि साँस उखड़ जाता है और जल्दी-जल्दी चलने लगता है, टाँगें ढीली पड़ जाती हैं, खड़ी नहीं हो सकतीं, नाक टेढ़ी हो जाती है और कंपटियाँ बैठ जाती हैं।

ठीक यही या इससे मिलते-जुलते आसार जब दिखाई दें तो समझ लीजिये कि यह "आख़िरी वक़्त" है। अल्लाह पाक सब पर आसान फ़रमाये, आमीन।

उस वक़्त भी तरह-तरह की कोताहियाँ और ग़लतियाँ की जाती हैं ख़ास तौर पर औ़रतें उनमें ज़्यादा मुब्तला होती हैं। अब उन बातों को लिखा

जाता है तवज्जोह से पढ़ें और उनका इर्तिकाब न होने दें।

रोना, पीटना और गिरेबान फाड़ना

आम तौर पर एक कोताही यह होती है कि मय्यित की जान निकलने के वक़्त बजाय इसके कि कलिमा पढ़ें, सूरः यासीन पढ़ें, मय्यित की जान सहूलियत से निकलने और ख़ात्मा बिलख़ैर होने की दुआ करें, औरतें रोना-पीटना फैलाती हैं, मरीज़ को अगर होश हो तो वह परेशान होता है, जिसमें तरह-तरह की ख़राबियाँ हैं। फिर उस ग़रीब को जान निकलने की तकलीफ़ ही क्या कम है, ऊपर से ये तकलीफ़ देती हैं। याद रखिये! बुलन्द आवाज़ से रोना, चिल्लाना, मातम करना और गिरेबान फाड़ना सब हराम और गुनाह है, लेकिन रोना आये तो चीखे चिल्लाये बग़ैर सिर्फ़ आँसुओं से रोने में कोई हर्ज नहीं। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 233 जिल्द 1)

बीवी-बच्चों को सामने करना

एक नामाक़ूल हरकत यह की जाती है कि बाज़ी औरतें मरने वाले की बीवी को उसके सामने खड़ा कर देती हैं, या बीवी खुद ही सामने आ जाती है और मरीज़ से पूछते हैं कि इसको या मुझको किस पर छोड़े जाते हो? और उस ग़रीब को जवाब देने पर मजबूर करती हैं। बड़े ही अफ़सोस की बात है, उसका यह वक़्त ख़ालिक़ की तरफ़ मुतवज्जह होने का है, मगर ये नालायक़ उसको अब भी मख़्लूक़ की तरफ़ मुतवज्जह करना चाहते हैं, जो उस ग़रीब पर सरासर ज़्यादती है। होना तो यह चाहिये कि अगर वह खुद भी बिना शरई ज़रूरत के (जैसे वसीयत वग़ैरह) के इस आलम की तरफ़ मुतवज्जह हो तो उसकी तवज्जोह हक़ तआला की तरफ़ फेर दी जाये।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 234 जिल्द 1)

कभी-कभी मरीज़ के बच्चों को उसके सामने लाती हैं और पूछती हैं कि इनका कौन होगा? इन्हें प्यार कर लो, इनके सर पर हाथ रख दो, जिससे वह ग़रीब और परेशान हो जाता है और आख़िरी वक़्त में मख़्लूक़ की तरफ़ मुतवज्जह होने का नुक़सान अलग हो जाता है। दूसरी तरफ़ बच्चे किस क़द्र मायूस और नाउम्मीद होते हैं, ये वक़्त तो ऐसा है कि अगर वह ख़ुद भी बच्चों को याद करता तो उसको हक़ तआला की तरफ़ तवज्जोह

रखने की तलक़ीन की जाती।

और अगर वह बहुत ही याद करे तो सरसरी तौर पर सामने कर दें ताकि उसका दिल उनमें अटका न रहे, लेकिन वह ख़ुद याद न करे तो हरगिज़ उसको याद न दिलायें। इसी तरह बाज़ मर्द भी जो ज़नाना मिज़ाज रखते हैं वे भी यही ऊपर ज़िक्र हुई बेहूदा हरकत करते हैं। इसलिये ज़रूरी है कि जान निकलने के वक़्त मय्यित के पास दीनदार और समझदार लोग हों, घर की औरतें इत्तिफ़ाक़ से ऐसी समझदार और दीनदार हों तो उनके रहने में भी कोई हर्ज नहीं। जो लोग भी रहें इन तमाम बातों की एहतियात रखें। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 234 जिल्द 1)

बदफ़ाली से यासीन न पढ़ना और मय्यित से दूर रहना

बाज़ लोग यह करते हैं कि बदफ़ाली के ख़्याल से या दीन की अ़ज़मत (बड़ाई) दिल में न होने से न उस वक़्त सूरः यासीन पढ़ें और न उसका पढ़ना गवारा करें और न कलिमा का एहतिमाम करें, न मय्यित को कलिमा की तरफ़ मुतवज्जह करें, जबकि उसको होश हो और न ख़ुद ही उसमें मश्ग़ूल हों, बल्कि फ़ुज़ूल बातों और उन कामों में लग जाते हैं जिनकी ज़रूरत बाद में होगी, ये सब जहालत की बातें हैं, इनसे बचना लाज़िम है।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 235 जिल्द 1)

बाज़ जगह मय्यित के वारिस उसके माल व दौलत, रुपया पैसा और दूसरे साज़ व सामान पर क़ब्ज़ा करने की फ़िक्र में भागते फिरते हैं। मरीज़ के पास कोई नहीं रहता और वह तन्हा ही ख़त्म हो जाता है। बड़ी ही नादानी और ज़ुल्म की बात है और फिर मरने वाले के माल पर इस तरह क़ब्ज़ा करना कि जिसके क़ब्ज़े में जो आ जाये वह उसका मालिक बन बैठे, जायज़ नहीं, मरहूम के तमाम तर्के (छोड़े हुए माल व जायदाद) को शरीअ़त के मुताबिक़ तक़सीम करना फ़र्ज़ है। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत 235-1)

बाज़ लोग मरीज़ के पास इस बिना पर नहीं बैठते कि उन्हें बीमारी लग जाने का ख़ौफ़ रहता है, हालाँकि अल्लाह तआ़ला के हुक्म के बग़ैर कोई बीमारी किसी को नहीं लग सकती, अगर कहीं लग गई हो तो वह भी

ख़ालिक़ की हिक्मत व मर्ज़ी से है, बग़ैर उनकी मर्ज़ी और चाहत के कुछ नहीं होता। चुनाँचे देखा जाता है कि अक्सर जगह कुछ भी नहीं होता इसलिये ऐसा करना बड़ी संगदिली की बात है, हरगिज़ वहम न करें। मरीज़ को तन्हा न छोड़ें और उसका दिल न तोड़ें।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 235 जिल्द 1)

कलिमा की तलक़ीन में हद से आगे बढ़ना

बाज़ लोग मरने वाले को कलिमा पढ़वाने में इस क़द्र सख़्ती करते हैं कि उसके पीछे ही पड़ जाते हैं। वह ज़रा ग़ाफ़िल हुआ, ख़ामोश हुआ, फ़ौरन तौबा व इस्तिग़फ़ार और कलिमा का तक़ाज़ा शुरू कर देते हैं और बराबर उसके सर रहते हैं, वह बेचारा तंग आकर तकलीफ़ झेलकर किसी तरह पढ़ ले तो उसपर भी किफ़ायत नहीं करते, यह चाहते हैं कि बराबर पढ़ता ही रहे दम न ले, यह सरासर जहालत की बात है ख़ुदा बचाये।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 236 जिल्द 1)

मरने वाले को कलिमा तय्यिबा की तलक़ीन का तरीक़ा इसी किताब के दूसरे बाब में आ चुका है उसके मुताबिक़ अ़मल किया जाये।

बाज़ लोग इससे बढ़कर ज़्यादती करते हैं कि मरने वाले से अख़ीर तक बातें कराना चाहते हैं, ज़रा होश आया उसको पुकारते हैं: मियाँ फ़ुलाने! ज़रा आँख तो खोलो, मुझको तो देखो मैं कौन हूँ? तुम कैसे हो? कुछ कहोगे? किस बात को दिल चाहता है? इस तरह की ख़ुराफ़ात और बेहूदा बातों में उसको तंग करते हैं जो किसी तरह भी दुरुस्त नहीं। लेकिन शरई तौर पर किसी बात को दरियाफ़्त करना ज़रूरी हो जैसे किसी अमानत को पूछा जाये कि तुमने कहाँ रखी है? या क़र्ज़दार और लेन-देन के बारे में पूछा जाये कि जिसका हाल किसी और से मालूम नहीं हो सकता, या इसी क़िस्म का कोई और वाजिब हक़ हो तो उसे पूछने में कोई हर्ज नहीं, बल्कि ज़रूरी है बशर्ते कि मरीज़ को बतलाने में नाक़ाबिले बरदाश्त तकलीफ़ न हो।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 236 जिल्द 1)

बाज़ जाहिल लोग उस बेचारे को क़िब्ला-रुख़ करने में यह करते हैं कि उसका तमाम बदन और मुँह पकड़कर बैठ जाते हैं, अगर वह जान निकलने की तकलीफ़ की वजह से बदन या गर्दन को हरकत दे जो ग़ैर-इख़्तियारी

तौर पर होती है तो फिर मरोड़ तरोड़ कर रुख़ बदल देते हैं, यह भी ग़लत और जहालत की बात है। याद रखो! क़िब्ला-रुख़ करने का मतलब यह है कि जब मरीज़ पर भारी या तकलीफ़देह न हो या जब वह बिल्कुल अपने होश में न रहे उस वक़्त क़िब्ला-रुख़ कर दिया जाये, न यह कि ज़बरदस्ती करके उसको तकलीफ़ पहुँचायें। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 237 जिल्द 1)

आख़िरी वक़्त में ना-मेहरम मर्द को देखना

एक बे-एहतियाती यह होती है कि आख़िरी वक़्त में ना-मेहरम औरतें भी उसके सामने आ खड़ी होती हैं, और उस वक़्त पर्दे को ज़रूरी नहीं समझतीं, यह बड़ी जहालत की बात है। क्योंकि अगर उसको इतना होश है कि वह देखता और समझता है तब तो उसके सामने आना और देखना जायज़ नहीं। और अगर इतना होश नहीं है तो बहुत से बहुत मरीज़ ने न देखा मगर उन औरतों ने तो बिना ज़रूरत ना-मेहरम मर्द को देखा, और हदीस शरीफ़ में इसकी भी मनाही आई है, इसलिये ना-मेहरम औरतें हरगिज़ मरीज़ के सामने न आयें। इसी तरह बाज़ मर्द भी ऐसी हालत में ना-मेहरम औरत के सामने चले जाते हैं और देखने लगते हैं, सो उनके लिये भी ऐसा करना जायज़ नहीं। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 237 जिल्द 1)

मरने के वक़्त औरत को मेहंदी लगाना

बाज़ जगह यह बुरी रस्म होती है कि जब किसी औरत के इन्तिक़ाल का वक़्त क़रीब होता है तो दूसरी औरतें उसके हाथों पर मेहंदी लगाती हैं और उसको सुन्नत समझती हैं। वाज़ेह रहे कि यह सुन्नत नहीं बल्कि नाजायज़ है। (फ़तावा दारुल उलूम देवबन्द मुकम्मल मुदल्लल पेज 245 जिल्द 5)

मौत के वक़्त मेहर माफ़ कराना

एक कोताही जो बहुत ही आ़म है यह है कि जब कोई औरत मरने लगती है तो उससे कहते हैं कि मेहर माफ़ कर दे, वह माफ़ कर देती है और शौहर उस माफ़ी को काफ़ी समझकर अपने आपको मेहर के क़र्ज़ से बरी और फ़ारिग़ समझता है और कोई वारिस माँगे भी तो नहीं देता। याद रखिये! अव्वल तो उस वक़्त माफ़ कराना बड़ी संगदिली की बात है। दूसरे

अगर वह पूरी तरह होश में हो और ख़ुशदिली से माफ़ भी कर दे तो मेहर माफ़ न होगा, क्योंकि पिछले बाब में "मरज़ुल-मौत" के मसाईल से मालूम हो चुका है कि 'मरज़ुल-मौत' (यानी जिस बीमारी में मौत आ जाए) में माफ़ी वसीयत के हुक्म में है और वसीयत शौहर के लिये नहीं की जा सकती, क्योंकि वारिस के हक़ में वसीयत बातिल है। लेकिन अगर औ़रत के दूसरे वारिस जो आ़क़िल बालिग़ हों वे अपना-अपना मीरास का हिस्सा उस मेहर में से ख़ुशी से छोड़ना चाहें तो छोड़ सकते हैं, लेकिन जो वारिस मजनूँ या नाबालिग़ हो उसका हिस्सा उसकी इजाज़त से भी माफ़ न होगा।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 238 जिल्द 1)

एक कोताही बाज़ लोगों में यह होती है कि जिसका इन्तिक़ाल होने लगे अगर उसने मेहर अदा न किया हो तो उसकी बीवी को मजबूर करते हैं कि अपना मेहर माफ़ कर दे, हालाँकि बीवी उसपर बिल्कुल राज़ी नहीं होती मगर लोगों के इसरार या रस्म से मजबूर होकर शर्मा-शर्मी में माफ़ कर देती है। याद रखिये! इस तरह मेहर माफ़ कराना जायज़ नहीं, बड़ा ज़ुल्म है।

मौत के बाद की रस्में

ग़म ज़ाहिर करने में गुनाहों का जुर्म करना

बहुत सी जगह रोने पीटने में औ़रतें बेपर्दा हो जाती हैं और पर्दे का बिल्कुल ख़्याल नहीं रखतीं।

बाज़ जगह इससे बढ़कर यह ग़ज़ब होता है कि नौहा करने वालों और वालियों की तस्वीर खींची जाती हैं और अख़बारों में शाया की जाती हैं, यह भी हराम और बड़ा गुनाह है।

बाज़ जगह औ़रतें ग़म की ज़्यादती से अपने ना-मेहरम अ़ज़ीज़ों जैसे देवर, चचा ज़ाद, ताया ज़ाद और ख़ाला ज़ाद भाई से लिपट-लिपट कर रोती हैं, यह भी हराम है क्योंकि रंज व ग़म में शरीअ़त के अहकाम ख़त्म नहीं हो जाते।

बाज़ जगह ऊपर की औ़रतें जान बूझकर ऐसी बातें करती हैं जिससे रोना आये, और बाज़ औ़रतें बन-बनकर तकल्लुफ़ करके रोती हैं, ये सब ग़लत और मना है। (इस्लाहुर्रुसूम)

बाज़ जगह घर की और बिरादरी की औरतें मय्यित के घर से निकलते वक़्त नौहा करती हुई घर के बाहर तक आ जाती हैं और तमाम ग़ैर-मर्दों के सामने बेपर्दा हो जाती हैं, यह सब नाजायज़ और हराम है।

पोस्ट मार्टम

आजकल हादसों में हलाक या क़त्ल होने वालों का पोस्ट मार्टम किया जाता है और जिस्म को चीरफाड़ कर अन्दुरूनी हिस्से देखे जाते हैं। उनमें ज़्यादातर सूरतें ऐसी होती हैं जहाँ पोस्ट मार्टम शरई ज़रूरत के बग़ैर किया जाता है जो जायज़ नहीं। और अगर कहीं शरई ज़रूरत हो यानी किसी दूसरे ज़िन्दा शख़्स की जान बचाने की या किसी का माल ज़ाया होने से बचाने के लिये पोस्ट मार्टम ज़रूरी हो तो उसमें भी शरई अहकाम जैसे सतर और मय्यित का एहतिराम वग़ैरह का लिहाज़ रखना ज़रूरी है और फ़ारिग़ होने के बाद उसके तमाम आज़ा (अंगों) को दफ़न कर देना ज़रूरी है।

(इमदादुल-फ़तावा पेज 508 जिल्द 1, किफ़ायतुल-मुफ़्ती पेज 188 जिल्द 4)

मय्यित को तैयार करने और कफ़नाने दफ़नाने में देरी करना

बाज़ जगह मय्यित के माल व दौलत की जाँच पड़ताल या तर्के की तक़सीम के इन्तिज़ाम व एहतिमाम या दोस्तों और रिश्तेदारों के इन्तिज़ार या नमाज़ियों की कसरत, या ऐसी ही और किसी ग़र्ज़ से मय्यित के दफ़न करने में देर करते हैं यहाँ तक कि बाज़ जगह कामिल दो दिन तक मय्यित को पड़ा रखते हैं, यह सब नाजायज़ व मना है। (दलीलुल ख़ैरात)

बाज़ जगह यह रस्म है कि मय्यित को तैयार करने और कफ़न दफ़न से पहले गुठलियों पर एक लाख मर्तबा कलिमा तय्यिबा पढ़वाना ज़रूरी समझते हैं और उसके पूरा करने के वास्ते दूसरों को बुलावे दिये जाते हैं और उन्हें चाहे-अनचाहे आना पड़ता है, और जो शख़्स न आये या न आ सके तो वह ताज़ियत और जनाज़े में भी शर्मिन्दगी के सबब शिर्कत नहीं करता। इसमें भी अनेक ख़राबियाँ हैं। और कफ़न दफ़न में भी ताख़ीर होती है इसलिये यह रस्म भी छोड़ना वाजिब है। (इमदादुल-अहकाम पेज 103 जिल्द 1)

मय्यित को सिला हुआ पायजामा और टोपी पहनाना

बाज़ जगह मय्यित को कफ़नाने के वक़्त मर्द हो या औरत पायजामा और टोपी पहनाते हैं, यह नाजायज़ है।

(फ़तावा दारुल उलूम देवबन्द मुदल्लल पेज 271 जिल्द 5)

मय्यित के कफ़न से बचाकर इमाम का मुसल्ला बनाना

एक आ़म रस्म यह भी है कि मय्यित के कफ़न से कोई गज़-भर कपड़ा बचा लेते हैं या ज़ायद ख़रीद लेते हैं, जो नमाज़े जनाज़ा के बाद इमाम का हक़ समझा जाता है। बाज़ जगह ऊपर की चादर भी इमाम को दे दी जाती है। सो यह मुसल्ला और चादर बनाना ही ग़लत है। कफ़न के ख़र्चों से उसका कुछ ताल्लुक़ नहीं, इमाम का उनमें कोई हक़ नहीं और मुश्तरक तर्के से उसका सदक़ा देना भी जायज़ नहीं। (अहसनुल-फ़तावा पेज 379 जिल्द 1)

मय्यित के सीने और कफ़न पर कलिमा लिखना और शजरा व अ़हद नामा रखना

बाज़ जगह मय्यित के सीने या पेशानी पर या कफ़न पर कलिमा-ए-तय्यिबा, कलिमा-ए-शहादत, आयतुल कुर्सी और दूसरी आयतें और दुआ़यें रोशनाई वग़ैरह से लिखी जाती हैं, इस तरह लिखना जायज़ नहीं, क्योंकि मय्यित के फटने से बेक़द्री होगी, लेकिन बग़ैर रोशनाई वग़ैरह के सिर्फ़ उँगली के इशारे से कुछ लिख दिया जाये कि लिखने के निशान ज़ाहिर न हों तो यह जायज़ है, बशर्ते कि उसको भी सुन्नत या मुस्तहब या ज़रूरी न समझें, वरना यह भी बिद्अ़त होगी और इसका छोड़ना भी वाजिब होगा।

(अहसनुल फ़तावा पेज 351 जिल्द 1)

बाज़ लोग मय्यित के सीने पर अ़हद नामा या शजरा या सूरः यासीन वग़ैरह रख देते हैं या पत्थर पर लिखकर उसके साथ क़ब्र में रख देते हैं। मय्यित के गलने सड़ने से उसकी बेअदबी होती है इसलिये इसको भी छोड़ना चाहिये। लेकिन जिस चीज़ का अदब शरीअ़त में इस दर्जे का नहीं उसका

क़ब्र में रख देना दुरुस्त है, जैसे किसी बुज़ुर्ग का कपड़ा वग़ैरह।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 241 जिल्द 1)

मय्यित को कफ़न में पगड़ी देना

बाज़ जगह उलेमा और सरदारों वग़ैरह की मय्यित को कफ़न के तीन कपड़ों के अ़लावा एक अ़दद अ़मामा (पगड़ी) भी देते हैं, सो यह अ़मामा देना मक्रूह है, ख़ुद सरकारे दो आ़लम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को तीन यमनी चादरों में कफ़नाया गया था, जिसमें अ़मामा (पगड़ी) नहीं था। हदीसों में इसकी साफ़ ज़िक्र मौजूद है।

(इमदादुल-फ़तावा पेजः 510 जिल्द 1, फ़तवा दारुल-उलूम देवबन्द मुदल्लल पेज 259 जिल्द 5)

मय्यित के सुर्मा लगाना और कंघी करना

बाज़ लोग मय्यित की आँखों में सुर्मा और काजल लगाते हैं, सर और दाढ़ी के बालों में कंघा भी करते हैं। बाज़ लोग नाख़ुन और बाल कतर देते हैं, यह सब नाजायज़ है।

(फ़तावा दारुल-उलूम देवबन्द मुकम्मल व मुदल्लल पेज 248 जिल्द 5)

कफ़नाने के बाद इमाम का ख़त मय्यित को देना

बाज़ लोग मय्यित को कफ़न पहनाने के बाद मस्जिद के इमाम का लिखा हुआ ख़त मय्यित के दोनों हाथों में देते हैं, सो यह भी बेअसल और लग़्व है। (फ़तावा दारुल उलूम देवबन्द मुकम्मल व मुदल्लल पेज 256 जिल्द 5)

नमाज़े जनाज़ा से पहले और बाद में एक साथ मिलकर दुआ़ करना

बाज़ जगह यह रस्म है कि मय्यित को कफ़नाने के बाद जनाज़ा तैयार करके तमाम मौजूद लोग इज्तिमाई (सामूहिक) तौर पर (एक साथ मिलकर) फ़ातिहा पढ़ले और दुआ़ करते हैं, और बाज़ जगह नमाज़े जनाज़ा के बाद भी एक साथ मिलकर दुआ़ की जाती है।

तो याद रखिये कि नमाज़े जनाज़ा ख़ुद दुआ है मय्यित के लिये जो शरीअ़त ने दुआ मुक़र्रर फ़रमाई है उसमें इज्तिमाई तौर पर (एक साथ मिलकर) जो दुआ पढ़ी जाती है वह मय्यित और तमाम मुसलमानों के लिए इतनी जामे और मुफ़ीद दुआ है कि हम और आप उम्र भर सोच विचार से भी उससे बेहतर दुआ नहीं कर सकते। नमाज़े जनाज़ा से पहले या बाद में इज्तिमाई (सामूहिक) दुआ या फ़ातिहा पढ़ने का शरीअ़त में कोई सुबूत नहीं इसलिये यह नाजायज़ और बिद्अ़त है।

अगर किसी को शुब्हा हो कि दुआ तो तमाम ज़िन्दा व मुर्दा मुसलमानों के लिये हर वक़्त जायज़ है फिर उस मौक़े पर दुआ मकरूह होने की क्या वजह है?

जवाब यह है कि फ़ुक़हा-ए-किराम रहमतुल्लाहि अ़लैहिम ने इन्फ़िरादी तौर पर (अलग-अलग) दुआ करने से मना नहीं फ़रमाया। मय्यित के इन्तिक़ाल के वक़्त बल्कि उससे भी पहले इयादत (मिज़ाज पुर्सी) के ज़माने से उसके लिये अलग-अलग एक-एक शख़्स का दुआ माँगने का सुबूत हदीसों और फ़िक़ा की किताबों में मौजूद है। हर मुसलमान को इख़्तियार है बल्कि बेहतर है कि जब वह किसी मरीज़ की इयादत को जाये तो उसके लिये दुआ करे। और अगर उसका इन्तिक़ाल हो जाये तो उसके लिये मग़फ़िरत की दुआ करे और दफ़न तक बल्कि अपनी ज़िन्दगी भर मय्यित के लिये दुआ करता रहे। क़ुरआने करीम की तिलावत और दूसरी माली व बदनी इबादतों का सवाब उसे पहुँचाता रहे। इन तमाम हालतों में अलग-अलग रूप से दुआ करने या सवाब पहुँचाने की कोई मनाही नहीं, बशर्ते कि अपनी तरफ़ से कोई ऐसी बात ईजाद न करे जो शरीअ़त के ख़िलाफ़ हो और कोई ऐसी शर्त या पाबन्दी अपनी तरफ़ से न लगाये जो शरीअ़त ने लागू नहीं की।

और रहमते आ़लम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने मुसलमान मय्यित के लिये इज्तिमा के साथ दुआ करने का तरीक़ा सिर्फ़ वह मुक़र्रर फ़रमाया है जिसे नमाज़े जनाज़ा कहते हैं। इन्फ़िरादी (अलग अलग अपने) तौर पर हर शख़्स हर वक़्त दुआ कर सकता है लेकिन जमा होकर दुआ करने का सुबूत सिर्फ़ नमाज़े जनाज़ा के अन्दर है, उससे पहले या उसके बाद जिन-जिन मौक़ों में दुआ के लिये लोगों को जमा किया जाता है यह लोगों की अपनी

ईजाद है और फ़ुक़हा-ए-किराम इसी इज्तिमा को मक्रूह और बिद्अ़त फ़रमाते हैं। फ़तावा बज़ाज़िया में इस मनाही को साफ़ तौर पर बयान किया गया है। (दलीलुल ख़ैरात पेज 51 से 53 तक, इमदादुल-मुफ़्तीन पेज 444)

आजकल इस पर मज़ीद सितम यह होने लगा है कि जो शख़्स इस बिद्अ़त में शरीक नहीं होता उस पर लान-तान किया जाता है, अल्लाह तआ़ला हम सबको हर क़िस्म की बिद्अ़त और जहालत व गुमराही से महफ़ूज़ रखे और आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत पर जीने और उसी पर मरने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाये, आमीन।

जनाज़े या क़ब्र पर फूलों की चादर डालना

क़ब्र पर और जनाज़े पर फूलों की चादर डालने का भी एक रिवाज चल निकला है और इसको मय्यित के तैयार करने और कफ़नाने के आमाल में से एक अ़मल समझा जाता है और क़ब्र पर अगरबत्तियाँ जलाई जाती हैं, हालाँकि क़ुरआने करीम व सुन्नत और सहाबा-ए-किराम और दीन के इमामों से इन तीनों उमूर (बातों और कामों) का कोई सुबूत नहीं। इसलिये ये भी बिद्अ़त और नाजायज़ हैं।

(इमदादुल अहकाम पेज 92 जिल्द 1, उलेमा का मुत्तफ़िक़ा फ़ैसला)

जनाज़ा एक शहर से दूसरे शहर मुन्तक़िल करना

एक रिवाज यह आ़म हो गया है कि अगर किसी शख़्स का इन्तिक़ाल उसके वतन के अ़लावा और किसी शहर या मुल्क में हो तो उसे वहीं दफ़न नहीं किया जाता, बल्कि उसके वतन में पहुँचाना और वहाँ पर दफ़न करना ज़रूरी समझा जाता है और हवाई जहाज़ तक के ख़र्चों को इस सिलसिले में बरदाश्त किया जाता है। यह भी शरई हद से निकलना है। मुस्तहब और पसन्दीदा यह है कि जिस शख़्स का जहाँ इन्तिक़ाल हो उसे वहीं दफ़न किया जाये। एक मुल्क से दूसरे मुल्क या एक शहर से दूसरे शहर के लिये ले जाना अच्छा और बेहतर नहीं, बशर्ते कि वह दूसरा मक़ाम एक दो मील से ज़्यादा दूर न हो। और अगर इससे ज़्यादा दूर हो तो फिर मय्यित को दूसरी जगह ले जाना जायज़ ही नहीं है। और दफ़न करने के बाद खोदकर ले जाना तो हर हालत में नाजायज़ है। (बहिश्ती गौहर पेज 92)

ग़ायबाना नमाज़े जनाज़ा अदा करना

हनफ़ी फ़िक़ा में नमाज़े जनाज़ा सही होने के लिये मय्यित का सामने मौजूद होना शर्त है। बग़ैर उसके नमाज़े जनाज़ा दुरुस्त नहीं। लेकिन अब ग़ायबाना नमाज़े जनाज़ा का भी रिवाज हो रहा है। हनफ़ी फ़िक़ा में इसकी कोई गुन्जाईश नहीं। इसलिये हनफ़ी मस्लक रखने वालों को उसमें शिर्कत करना दुरुस्त नहीं। (इमदादुल अहकाम पेज 742 जिल्द 1)

नमाज़े जनाज़ा कई बार पढ़ना

एक ग़लती यह भी हो रही है कि मय्यित पर अनेक बार जनाज़े की नमाज़ होती है और यह उमूमन उस वक़्त होती है जब मय्यित को एक शहर से दूसरे शहर में मुन्तक़िल किया जाये। उस वक़्त दोनों शहरों में नमाज़े जनाज़ा पढ़ी जाती है। नमाज़े जनाज़ा मुकर्रर (एक से ज़्यादा बार) पढ़ना बिद्अत और मकरूहे तहरीमी है। लेकिन अगर वली की इजाज़त के बग़ैर दूसरों ने जनाज़े की नमाज़ पढ़ ली हो और ख़ुद वली ने उनके पीछे नमाज़े जनाज़ा न पढ़ी हो तो उसको दोबारा पढ़ने का हक़ है।

(इमदादुल अहकाम पेज 735 जिल्द 1)

नमाज़े जनाज़ा के फ़ोटो शाया करना

मौजूदा ज़माने की एक लानत यह भी है कि नमाज़े जनाज़ा के फ़ोटो अख़बारों में शाया किये (छापे जाते और प्रसारित किये) जाते हैं, और फ़ोटो में मुमताज़ (मशहूर व जानी पहचानी) शख़्सियतों को नुमायाँ करने की कोशिश की जाती है, हालाँकि यह तस्वीर खींचना हराम है।

जूते पहनकर नमाज़े जनाज़ा पढ़ना

एक कोताही आम तौर से यह भी हो रही है कि लोग रोज़मर्रा के आम इस्तेमाल में रहने वाले जूते पहनकर या उनके ऊपर क़दम रखकर जनाज़े की नमाज़ पढ़ लेते हैं, और यह नहीं देखते कि वे जूते पाक भी हैं या नहीं, हालाँकि अगर जूते पहने-पहने नमाज़ पढ़ी जाये तो ज़रूरी है कि ज़मीन और जूतों के अन्दर और नीचे की दोनों जानिबें पाक हों, वरना नमाज़ न होगी।

और अगर जूतों से पैर निकाल कर ऊपर रख लिये हैं तो यह ज़रूरी है कि जूतों का ऊपर का हिस्सा जो पैर से मिला हुआ है पाक हो, अगरचे नीचे का नापाक हो। अगर ऊपर का हिस्सा भी नापाक हो तो उस पर नमाज़ दुरुस्त न होगी। (इमदादुल-अहकाम पेज 740 जिल्द 1)

मय्यित के फ़ोटो खींचना

बाज़ लोग नमाज़े जनाज़ा से फ़ारिग़ होकर मय्यित का मुँह खोलकर उसका फ़ोटो खींचते या खिंचवाते हैं, ताकि बतौर यादगार उसको रखें। याद रखिये! तस्वीर खींचना बिल्कुल हराम है, इसलिये मय्यित का फ़ोटो लेना भी हराम है। फ़ोटो खींचने और खिंचवाने वाले दोनों गुनाहे कबीरा के मुज्रिम होते हैं। (तस्वीर के शरई अहकाम)

बुलन्द आवाज़ से जनाज़े की नीयत करना

बाज़ जगह देखा जाता है कि लोग नमाज़े जनाज़ा की नीयत बुलन्द आवाज़ से करते हैं, सो इसकी भी कोई असल नहीं है। लेकिन इमाम इत्तिफ़ाक़न कभी तालीम की ग़र्ज़ से जनाज़े की नीयत बतला दे तो इसमें कोई हर्ज नहीं, दुरुस्त है। लेकिन इसका मामूल बना लेना और ज़रूरी समझना बिद्‌अत है। (उलेमा का मुत्तफ़िक़ा फ़ैसला)

जनाज़े के साथ कलिमा-ए-शहादत बुलन्द आवाज़ से पढ़ना

एक रस्म यह पड़ गयी है कि मय्यित को कन्धा देते वक़्त और रास्ते में एक या कई आदमी बुलन्द आवाज़ से "कलिमा-ए-शहादत" पुकारते हैं और सब हाज़िरीन बुलन्द आवाज़ से कलिमा-ए-शहादत पढ़ते हैं, हालाँकि जनाज़े के साथ बुलन्द आवाज़ से कलिमा-ए-शहादत और कलिमा-ए-तैयबा या और कोई ज़िक्र करना आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत नहीं है। उस मौके पर आप ख़ामोश रहते थे जैसा कि इसी किताब में जनाज़ा उठाने के बयान में आप पढ़ चुके हैं। इसलिये यह रस्म भी सुन्नत के ख़िलाफ़ और बिद्‌अ़त है। (इमदादुल-मुफ़्तीन पेज 176)

जनाज़े के साथ अनाज, पैसा और खाना भेजना

बाज़ जगह जनाज़े के साथ अनाज या खाने के ख़्वानचे आगे-आगे लेकर चलते हैं। जिनमें मुख़्तलिफ़ खाने और मेवे होते हैं। फिर यह अनाज, खाने और मेवे क़ब्रिस्तान में तक़सीम होते हैं। सो वाज़ेह हो कि सवाब पहुँचाना हो तो बहुत अच्छा काम है लेकिन सवाब पहुँचाने की यह अपनी तरफ़ से तय की हुई सूरत कहीं साबित नहीं, अनेक कारणों से यह बिद्अ़त और नाजायज़ है। (दलीलुल ख़ैरात)

क़ब्रिस्तान के आदाब की रियायत न रखना

एक आ़म कोताही यह है कि क़ब्रिस्तान में पहुँचकर भी लोग दुनिया की बातें नहीं छोड़ते, हालाँकि यह इब्रत की जगह है। क़ब्र और आख़िरत के मर्हलों, उनकी हौलनाकियों और अपने अन्जाम की फ़िक्र करने की जगह है। क़ब्रिस्तान में दाख़िले के वक़्त क़ब्रिस्तान वालों को सलाम करने के जो कलिमात नक़ल किये गये हैं अक्सर लोग उससे ग़ाफ़िल रहते हैं।

अक्सर लोग क़ब्रिस्तान में दाख़िल होने का आ़म और जाना-पहचाना रास्ता छोड़कर क़ब्रों के ऊपर से फलाँग कर मय्यित की क़ब्र तक पहुँचने की कोशिश करते हैं। कभी-कभी क़ब्रों पर भी चढ़ जाते हैं। याद रखिये! ऐसा करना मना है, आ़म और मुक़र्ररा रास्ता चाहे कुछ लम्बा हो मगर उसी पर चलना चाहिये।

बाज़ लोग क़ब्रिस्तान पहुँचकर मय्यित के इर्द-गिर्द जमकर बैठ जाते हैं। मक़सद मय्यित की तदफ़ीन की कार्रवाई देखना होता है, लेकिन उनके इज्तिमा से मय्यित वालों और क़ब्र बनाने वालों को बहुत दिक़्क़त होती है और हुजूम की बिना पर आपस में भी एक दूसरे को तक्लीफ़ होती है। फिर अक्सर आस-पास की दूसरी क़ब्रों को भी अपने पैरों से बुरी तरह रौंदते हैं। याद रखिये! दफ़न की कार्रवाई देखना कोई फ़र्ज़ व वाजिब नहीं, लेकिन दूसरों को अपने उस तर्ज़े अ़मल से तक्लीफ़ देना हराम है, और क़ब्रों को रौंदना भी जायज़ नहीं, इसलिये इन गुनाहों से बचिए। क़ब्र के पास सिर्फ़ काम करने वालों को रहने दीजिये, ताकि सहूलत से वे अपना काम कर सकें और जब मिट्टी देने का वक़्त आये मिट्टी दे दीजिये।

बाज़ लोग मिट्टी देने में भी बहुत जल्दी करते हैं और एक दूसरे पर चढ़ जाते हैं और सख़्त तकलीफ़ पहुँचाते हैं, यह भी नाजायज़ है।

मय्यित का मुँह क़ब्र को दिखलाना

बाज़ लोग मय्यित को क़ब्र में रखकर उसका मुँह खोलकर क़ब्र को दिखलाना ज़रूरी समझते हैं, शरीअ़त में इसकी कोई असल नहीं।

(इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 241 जिल्द 1)

मय्यित का सिर्फ़ चेहरा क़िब्ला-रुख़ करना

बाज़ लोग मय्यित को क़ब्र में चित लिटा देते हैं और सिर्फ़ मय्यित का मुँह क़िब्ले की तरफ़ करते हैं, यह भी फ़ुक़हा-ए-किराम की तसरीहात के ख़िलाफ़ है, बल्कि मय्यित के तमाम बदन को अच्छी तरह करवट देकर क़िबला रुख़ करना चाहिये। (इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत पेज 240 जिल्द 1)

अमानत के तौर पर दफ़न करना

बाज़ जगह लोग मय्यित को जो किसी दूसरे इलाक़े में हो गयी हो ताबूत वग़ैरह में रखकर अमानत कहकर दफ़न करते हैं और फिर बाद में किसी मौक़े पर ताबूत निकाल कर अपने इलाक़े में लेजाकर दफ़न करते हैं। वाज़ेह रहे कि दफ़न करने के बाद चाहे अमानत के तौर पर दफ़न किया हो या बग़ैर इसके, दोबारा निकालना जायज़ नहीं। और अमानत के तौर पर दफ़न करना भी शरई तौर पर बेअसल है। (अज़ीज़ुल फ़तावा पेज 342 जिल्द 1)

मय्यित के सिरहाने 'क़ुल' पढ़ी हुई कंकरियाँ रखना

बाज़ लोग 'क़ुल' पढ़ी हुई कंकरियाँ या मिट्टी के ढेले मय्यित के सिराहने रखा करते हैं, शरीअ़त में उनका भी कोई सुबूत नहीं इसलिये बिद्अ़त है और इसको छोड़ना वाजिब है। (उलेमा का मुत्तफ़िक़ा फ़ैसला)

और बाज़ लोग मय्यित के सिरहाने दो रोटी और सालन रखते हैं। बाज़ लोग क़ब्र में मय्यित के नीचे गद्दा बिछाते हैं, ये दोनों बातें बेअसल और इनका छोड़ना वाजिब है।

दफ़न के बाद मुन्कर-नकीर के सवालों का जवाब बतलाना

बाज़ लोग जब मुर्दे को क़ब्र में दफ़न कर चुकते हैं तो क़ब्र पर उंगली रखकर मुर्दे को मुख़ातब करके यूँ कहते हैं: "ऐ फ़ुलाने अगर तुमसे कोई फ़रिश्ता पूछे कि तुम्हारा रब कौन है? तो तुम यूँ कहना कि मेरा रब अल्लाह है और मेरा रसूल मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और मेरा दीन इस्लाम है वग़ैरह वग़ैरह। सो वाज़ेह हो कि यह राफ़ज़ियों का तरीक़ा है और इसमें अनेक ख़राबियाँ हैं इसलिये यह तलक़ीन दुरुस्त नहीं, इससे परहेज़ करना चाहिये। (इमदादुल-अहकाम पेज 115-119 जिल्द 1)

दफ़न के बाद सूरः मुज़्ज़म्मिल पढ़ना और अज़ान देना

बाज़ दफ़ा दफ़न के बाद हल्क़ा (दायरा) बनाकर सूरः मुज़्ज़म्मिल पढ़ने को या इज्तिमाई तौर पर हाथ उठाकर दुआ़ करने को लाज़िम समझा जाता है और दफ़न के बाद क़ब्र पर अज़ान भी देते हैं। पंजाब में यह रस्म बहुत आ़म है। क़ुरआन व सुन्नत, सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन रहमतुल्लाहि अ़लैहिम, दीन के इमामों और क़दीम बुज़ुर्गाने दीन किसी से इसका कोई सुबूत नहीं इसलिये यह रस्म बिद्अ़त है।

(उलेमा का मुत्तफ़िक़ा फ़ैसला)

क़ब्र को पक्की बनाना

क़ब्र को पक्की बनाने का रिवाज बहुत आ़म हो चुका है। बाज़ लोग चूने रेत से पक्की बनाते हैं, बाज़ सिमेंट ईंट लगवाते हैं और बाज़ लेग संगे-मरमर से पक्की करवाते हैं। यह सब नाजायज़ है, हदीसों में साफ़-साफ़ मुमानिअ़त (मनाही) मौजूद है।

(फ़तावा दारुल'उलूम मुकम्मल व मुदल्लल पेज 377 जिल्द 5)

क़ब्र पर क़ुब्बा और कटहरा बनाना

बाज़ लोग क़ब्र का ऊपर का हिस्सा तो कच्चा रखते हैं लेकिन क़ब्र का बाक़ी तावीज़ यानी दायें-बायें और आगे-पीछे का हिस्सा पक्का बनवाते हैं और क़ब्र के चारों तरफ़ जालियों या संगे-मरमर वग़ैरह का कटहरा बनवाते हैं। और बाज़ लोग इससे भी आगे बढ़कर क़ब्र के ऊपर क़ुब्बा बनवाते हैं। यह सब नाजायज़ और बिद्अ़त है। हदीसों में इसकी मनाही आई है।

(फ़तावा दारुल उलूम देवबन्द मुकम्मल व मुदल्लल पेज 395 जिल्द 5)

क़ब्र पर चिराग़ जलाना

क़ब्रों पर चिराग़ जलाने की रस्म भी निहायत कसरत से की जाती है। जुमे की रात, शबे मेराज, शबे बराअत और शबे क़द्र में ख़ास तौर पर इसका एहतिमाम होता है और बाक़ायदा बिजली के क़ुमक़ुमे और लाईटें लगवाई जाती हैं। यह सब नाजायज़ और बिद्अ़त है।

(सुन्नत व बिद्अ़त पेज 82,83)

सवाब पहुँचाने के लिये ख़त्म के इज्तिमाअ़ात

क़ब्रिस्तान से वापसी पर उसी दिन या दूसरे दिन या तीसरे दिन जमा होकर क़ुरआने करीम या आयते करीमा या कलिमा-ए-तैयबा का ख़त्म होता है जिसके लिये अब तो अख़बारों वग़ैरह में भी इश्तिहार दिये जाते हैं फिर इज्तिमाई सवाब पहुँचाने और दुआ़ के बाद हाज़िरीन को कहीं खाना, कहीं नक़द और कहीं मिठाई वग़ैरह तक़सीम की जाती है।

अव्वल तो इस ख़ास तरीक़े से जमा होकर ख़त्म और सवाब पहुँचाने की रस्म का शरीअ़त में कहीं सुबूत नहीं, इसलिये बिद्अ़त है। दूसरे इसमें और भी ख़राबियाँ ये हैं कि दोस्त, रिश्तेदार तो उमूमन सिर्फ़ शिकायतों से बचने के लिये आते हैं, सवाब पहुँचाना हरगिज़ मक़सूद नहीं होता। यहाँ तक कि अगर कोई अ़ज़ीज़ अपने घर बैठकर पूरा क़ुरआन पढ़कर बख़्श दे तो मय्यित वाले हरगिज़ राज़ी नहीं होते और न आने की शिकायत बाक़ी रहती है, और यहाँ आकर यूँ ही थोड़ी देर बैठकर और कोई हीला बहाना करके चला जाये तो शिकायतों से बच जाता है। जो अ़मल ऐसे बेकार मक़ासिद

के लिये हो उसका कुछ सवाब नहीं मिलता। जब पढ़ने वाले ही को सवाब न मिला तो मुर्दे को क्या बख़्शेगा? रह गये फ़ुक़रा और मसाकीन तो उनको अगर यह मालूम हो जाये कि वहाँ जाकर सिर्फ़ पढ़ना पड़ेगा मिलेगा कुछ नहीं तो हरगिज़ एक भी न आयेगा। मालूम हुआ कि उनका आना सिर्फ़ इस उम्मीद से होता है कि कुछ मिलेगा। जब उनका पढ़ना दुनियावी ग़र्ज़ से हुआ तो उसका सवाब भी न मिलेगा, फिर मय्यित को क्या बख़्शेगा? फिर क़ुरआन-ख़्वानी को जो इन लोगों ने इज़्ज़त व रुतबे और माल का ज़रिया बनाया उसका गुनाह सर पर लग रहा। और जिस तरह क़ुरआन-ख़्वानी का बदल लेना जायज़ नहीं इसी तरह देना भी जायज़ नहीं। पीछे बार-बार बयान हो चुका है कि सवाब पहुँचाना और दुआ़ करना बहुत अच्छा काम है मगर उसके लिये इज्तिमा (जमा होना) या किसी ख़ास दिन या तारीख़ या वक़्त की कोई क़ैद शरीअ़त ने नहीं लगाई। हर शख़्स जब और जहाँ चाहे किसी भी इबादत का सवाब मय्यित को पहुँचा सकता है और दुआ़ कर सकता है। अपनी तरफ़ से नई-नई क़ैदें, शर्तें और पाबन्दियाँ बढ़ाना बिद्अ़त और नाजायज़ है। (इस्लाहुर्रुसूम पेज 172)

मय्यित वालों की तरफ़ से खाने की दावत

एक रस्म यह की जाती है कि दफ़न के बाद मय्यित के घर वाले बिरादरी वग़ैरह को दावत देते हैं कि फ़ुलाँ रोज़ आकर खाना तनावुल फ़रमायें। याद रखना चाहिये कि यह दावत और उसका क़बूल करना दोनों मना हैं हरगिज़ जायज़ नहीं। इस बुरी रस्म से बचना लाज़िम है। अ़ल्लामा शामी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इस दावत के मुताल्लिक़ लिखा है कि "इसके हराम होने में कोई शक नहीं" और हनफ़ी मज़हब के अ़लावा दूसरे फ़िक़्ही मज़ाहिब जैसे शाफ़िअ़िया वग़ैरह का भी इसके नाजायज़ होने पर इत्तिफ़ाक़ बयान किया है। और मुस्नद अहमद व इब्ने माजा शरीफ़ से रिवायत नक़ल की है कि सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के ज़माने में भी इस दावत को नाजायज़ समझा जाता था। (इमदादुल अहकाम पेज 115 जिल्द 1)

मय्यित के कपड़े-जोड़े ख़ैरात करना

एक रस्म यह भी है कि मय्यित के इन्तिकाल के बाद उसके कपड़े और जोड़े, ख़ास कर इस्तेमाली कपड़े ख़ैरात कर देते हैं, हालाँकि वारिसों में अक्सर नाबालिग़ वारिस भी होते हैं। याद रखिये! मय्यित के तमाम कपड़े और हर छोटी-बड़ी चीज़ उसका तर्का (छोड़ा हुआ माल व जायदाद) है जिसको शरीअ़त के मुताबिक़ तक़सीम करना वाजिब है, उससे पहले कोई चीज़ ख़ैरात न की जाये। लेकिन अगर सब वारिस बालिग़ हों और वहाँ मौजूद हों और ख़ुशदिली से सब मुत्तफ़िक़ होकर दे दें तो यह ख़ैरात करना जायज़ है लेकिन उसे वाजिब या ज़रूरी समझना फिर भी बिद्अ़त है।

(इस्लाहुर्रुसूम पेज 171)

मय्यित के घर औ़रतों का जमा होना

मय्यित के घर औ़रतें भी कई मर्तबा जमा होती हैं, हालाँकि एक बार ताज़ियत कर लेने के बाद दोबारा ताज़ियत के लिये जाना मक्रूह है। बज़ाहिर उनका आना सब्र व तसल्ली के लिये होता है, लेकिन होता यह है कि मय्यित वालों को सब्र दिलाने, दिल थामने और तसल्ली देने की एक बात नहीं, उल्टा उनको ग़म याद दिला-दिलाकर रोना-पीटना शुरू कर देती हैं। या वहाँ बैठकर दुनिया जहान की बातें करती हैं और मय्यित के घर वालों पर भार डालती हैं और कपड़े इतने भड़कदार पहनकर आती हैं जैसे किसी की शादी में शरीक हो रही हों। इनके अ़लावा और भी बुराईयाँ और ख़राबियाँ होती हैं, जिनसे बचना लाज़िम है। (इस्लाहुर्रुसूम पेज 174)

तीसरे दिन ज़ियारत करना

बाज़ जगह ख़ास पाबन्दी के साथ तीसरे दिन मय्यित के मज़ार पर सब लोग हाज़िरी देते हैं, जिसकी शुरूआ़त इस तरह होती है कि सबसे पहले मय्यित के घर फ़ातिहा फिर मौहल्ले की मस्जिद में एक फ़ातिहा, फिर क़ब्रिस्तान जाकर मुर्दे की क़ब्र पर एक फ़ातिहा, फिर वहाँ से वापसी पर चालीस क़दम पर फ़ातिहा, फिर मुर्दे के घर जाकर दोबारा एक फ़ातिहा। ये तमाम रस्में और पाबन्दियाँ ख़ालिस बिद्अ़त हैं और इनका छोड़ना वाजिब

और ज़रूरी है।

तीजा, दसवाँ, बीसवाँ और चालीसवाँ करना

मय्यित के इन्तिक़ाल के बाद तीजा करना, दसवाँ और बीसवाँ और ख़ासकर चालीसवाँ करने में, तीन माही और छह माही करने का आ़म रिवाज है और उनको करना ज़रूरी समझा जाता है, और जो न करे उसको तरह-तरह के ताने दिये जाते हैं, ये भी सब बिद्अ़त और नाजायज़ हैं।

(उलेमा का मुत्तफ़िक़ा फ़ैसला)

शाबान की चौदहवीं तारीख़ को ईद मनाना

बाज़ जगह लोग शाबान की चौदहवीं तारीख़ को मुर्दे की ईद मनाते हैं और क़िस्म-क़िस्म के खाने, हलवे, पीने की चीज़ें, फल वग़ैरह तैयार कराकर सवाब पहुँचाने की ग़र्ज़ से किसी ग़रीब को देते हैं। सवाब पहुँचाना तो बहुत पसन्दीदा है और सवाब का काम है जिसके लिये शरीअ़त ने दिन, तारीख़ और खानों की कोई पाबन्दी नहीं रखी, इसलिये लोगों का अपनी तरफ़ से ये पाबन्दियाँ बढ़ाना बिद्अ़त है और मुर्दे की ईद मनाना बिल्कुल ख़िलाफ़े असल और नाजायज़ है। (उलेमा का मुत्तफ़िक़ा फ़ैसला)

मय्यित के घर वालों के यहाँ खाना भिजवाने की ग़लत रस्में

बाज़ जगह मय्यित के रिश्तेदारों के यहाँ से उनके लिये खाना आता है, यह बहुत अच्छी बात है, बल्कि सुन्नत है। लेकिन बाज़ लोग उसमें भी तरह-तरह की ख़राबियों में मुब्तला हैं, जिनकी इस्लाह ज़रूरी है, जैसे बाज़ जगह अदला-बदला का ख़्याल रखा जाता है और खाना तक देखा जाता है कि जैसा हमने दिया था वैसा ही है या कम दर्जे का। क़रीबी रिश्तेदारों की मौजूदगी में अगर दूर का रिश्तेदार भेजना चाहे तो उसे ऐब समझा जाता है और क़रीबी रिश्तेदार अगरचे तंगदस्त हों बदनामी के ख़ौफ़ से पुर-तकल्लुफ़ और बढ़िया खाना भेजना ज़रूरी समझते हैं अगरचे उसके लिये क़र्ज़ करना पड़े। ये सब रस्में ख़िलाफ़े शरीअ़त हैं। खाना भेजने में बे-तकल्लुफ़ी और

सादगी से काम लेना चाहिये। जिस अज़ीज़ को तौफ़ीक़ हो यह खाना भेज दे, न उसमें अदले-बदले का ख़्याल करना चाहिये, न इसका कि क़रीबी रिश्तेदार की मौजूदगी में दूर का रिश्तेदार कैसे भेज दे? बाज़ लोग दूर के रिश्तेदार को हरगिज़ भेजने नहीं देते। ये सब उमूर क़ाबिले इस्लाह हैं।

(इस्लाहुर्रुसूम पेज 177)

बरसी मनाना

मौजूदा ज़माने की एक रस्म यह है कि जिस दिन किसी का ख़ुसूसन किसी बड़े आदमी का, जो हैसियत वाला या सियासी व समाजी तौर पर मशहूर व नामी हो, इन्तिक़ाल हो जाये, हर साल उस तारीख़ को इज्तिमा किया जाता है, जलसे-जुलूस आयोजित किये जाते हैं, दुआएँ होती हैं और बड़े एहतिमाम से उसको मनाया जाता है। क़ुरआन व सुन्नत, सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन, दीन के इमामों और पुराने बुज़ुर्गों किसी से इसका कोई सुबूत नहीं, इसलिये इसका छोड़ना वाजिब है।

(इमदादुल-मुफ़्तीन पेज 157-161)

उर्स मनाना

आजकल बुज़ुर्गाने दीन के मज़ारों पर बड़ी धूम-धाम से मुक़र्ररा (निर्धारित) तारीख़ों में उर्स किये जाते हैं और मख़्लूक़ की एक बड़ी तादाद उनमें शिर्कत करती है और अपने लिये बरकत व सवाब का सबब समझती है। याद रखना चाहिये किः

सुन्नत की पैरवी करने वाले बुज़ुर्गों के मज़ारों पर किसी ख़ास दिन या तारीख़ या वक़्त की पाबन्दी के बग़ैर हाज़िर होना बरकत का सबब है लेकिन मुक़र्ररा तारीख़ या वक़्त की पाबन्दी को ज़रूरी समझना या सवाब का सबब समझना या वहाँ मेला लगाना बिद्अ़त है। ख़ुसूसन आजकल तो गाने-बाजे, बेपर्दगी और तरह-तरह के हराम कामों का रिवाज भी उर्सों में बहुत हो गया है। अल्लाह तआ़ला इन तमाम बिद्अ़तों और गुनाहों से बचने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाये, आमीन।

क़ब्र पर चादरें चढ़ाना और मन्नत मानना

बुज़ुर्गों के मज़ारों पर कसरत से चादरें चढ़ाने और उनके नाम की मन्नत मानने का आ़म रिवाज है, ये सब बातें शरीअ़त के ख़िलाफ़ हैं और बिल्कुल हराम हैं। (सुन्नत व बिद्अ़त पेज 76)

क़ब्र पर चढ़ावा चढ़ाना और उसको तबर्रुक समझना

जुमे की रात, शबे बराअत और दूसरे मौक़ों पर मज़ारों और क़ब्रों पर क़िस्म-क़िस्म के खाने, पीने की चीज़ें, मेवे, मिठाईयाँ, मज़ार वाले को ख़ुश करने की ग़र्ज़ से चढ़ाई जाती हैं या मन्नत पूरी होने पर रखी जाती हैं, और फिर क़ब्र से उठाकर मुजाविरों और हाज़िरीन पर तक़सीम कर दी जाती हैं, जिसको मज़ार वाले का तबर्रुक (बरकत की चीज़) समझा जाता है।

याद रखिये! यह चढ़ावा चढ़ाना हराम है क्योंकि अल्लाह तआ़ला के सिवा किसी की इबादत जायज़ नहीं और उसको हलाल व तबर्रुक समझने में कुफ़्र का अन्देशा है, ख़ुदा की पनाह। (सुन्नत व बिद्अ़त पेज 76)

क़ब्र का तवाफ़ और सज्दा

बुज़ुर्गों के मज़ारों पर लोग मज़ार वाले के सामने सज्दा करने और चारों कोनों का तवाफ़ करने में भी मशग़ूल नज़र आते हैं जिनका बिल्कुल हराम होना एक खुली हुई बात है, बल्कि ये काम अगर इबादत के इरादे से हों तो खुला कुफ़्र हैं। और अगर सिर्फ़ ताज़ीम के लिए हों तो इबादत के लिए न हों तब भी हराम और गुनाहे कबीरा (बड़ा गुनाह) होने में तो कोई शक ही नहीं, अल्लाह की पनाह। (सुन्नत व बिद्अ़त पेज 77)

क़ब्र का मुजाविर बनना

बाज़ लोग बज़ाहिर दुनिया को छोड़कर मज़ारों पर जा पड़ते हैं और जो कुछ मज़ारों पर आता है उस पर ज़िन्दगी बसर करते हैं। अक्सर उनमें से भंग, चरस और दूसरे हराम कामों में मुब्तला रहते हैं। सो मज़ारों पर इस तरह जा पड़ना होना बिल्कुल मना है और इस ग़लत रस्म में उनकी मदद करना भी जायज़ नहीं। (सुन्नत व बिद्अ़त पेज 77)

औरतों का क़ब्रिस्तान जाना

आजकल क़ब्रिस्तान ख़ासकर बुज़ुर्गों के मज़ारों पर औरतों का आना-जाना कसरत से है। जानना चाहिये कि औरतों के वास्ते क़ब्रों की ज़ियारत की ये शर्तें हैं: जाने वाली औरत जवान न हो बुढ़िया हो, ख़ूब पर्दे के साथ जाये फिर वहाँ जाकर शिर्क न करे, बिद्अ़त न करे, क़ब्र पर फूल न चढ़ाये, चादर न चढ़ाये, न क़ब्र वाले से कुछ माँगे, न मन्नत माने, रोना-धोना और नौहाबाज़ी न करे, और भी किसी शरीअ़त के ख़िलाफ़ काम का इर्तिकाब न करे। इन शर्तों की मुकम्मल पाबन्दी करने वाली औरत क़ब्रिस्तान जा सकती है। और जो औरत इन शर्तों की पाबन्दी नहीं कर सकती उसका क़ब्रिस्तान और मज़ारों पर जाना हराम है। तजुर्बा और मुशाहदा (अनुभव) भी यही है कि औरतें इन शर्तों की क़तई पाबन्दी नहीं करतीं, ख़ास तौर से उर्स वग़ैरह के मौक़े पर, जो आजकल सरासर बुराईयों और बिद्अ़तों और ख़राबियों से मुरक्कब होता है। इसलिये उस मौक़े पर उनका जाना बेशक हराम और नाजायज़ है। हदीस में ऐसी औरतों पर लानत आई है।

(इमदादुल-अहकाम पेज 720 जिल्द 1)

सवाब पहुँचाने के लिये उजूरत देकर क़ुरआन पढ़वाना

बाज़ लोग ऐसा भी करते हैं कि मरहूम को सवाब पहुँचाने के लिये उजूरत पर एक आदमी रख लेते हैं जो रोज़ाना मरहूम की क़ब्र पर क़ुरआन पाक की तिलावत करता है और अपने गुमान के मुताबिक़ मरहूम को सवाब पहुँचाता है। सो वाज़ेह हो कि उजूरत पर सवाब पहुँचाने के लिये क़ुरआने करीम पढ़ना और पढ़वाना हराम है। बाज़ लोग आयते करीमा और कलिमा-ए-तैयबा का ख़त्म भी सवाब पहुँचाने के लिये उजूरत देकर कराते हैं, सो उनका भी उजूरत देकर ख़त्म कराना हराम है।

(अहसनुल-फ़तावा पेज 375 जिल्द 1)

नवाँ बाब

मौत के बाद मोमिन के हालात

ऐज़ाज़ व इकराम, क़ब्र, मुन्कर-नकीर, सवाब पहुँचाना और सदक़ा-ए-जारिया के फ़ायदे, रूहों के रहने की जगह, रूहों की क़िस्में।

मोमिन के लिये मौत भी नेमत है

अल्लाह तआ़ला का इरशाद है:

كُلُّ نَفْسٍ ذَآئِقَةُ الْمَوْتِ، وَاِنَّمَا تُوَفَّوْنَ اُجُوْرَكُمْ يَوْمَ الْقِيَامَةِ فَمَنْ زُحْزِحَ عَنِ النَّارِ وَاُدْخِلَ الْجَنَّةَ فَقَدْفَازَ. وَمَا الْحَيٰوةُ الدُّنْيَا اِلَّا مَتَاعُ الْغُرُوْرِ. (سورۃ آل عمران:۱۸۵)

तर्जुमाः हर जान को मौत का मज़ा चखना है और तुमको पूरे दिये जायेंगे बदले क़ियामत ही के दिन। पस जो शख़्स दोज़ख़ से बचा लिया गया और जन्नत में दाख़िल किया गया सो वह पूरा कामयाब हुआ, और दुनियावी ज़िन्दगी तो कुछ भी नहीं सिर्फ़ धोखे का सौदा है।

इस आयत और इस मज़मून की दूसरी बहुत सी आयतों से साबित है कि जिस तरह ज़िन्दगी दीनी और दुनियावी दोनों लिहाज़ से बहुत बड़ी नेमत है, इसी तरह मौत भी दीनी और दुनियावी लिहाज़ से बहुत बड़ी नेमत है, ख़ासकर मौत भी ऐसी जो दोनों जहान की राहत, रहमत और आ़फ़ियत और ईमान की सलामती के साथ हो। क्योंकि ज़िन्दगी आ़रज़ी (अस्थाई) और ख़त्म होने वाली है। इसके बाद मौत और मौत के बाद का आ़लम होगा। अगर किसी ने मौत के बाद की फ़िक्र दुनियावी ज़िन्दगी में की और इताअ़त व फ़रमाँबरदारी में ज़िन्दगी गुज़ारी तो दुनिया में आने का गोहरे मक़सूद पा लिया और कामयाब होकर मौत की गोद में गया। इस बारे में

क़ुरआने करीम ने बहुत वाज़ेह तरीक़े से तमाम हालात तफ़सील के साथ अनेक मक़ामात पर बयान फ़रमाये हैं जो नसीहत कुबूल करने वालों के लिये बहुत बड़ा ज़ख़ीरा और नसीहत का सामान है, और मेहरूम रहने वालों के लिये अफ़सोस के हाथ मलने और शर्मिन्दगी के सिवा कुछ हासिल नहीं। इसी लिये हदीसों में हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अ़क़्लमन्द उस शख़्स को क़रार दिया है जिसने अपनी ज़िन्दगी के मक़सद को समझ कर और दुनिया में आने की ग़र्ज़ को मालूम करके मौत को कसरत से याद रखा और मौत के बाद की ज़िन्दगी की तैयारी में लगा रहा, और आख़िरत के लिये सब कुछ किया और दुनिया में एक मुसाफ़िर की तरह ज़िन्दगी गुज़ार कर रुख़्सत हो गया, जैसा कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद हैः

كُنْ فِى الدُّنْيَا كَاَنَّكَ غَرِيْبٌ اَوْ عَابِرُ سَبِيْلٍ.

तर्जुमाः तुम दुनिया में इस तरह रहो जैसे तुम कोई मुसाफ़िर या राहगीर हो।

हदीसः हज़रत आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा से रिवायत बयान की गयी है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- मोमिन को हर (नागवार) बात का अज्र दिया जायेगा, यहाँ तक कि दम निकलने के वक़्त की कै़, हिचकी वग़ैरह भी। (नूरुस्सुदूर पेज 24)

हदीसः हज़रत उबैद बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि हज़रत आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा से मैंने अचानक मौत के बारे में पूछा कि आया उससे नफ़रत करनी चाहिये? आपने फ़रमाया- क्यों? उसे ना-पसन्द क्यों किया जाये? मैंने रसूले अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से इस बारे में पूछा तो आपने इरशाद फ़रमाया था कि मौत मोमिन के लिये तो राहत की चीज़ है लेकिन बदकारों के लिये निहायत हसरत व अफ़सोस की चीज़ है। (नूरुस्सुदूर पेज 25)

मौत के वक़्त मोमिन की इ़ज़्ज़त व ख़ुशख़बरी

हज़रत बरा बिन आ़ज़िब रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि जब मोमिन दुनिया से

रुख़्सत और आख़िरत की आमद की हालत में होता है तो उसके पास आसमान से फ़रिश्ते आते हैं जिनके चेहरे सूरज की तरह रोशन होते हैं। उनके पास जन्नत का कफ़न होता है और जन्नत की ख़ुशबू होती है। यहाँ तक कि जहाँ तक नज़र जाए वहाँ तक के फ़ासले पर बैठ जाते हैं, फिर मौत का फ़रिश्ता उसके सर के पास आकर बैठता है और कहता है:

"ऐ जान! जिसको ख़ुदा के हुक्मों पर इत्मीनान था, अल्लाह की मग़फ़िरत और रज़ामन्दी की तरफ़ चल।"

चुनाँचे वह इस तरह (आसानी से) निकलती है जैसे मशक से (पानी का) क़तरा ढलक आता है अगरचे तुम (ज़ाहिर में) इसके ख़िलाफ़ हालत देखो (कि सख़्ती से जान निकली, तो वह सख़्ती जिस्म पर होती है रूह को राहत होती है) ग़र्ज़ फ़रिश्ते उस रूह को निकालते हैं और निकालने के बाद मौत के फ़रिश्ते के हाथ में पलक झपकते के लिये भी नहीं छोड़ते बल्कि उसको (जन्नती) कफ़न और ख़ुशबू में रख लेते हैं और उससे ख़ुशबू ऐसी फूटती है जैसे दुनिया में मुश्क की तेज़ से तेज़ ख़ुशबू हो। फिर वे उसको लेकर ऊपर को चढ़ते हैं और फ़रिश्तों के जिस गिरोह पर उनका गुज़र होता है वे पूछते हैं कि यह पाकीज़ा रूह कौन है? वे उसका अच्छे से अच्छा नाम जिससे वह दुनिया में मशहूर था बतलाते हैं कि फ़ुलाँ पुत्र फ़ुलाँ है, यहाँ तक कि (उसी हालत से) वे उसको इस क़रीब वाले आसमान (यानी दुनियावी आसमान) की तरफ़ फिर वहाँ से (सब आसमानों से गुज़ार कर) सातवें आसमान की तरफ़ ले जाते हैं। अब अल्लाह तआला का इरशाद होता है कि इसका (आमाल) नामा इल्लिय्यीन में लिख दो, और इसको (क़ब्र के सवालों के लिये) फिर ज़मीन की तरफ़ ले जाओ।

पस उसकी रूह बदन में लौटाई जाती है। (आ़लमे बर्ज़ख़ के मुनासिब न कि दुनिया की तरह) फिर उसके पास दो फ़रिश्ते आते हैं और उसको बिठाते हैं और उससे कहते हैं कि तेरा रब कौन है? और तेरा दीन क्या है? वह कहता है- मेरा रब अल्लाह है और मेरा दीन इस्लाम है। फिर वे कहते हैं कि यह शख़्स (यानी मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) कौन थे जो तुम्हारी तरफ़ और तुममें भेजे गए? वह कहता है कि यह अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) हैं। वे कहते हैं- तुझको कैसे मालूम हुआ? वह कहता है कि मैंने क़ुरआन पढ़ा और उस पर ईमान लाया और उसकी

तस्दीक़ की। फिर आसमान से एक आवाज़ देने वाला (अल्लाह की तरफ़ से) आवाज़ देता है कि मेरे बन्दे ने सही जवाब दिया है, इसके लिये जन्नत का फ़र्श बिछा दो और इसको जन्नत का लिबास पहना दो और इसके वास्ते जन्नत की तरफ़ एक दरवाज़ा खोल दो। पस उसको जन्नत की हवा और ख़ुशबू पहुँचती है और जहाँ तक नज़र जाए वहाँ तक उसके लिये क़ब्र में कुशादगी (खुलापन) हो जाती है और उसके पास एक उम्दा लिबास, उम्दा ख़ुशबू वाला शख़्स आता है और उससे कहता है कि तुझको ख़ुशख़बरी हो कि यह वही (मुबारक) दिन है जिसका तुझसे वायदा होता था। वह पूछता है- तू कौन है? तेरे तो चेहरे से ख़ैर (भलाई) मालूम होती है। वह कहता है- मैं तेरा नेक अ़मल हूँ। मय्यित बार-बार कहता है कि "ऐ रब! (जल्दी) क़ियामत क़ायम कर दीजिये कि मैं अपने घर वालों में जाऊँ (जो क़ियामत में मिलेंगे)। (शौक़े वतन पेज 17-20, अबू दाऊद के हवाले से, अहमद, हाकिम, बैहक़ी)

मरने के बाद मुर्दों से मुलाक़ात होती है

हज़रत अबू अय्यूब अन्सारी रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- जब मोमिन की रूह क़ब्ज़ की जाती है तो ख़ुदा के मरहूम बन्दे (जिनका पहले इन्तिक़ाल हो गया था) इस तरह आगे बढ़कर उससे मिलते हैं जैसे दुनिया में किसी ख़ुशख़बरी लाने वाले से मिला करते हैं। फिर (उनमें से बाज़े) कहते हैं कि ज़रा इसको मोहलत तो दो कि दम ले ले, क्योंकि (दुनिया में) यह बड़ी परेशानी और तकलीफ़ में था। उसके बाद उससे पूछना शुरू करते हैं कि फ़ुलाँ शख़्स का क्या हाल है? क्या उसने निकाह कर लिया है? फिर अगर ऐसे शख़्स का हाल पूछ बैठे जो उस शख़्स से पहले मर चुका है और उसने कह दिया कि वह तो मुझसे पहले मर चुका है तो "इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन" पढ़कर कहते हैं कि "बस उसको उसके ठिकाने यानी दोज़ख़ की तरफ़ ले जाया गया है, वह तो जाने की भी बुरी जगह है और रहने की भी बुरी जगह है।"

मरहूम रिश्तेदारों पर ज़िन्दों के आमाल पेश होना

इसी हदीस के आख़िर में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का

इरशाद है कि तुम्हारे आमाल तुम्हारे उन रिश्तेदारों और ख़ानदान वालों के सामने जो आख़िरत (आलमे बर्ज़ख़) में हैं पेश किये जाते हैं, अगर नेक अमल हुआ तो ये ख़ुश होते हैं और कहते हैं कि ऐ अल्लाह! यह आपका फ़ज़्ल और रहमत है, पस अपनी यह नेमत उस पर पूरी कीजिये और इसी पर उसको मौत दीजिये। और उन पर गुनाहगार का भी अमल पेश होता है तो वे कहते हैं कि ऐ अल्लाह! उसके दिल में नेकी डाल दे, जो तेरी रज़ा और निकटता का सबब हो जाये।

(शौक़े वतन पेज 24,25, शरहुस्सदर के हवाले से, तबरानी व इब्ने अबिद्दुन्या)

मुन्कर-नकीर और क़ब्र का मोमिन के साथ नर्म रवैया

हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा ने कहा कि या रसूलल्लाह! जब से आपने मुन्कर-नकीर की आवाज़ और क़ब्र के भींचने से मुझे डराया है कोई चीज़ मुझको अच्छी नहीं मालूम होती। आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया- ऐ आयशा! मुन्कर और नकीर की आवाज़ मोमिन के कान में ऐसी आसान मालूम होगी जैसे आँख में सुर्मा लगाना और क़ब्र का भींचना मोमिन के वास्ते ऐसा होगा जैसे शफ़ीक़ माँ बच्चे का सर नर्मी से दबाती है। जिस वक़्त बच्चा कहता है कि मेरे सर में दर्द है। लेकिन ऐ आयशा! (रज़ियल्लाहु अन्हा) ख़राबी उसकी है जो अल्लाह के बारे में शक करता था, वह इस तरह क़ब्र में पीसा जायेगा जैसे भारी पत्थर से अंडा पीसा जाये।

(नूरुस्सुदूर पेज 64)

रूह का अपने नहलाने, कफ़न और दफ़न को देखना

हज़रत अमर बिन दीनार रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि जो शख़्स मरता है उसकी रूह एक फ़रिश्ते के हाथ में रहती है, अपने जिस्म को देखती है कि क्योंकर उसको नहलाया जाता है और क्योंकर कफ़न देते हैं, क्योंकर लेकर चलते हैं और लाश अभी तख़्ते पर होती है उससे फ़रिश्ते कहते हैं कि लोग जो तेरी तारीफ़ कर रहे हैं सुन ले, (यह ख़ुशख़बरी अगली नेमतों की शुरूआत है)। (शौक़े वतन पेज 26, अबू नईम के हवाले से)

कौन-कौन लोग जन्नती हैं?

हज़रत इब्ने मसऊद रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि फ़रमाया रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने- जो शख़्स रमज़ान शरीफ़ के अख़ीर महीने (यानी आख़िरी हिस्से) में इन्तिक़ाल करे वह जन्नती होगा। और जो शख़्स अरफ़ा के दिन यानी नवीं तारीख़ ज़िलहिज्जा के अख़ीर दिन में मरेगा वह जन्नती होगा। और जो शख़्स सदक़ा देकर मरेगा वह जन्नती होगा। (नूरुस्सुदूर पेज 147)

हज़रत हुज़ैफ़ा रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि फ़रमाया रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने- जो शख़्स मरते वक़्त ख़ालिस नीयत से "ला इला-ह इल्लल्लाहु" कहेगा वह जन्नती होगा, और जिसने अल्लाह के वास्ते रोज़ा रखा और उसी हाल में मर गया वह जन्नती होगा। और जो सच्ची नीयत से सदक़ा देकर मरेगा वह जन्नती होगा। (नूरुस्सुदूर पेज 148)

हज़रत इब्ने अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हुमा से रिवायत है कि फ़रमाया रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने- जो कोई हर नमाज़ के बाद आयतुल-कुर्सी पढ़ता रहेगा तो अल्लाह तआला उसको शाकिरीन का दिल अता फ़रमायेगा और सिद्दीक़ीन के जैसा अमल देगा और नबियों के जैसा सवाब देगा और उस पर अपनी रहमत नाज़िल फ़रमायेगा और जन्नत में दाख़िल होने से (सिर्फ़ मौत उसे रोकती है, यानी मौत आने पर फ़ौरन जन्नत में दाख़िल होगा) (नूरुस्सुदूर पेज 147)

हज़रत इब्ने उमर रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि फ़रमाया रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने- जो मोमिन जुमा के दिन या जुमा की रात में मरेगा अल्लाह तआला उसको क़ब्र के अज़ाब से निजात देगा। और हज़रत अता बिन यसार रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि फ़रमाया नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने- जो मुसलमान मर्द या औरत जुमे के दिन या जुमे की रात में मर गया वह क़ब्र के अज़ाब और मुन्कर-नकीर के सवाल व जवाब से अमन में होगा, और क़ियामत के दिन उससे हिसाब नहीं लिया जायेगा और उसके आमाल उसके जन्नती होने पर गवाही देंगे। (नूरुस्सुदूर पेज 177)

क़ब्र का अज़ाब

हज़रत इमाम बुख़ारी रहमतुल्लाहि अलैहि ने हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत की है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम (उम्मत को सिखाने के लिये) यह दुआ पढ़ा करते थे:

اللّٰهُمَّ اِنِّیْ اَعُوْذُ بِكَ مِنْ عَذَابِ الْقَبْرِ

"अल्लाहुम्-म इन्नी अऊज़ु बि-क मिन अज़ाबिल् क़ब्रि"

तर्जुमाः यानी ऐ अल्लाह! मैं तुझसे पनाह माँगता हूँ अज़ाबे क़ब्र से)

(नूरुस्सुदूर पेज 82)

हज़रत आयशा सिद्दीक़ा रज़ियल्लाहु अन्हा से रिवायत है कि फ़रमाया रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने- क़ब्र का अज़ाब हक़ है (ऐसे) मुर्दों को (जिन्होंने गुनाहों से तौबा न की हो) क़ब्र में अज़ाब दिया जाता है और (इन्सानों और जिन्नातों के अलावा) सब जानदार क़ब्र के अज़ाब (की आवाज़) सुनते हैं। (नूरुस्सुदूर पेज 82)

क़ब्र में नेक आमाल की तरफ़ से मय्यित का दिफ़ा

हज़रत कअ्ब रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि जब नेक बन्दा क़ब्र में रखा जाता है तो उसके नेक आमाल नमाज़, रोज़ा, हज, जिहाद, सदक़ा उसके पास आते हैं और अज़ाब के फ़रिश्ते उसके पैर की तरफ़ से आते हैं तो नमाज़ कहती है कि तुम इससे दूर रहो, इधर से तुम्हारा रास्ता नहीं, यह इस पैर से मस्जिद में आया है और खड़े होकर नमाज़ पढ़ी है। फिर सर की तरफ़ से आते हैं तो रोज़ा कहता है कि इधर से तुम्हारा रास्ता नहीं है, इसने दुनिया में अल्लाह के वास्ते भूख-प्यास की तकलीफ़ उठाई है। फिर दूसरी तरफ़ से आते हैं तो हज और जिहाद कहते हैं कि तुम इससे दूर रहो, इसने अपने ऊपर बहुत तकलीफ़ें उठाई हैं और अल्लाह के वास्ते हज व जिहाद किये हैं। सदक़ा कहता है कि तुम इससे दूर रहो, इसने इन हाथों से सदक़ा दिया है इधर से तुम्हारा रास्ता नहीं है। उसके बाद ग़ैब से आवाज़ आती है कि तुझको मुबारक हो, ज़िन्दगी में तू अच्छा था, मरने के बाद भी अच्छा है। रहमत के फ़रिश्ते जन्नत से फ़र्श लाते हैं और उसकी क़ब्र में बिछाते हैं और जहाँ तक निगाह पहुँचती है यहाँ तक उसकी क़ब्र कुशादा की (यानी

खोल दी) जाती है और नूर की किन्दील जन्नत से लाकर उसकी क़ब्र में रखते हैं और क़ियामत तक क़ब्र रोशन रहती है। एक दूसरी रिवायत में यह है कि क़ब्र में जन्नत की तरफ़ एक दरवाज़ा खोल दिया जाता है, वह जन्नत को देखता है और उसकी ख़ुशबू पाता है और उसके नेक आमाल कहते हैं कि हमारे लिये तूने दुनिया में तकलीफ़ उठाई, आज हम तेरे साथ रहेंगे, यहाँ तक कि तुझको जन्नत में पहुँचायेंगे। (नूरुस्सुदूर पेज 139)

सवाब पहुँचाने और सदक़ा-ए-जारिया का फ़ायदा

हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि मैंने सुना रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को, फ़रमाते थे- जिस घर में कोई मर जाता है और घर वाले उसकी तरफ़ से सदक़ा करते हैं तो उस सदक़ा के सवाब को हज़रत जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम नूर के तबाक़ में रखकर उसकी क़ब्र पर ले जाते हैं और खड़े होकर कहते हैं- ऐ क़ब्र वालो! यह तोहफ़ा तुम्हारे घर वालों ने तुम्हें भेजा है, इसको क़बूल करो। पस वह मुर्दा ख़ुश होता है और अपने पड़ोसी को ख़ुशख़बरी सुनाता है और उसके पड़ोसी जिनको कोई तोहफ़ा नहीं पहुँचता है ग़मगीन रहते हैं। (नूरुस्सुदूर पेज 183)

माँ-बाप की तरफ़ से हज करना

हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि फ़रमाया रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने- जो शख़्स अपने माँ-बाप के मरने के बाद उनकी तरफ़ से हज करे तो अल्लाह तआ़ला हज करने वाले को दोज़ख़ से आज़ाद करता है और उन दोनों को पूरे-पूरे हज का सवाब मिलता है बग़ैर कमी के। (नूरुस्सुदूर पेज 138)

औलाद के इस्तिग़फ़ार से मरहूम माँ-बाप को फ़ायदा पहुँचता है

हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि नेक बन्दे को अल्लाह तआ़ला जन्नत में बहुत बड़ा दर्जा इनायत फ़रमायेगा। वह ताज्जुब करके कहेगा- ऐ परवर्दिगार! यह दर्जा कहाँ से मुझको मिला? अल्लाह

तआ़ला फ़रमायेगा- तेरे लड़के के इस्तिग़फ़ार और दुआ़ की बरकत से।

(नूरुस्सुदूर पेज 140)

मरने के बाद सात चीज़ों का सवाब मिलता रहता है

हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि फ़रमाया रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने- जब मोमिन इन्तिक़ाल करता है तो उसका अ़मल ख़त्म हो जाता है मगर सात चीज़ों का सवाब मरने के बाद भी पहुँचता है।

1. अव्वल जिसने किसी को दीन का इल्म सिखाया तो उसका सवाब बराबर पहुँचता रहता है जब तक उसका इल्म दुनिया में जारी रहे।

2. दूसरे यह कि उसकी नेक औलाद हो और उसके हक़ में दुआ़ करती रहे।

3. तीसरे यह कि क़ुरआन शरीफ़ (का कोई नुस्ख़ा) छोड़ गया हो (लोग उसे पढ़ते हों)

4. चौथे यह कि मस्जिद बनवाई हो।

5. पाँचवे यह कि मुसाफ़िरों के आराम के लिये मुसाफ़िर ख़ाना बनवाया हो।

6. छठे यह कि कुआँ या नहर खुदवाई हो।

7. सातवें यह कि सदक़ा अपनी ज़िन्दगी में दिया हो। तो जब तक ये चीज़ें मौजूद रहेंगी, इन सबका सवाब पहुँचता रहेगा। (नूरुस्सुदूर पेज 140)

सदक़ा-ए-जारिया की दो और सूरतें

हज़रत अबू सईद ख़ुदरी रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि फ़रमाया रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने- जिसने किसी को कुछ क़ुरआन शरीफ़ पढ़ाया या कोई मसला बताया तो अल्लाह तआ़ला उसके सवाब को क़ियामत तक ज़्यादा करता है, यहाँ तक कि वह पहाड़ के जैसा हो जाता है। (नूरुस्सुदूर पेज 140)

मुर्दे सलाम का जवाब देते हैं

हज़रत अबूज़र रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने अ़र्ज़ किया- या रसूलल्लाह

(सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम)! क्या हमारा सलाम मुर्दे सुनते हैं? आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- हाँ सुनते हैं और जवाब देते हैं, मगर तुम नहीं सुन सकते। (नूरुस्सुदूर पेज 103)

मरहूम पर चार तरह एहसान करना

हज़रत अबू उसैद रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि एक मर्द नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पस आया और अ़र्ज़ किया- या रसूलल्लाह (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम)! मेरे माँ-बाप इन्तिक़ाल कर चुके, कोई सूरत ऐसी हो सकती है कि मैं अपने माँ-बाप पर एहसान करूँ? आपने फ़रमाया- हाँ! चार तरीक़े से तू उनके साथ एहसान कर सकता है:

1. एक तो उनके हक़ में दुआ़ करना।

2. दूसरे जो (अच्छी) वसीयत या नसीहत तुमको की है उस पर क़ायम रहना।

3. तीसरे जो दोस्त उनके हैं उनका सम्मान और इ़ज़्ज़त करना।

4. चौथे जो उनका ख़ास रिश्तेदार और क़रीबी है उसके साथ मुहब्बत और मेल-जोल रखना। (नूरुस्सुदूर पेज 125)

मय्यित की ख़ूबियाँ बयान करो

हज़रत इब्ने उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- मय्यित की ख़ूबियों का ज़िक्र करो और बुराईयों से अपनी ज़बान को बन्द करो। (नूरुस्सुदूर पेज 136)

रूहों के रहने की जगह

रूहों के रहने की जगह में रिवायतें मुख़्तलिफ़ (अलग-अलग) हैं और सब सही हैं, और उलेमा के भी क़ौल इस बारे में कई तरह के हैं लेकिन तहक़ीक़ करने के बाद मालूम होता है कि हक़ीक़त में उन रिवायतों में कोई इख़्तिलाफ़ (टकराव और भिन्नता) नहीं है, सब रिवायतें अपनी-अपनी जगह पर सही और दुरुस्त हैं। अ़ल्लामा इब्ने क़य्यिम रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इस मसले को ख़ूब समझा है और अच्छी तहक़ीक़ से बयान किया है, जिससे रिवायतों के सही होने और एक दूसरे के मुवाफ़िक़ होना ज़ाहिर हो जाता है।

जानना चाहिये कि दुनिया और आख़िरत के दरमियान एक आलम (जहान) है, उसका नाम बर्ज़ख़ है, यही रूहों के रहने की जगह है। बर्ज़ख़ दुनिया से बड़ा और आख़िरत से बहुत छोटा है, उसके दर्जे और तबक़े बहुत हैं और आमाल के मुवाफ़िक़ रूहों के भी मुख़्तलिफ़ (अलग-अलग) दर्जे हैं। ये रूहें अपने-अपने आमाल के मुवाफ़िक़ उन दर्जों और तबक़ों में रहेंगी।

(नूरुस्सुदूर पेज 13)

रूह का बदन से पाँच क़िस्म का ताल्लुक़ है

जानना चाहिये कि रूह का ताल्लुक़ बदन के साथ पाँच क़िस्म का है।

1. पहला ताल्लुक़ माँ के (पेट) में और यह ताल्लुक़ कमज़ोर है।

2. दूसरा ताल्लुक़ पैदा होने के बाद उम्र भर तक, यह ताल्लुक़ पहले से ताक़तवर है।

3. तीसरा ताल्लुक़ नींद की हालत में, यह ताल्लुक़ बहुत कमज़ोर और ज़ईफ़ है क्योंकि ख़्वाब में रूह का ताल्लुक़ आलमे बर्ज़ख़ से हो जाता है इसी लिये बदन का ताल्लुक़ कमज़ोर हो जाता है और (सच्चा) ख़्वाब जो कुछ इनसान देखता है वह उसी आलमे बर्ज़ख़ की सैर का नतीजा है।

4. चौथा ताल्लुक़ बर्ज़ख़ का जो मौत के बाद होता है। उसमें मौत के सबब से अगरचे रूह बदन को छोड़ देती है लेकिन रूह और बदन में पूरी तरह जुदाई नहीं होती बल्कि बदन के साथ रूह को एक क़िस्म का ताल्लुक़ और वास्ता बाक़ी रहता है और रूह के एक जगह से दूसरी जगह आने-जाने में या एक आलम से दूसरे आलम में आने-जाने में कुछ देर नहीं होती। लम्हा भर में आती और चली जाती है। जिस तरह सोता हुआ आदमी ख़्वाब देखता है कि आन की आन में उसकी रूह इस आलमे दुनिया की सैर कर लेती है बल्कि कभी सातवें आसमान के ऊपर तक भी सैर करती है और अजायबात देखती है और दम के दम में आ जाती है। इस ताल्लुक़ की वजह से क़ब्र की ज़ियारत मसनून हुई। ज़ियारत करने वालों का सलाम रूह सुनती और जवाब देती है। यह ताल्लुक़ क़ियामत तक बाक़ी रहता है।

5. पाँचवाँ ताल्लुक़ क़ियामत के दिन का है जब मुर्दे क़ब्र से उठाये जायेंगे। यह ताल्लुक़ बहुत ही ताक़तवर, क़वी और कामिल है कि कमज़ोर नहीं हो सकता और न ख़त्म हो सकता है। पहले ताल्लुक़ात से इस ताल्लुक़

को कोई निस्बत नहीं, क्योंकि अब बदन सड़े और गलेगा नहीं और न अब नींद है न मौत। (नूरुस्सुदूर पेज 114)

रूहें चार क़िस्म की हैं

जानना चाहिये कि रूहें चार क़िस्म की हैं। एक हज़राते अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की रूहें, दूसरी नेक काम करने वाले मोमिनों की रूहें, तीसरी बदकार मोमिनों की रूहें और चौथी कुफ़्फ़ार व मुश्रिकीन की रूहें।

और जानना चाहिये कि मौत के बाद जहाँ रूहें रहती हैं उस जगह को सिवाय पैग़म्बर (अल्लाह के भेजे हुए रसूल) के दूसरा नहीं जानता, न बयान कर सकता है। आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने शबे मेराज में दोनों आ़लम की सैर की और रूहों से मुलाक़ात की और अल्लाह तआ़ला ने कितनी ही बातों से आपको आगाह किया। इस वास्ते जनाब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इस बारे में जो कुछ बयान किया है वही हक़ है और सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने जो कुछ बयान किया है उसको पैग़म्बर अ़लैहिस्सलाम से सुनकर बयान किया है, अपनी राय को दख़ल नहीं दिया।

और जबकि रूह दुनिया की चीज़ों की तरह नहीं है और न देखने में आ सकती है, इस वास्ते इसको दुनिया की किसी चीज़ पर क़ियास करना और अन्दाज़ा लगाना बहुत बड़ी ग़लती है। जैसे कोई शख़्स भूख-प्यास को लकड़ी पत्थर पर क़ियास करे या ख़ुशी-ग़मी को पेड़ और पहाड़ पर क़ियास करे तो कहा जायेगा कि यह शख़्स जाहिल बेअ़क़्ल है।

जब ये सब बातें मालूम हो गईं तो अब समझना चाहिये कि इनसान ने दुनिया में रहकर जैसे आमाल किये हैं उसके मुवाफ़िक़ उसकी रूह अपने दर्जे में रखी जाती है। नेक रूहें इल्लिय्यीन के आला दर्जे में रहती हैं, यह पैग़म्बरों की रूहें हैं। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने मेराज की रात में उन हज़रात से मुलाक़ात की है। बाज़ रूहों को हरे रंग की चिड़ियों के पोटों में जगह दी जाती है, ये जन्नत में रहती हैं और जहाँ चाहें वहाँ चली जाती हैं। ये वे शहीद हैं जो जिहाद में क़त्ल किये गए, बशर्ते कि उन पर किसी का क़र्ज़ न हो और जिन पर किसी का हक़ बाक़ी रह गया है वे जन्नत में दाख़िल होने से मेहरूम रखे जायेंगे। (नूरुस्सुदूर पेज 115)

मुहम्मद बिन अ़ब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने रिवायत किया है कि एक शख़्स रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और कहा कि या रसूलल्लाह! अगर मैं अल्लाह की राह में शहीद हूँ तो मुझको क्या बदला मिलेगा? आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- जन्नत। जब वह लौटकर चला तो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उसको बुलाकर फ़रमायाः बशर्ते कि तुझ पर किसी का क़र्ज़ न हो, यह हुक्म जिब्राईल ने अभी मुझको सुनाया है। (नूरुस्सुदूर पेज 115)

बाज़ रूहें जन्नत के दरवाज़े पर रहेंगी, बाज़ अपनी क़ब्रों में बन्द रहेंगी और उन पर सवाब व अ़ज़ाब होता रहेगा और बाज़ रूहें सातों तबक़ों के नीचे क़ैद की जायेंगी और अ़ज़ाब में गिरफ़्तार होंगी, ये रूहें मुश्रिकीन और कुफ़्फ़ार की होंगी। बाज़ रूहों को आग के तन्दूर में अ़ज़ाब दिया जायेगा और बाज़ को ख़ून की नहर में। पैग़म्बर और शहीद जन्नत में रहते हैं और अल्लाह तआ़ला के हुक्म व इजाज़त से जहाँ चाहें जाते हैं, उनके सिवा और लोगों की रूहें बर्ज़ख़ में रहती हैं और उनका ताल्लुक़ क़ब्र से रहता है और सवाब मिलता है या अ़ज़ाब होता है। इसी को क़ब्र का सवाब या क़ब्र का अ़ज़ाब कहते हैं। (नूरुस्सुदूर पेज 115)

रूहें मुख़्तलिफ़ अन्दाज़ में रहती हैं

मोमिनों की रूहें मुख़्तलिफ़ हालतों में रहती हैं। बाज़ चिड़ियों की शक्ल में जन्नत के दरख़्तों पर रहती हैं और बाज़ हरे रंग की चिड़ियों के अन्दर होकर और बाज़ सफ़ेद चिड़ियों के अन्दर होकर और बाज़ क़िन्दीलों में जो अ़र्श के नीचे लटकती हैं और बाज़ जन्नती आदमी की सूरत में और बाज़ की सूरत नई तरह की, उनके नेक आमाल के मुनासिब बनाई जायेगी और बाज़ दुनिया में सैर करती हैं और अपने बदन में भी आ जाती हैं और बाज़ दूसरे मुर्दों की रूहों से मुलाक़ात करती फिरती हैं और बाज़ रूहें हज़रत मीकाईल अ़लैहिस्सलाम की ज़िम्मेदारी में रहती हैं और बाज़ हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम की ज़िम्मेदारी में। रूहों के रहने की जगह में हदीसें और सहाबा के क़ौल बहुत हैं, मगर हम एक हदीस यहाँ बयान करते हैं।

हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हुमा से रिवायत है कि फ़रमाया रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने- शहीदों की रूहें सब्ज़ (हरे रंग

की) चिड़ियों में रहती हैं। जन्नत में नहरों पर जाती हैं और मेवे खाती फिरती हैं। फिर सोने की क़िन्दीलों में बसेरा करती हैं, जो अ़र्श के नीचे लटकती हैं। सब्ज़ चिड़ियों में रहने के मायने बाज़ उलेमा ने यह बयान किये हैं कि सब्ज़ चिड़ियों पर सवार होकर जहाँ चाहेंगी सैर करेंगे। और बाज़ उलेमा ने फ़रमाया है कि उनकी सूरत आ़लमे बर्ज़ख़ में सब्ज़ चिड़ियों के जैसी ख़ुशनुमा (अच्छी) बना दी जाती है जिस तरह फ़रिश्ते कभी इनसान की सूरत बन जाते हैं, लेकिन आख़िरत में वे रूहें इनसानी सूरत में कर दी जायेंगी। ऐसी ही रिवायत हज़रत इब्ने मसऊद, इब्ने उमर और कअ़ब रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से भी आई है। (नूरुस्सुदूर पेज 116)

मुराक़बा-ए-मौत

हज़रत ख़्वाजा अज़ीज़ुल-हसन साहिब ग़ौरी मज्ज़ूब रह.
ख़लीफ़ा हज़रत मौलाना अशरफ़ अली थानवी रहमतुल्लाहि अलैहि

तू बराय बन्दगी है याद रख
बहरे सर-अफ़गन्दगी[1] है याद रख
वरना फिर शर्मिन्दगी है याद रख
चन्द रोज़ा ज़िन्दगी है याद रख।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

तूने मन्सब[2] भी कोई पाया तो क्या
गंजे सीम व ज़र[3] भी हाथ आया तो क्या
क़सरे आलीशाँ[4] भी बनवाया तो क्या
दबदबा भी अपना दिखलाया तो क्या।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

क़ैसर और अस्कन्दर व जम[5] चल बसे
ज़ाल और सोहराब व रुस्तम[6] चल बसे
कैसे-कैसे शेर व ज़ैग़म चल बसे
सब दिखाकर अपना दम-ख़म चल बसे।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

कैसे-कैसे घर उजाड़े मौत ने
खेल कितनों के बिगाड़े मौत ने
पील-तन[7] क्या-क्या पछाड़े मौत ने
सरो-क़द[8] क़ब्रों में गाड़े मौत ने।

---

1. सर झुकाना 2. ओहदा, पद 3. सोना चांदी 4. शानदारमहल 5. मशहूर बादशाह 6. मशहूर पहलवान 7. हाथी जैसे ताक़तवर 8. लम्बे क़द वाले।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आखिर मौत है।

कूच हाँ ऐ बे-ख़बर होने को है
ता ब-कै[9] ग़फ़लत, सेहर होने को है
बाँध ले तोशा सफ़र होने को है
ख़त्म हर फ़र्द व बशर होने को है।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आखिर मौत है।

नफ़्स और शैतान हैं ख़न्जर दर बग़ल[10]
वार होने को है ऐ ग़ाफ़िल संभल
आ न जाये दीन व ईमाँ में ख़लल
बाज़ आ हाँ बाज़ आ ऐ बद-अ़मल।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आखिर मौत है।

दफ़्अ़तन[11] सर पर आ पहुँचे अजल[12]
फिर कहाँ तू और कहाँ दारुल-अ़मल[13]
जायेगा यह बे-बहा[14] मौक़ा निकल
फिर न हाथ आयेगी उम्रे बे-बदल।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आखिर मौत है।

तुझको ग़ाफ़िल फ़िक्रे उक़्बा[15] कुछ नहीं
खा न धोखा, ऐशे दुनिया कुछ नहीं
ज़िन्दगी-ए-चन्द रोज़ा कुछ नहीं
कुछ नहीं इसका भरोसा कुछ नहीं

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आखिर मौत है।

है यहाँ से तुझको जाना एक दिन
क़ब्र में होगा ठिकाना एक दिन

---

9. कब तक 10. बग़ल में छुरी 11. अचानक 12. मौत 13. अ़मल की जगह यानी दुनिया 14. क़ीमती, सुनहरा 15. आख़िरत की फ़िक्र

मुँह खुदा को है दिखाना एक दिन
अब न ग़फ़लत में गंवाना एक दिन।

एक दिन मरना है आखिर मौत है
कर ले जो करना है, आखिर मौत है।

सब के सब हैं रह्रवे कू-ए-फ़ना[16]
जा रहा है हर कोई सू-ए-फ़ना[17]

बह रही है हर तरफ़ जू-ए-फ़ना
आती है हर चीज़ से बू-ए-फ़ना।

एक दिन मरना है आखिर मौत है
कर ले जो करना है, आखिर मौत है।

चन्द रोज़ा है यह दुनिया की बहार
दिल लगा इससे न ग़ाफ़िल ज़ीनहार[18]

उम्र अपनी यूँ न ग़फ़लत में गुज़ार
होशियार ऐ मस्वे ग़फ़लत[19] होशियार।

एक दिन मरना है आखिर मौत है
कर ले जो करना है, आखिर मौत है।

है यह लुत्फ़ व ऐशे दुनिया चन्द रोज़
है यह दौरे जाम व मीना[20] चन्द रोज़

दारे फ़ानी में है रहना चन्द रोज़
अब तो कर ले कारे उक़्बा चन्द रोज़

एक दिन मरना है आखिर मौत है
कर ले जो करना है, आखिर मौत है।

इश्रते दुनिया-ए-फ़ानी हैच[21] है
ऐशे ऐशे जावेदानी हैच है

मिटने वाली शादमानी हैच है
चन्द रोज़ा ज़िन्दगानी हैच है।

एक दिन मरना है आखिर मौत है
कर ले जो करना है, आखिर मौत है।

16. फ़ना के रास्ते पर चलने वाले 17. फ़ना की तरफ़ 18. हरगिज़ 19. ग़फ़लत में पड़े हुए 20. शराब व जाम 21. बेहक़ीक़त जो चीज़ क़ाबिले ज़िक्र और क़ाबिले तवज्जोह न हो।

हो रही है उम्र मिस्ले बर्फ़[22] कम
चुपके-चुपके रफ़्ता-रफ़्ता दम-ब-दम
साँस है एक रहरवे मुल्के अ़दम[23]
दफ़्अ़तन एक रोज़ यह जायेगा थम।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

आख़िरत की फ़िक्र करनी है ज़रूर
जैसी करनी वैसी भरनी है ज़रूर
उम्र यह एक दिन गुज़रनी है ज़रूर
क़ब्र में मय्यित उतरनी है ज़रूर।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

आने वाली किससे टाली जायेगी
जान ठहरी जाने वाली जायेगी
रूह रग-रग से निकाली जायेगी
तुझपे एक दिन ख़ाक डाली जायेगी।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

तू सुन उम्रे रवाँ है तेज़-रौ[24]
छोड़ सब फ़िक्रें लगा मौला से लौ
गन्दुम अज़ गन्दुम बरौयद जौ ज़ जौ[25]
अज़ मुकाफ़ाते अ़मल ग़ाफ़िल मशो।[26]

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

बज़मे आ़लम[27] में फना का दौर है
जाय इब्रत[28] है मकामे ग़ौर है
तू है ग़ाफ़िल क्या यह तेरा तौर[29] है
बस कोई दिन ज़िन्दगानी और है।

---

22. बर्फ़ की तरह 23. आख़िरत के मुसाफ़िर 24. तेज़ चलने वाला 25. गेहूँ से गेहूँ उगता है और जौ से जौ 26. आमाल के बदले से ग़ाफ़िल मत हो 27. दुनिया 28. इबरत की जगह 29. तरीक़ा और चलन।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

सख़्त-सख़्त अमराज़[30] गो तू सह गया
चारह गर गो सख़्त जाँ भी कह गया
क्या हुआ कुछ दिन जो ज़िन्दा रह गया
एक जहाँ सैले-फ़ना[31] में बह गया।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

लाख हो क़ब्ज़े में तेरे सीम व ज़र[32]
लाख हो बालीं पे तेरे चारह-गर
लाख तू क़िलों के अन्दर छुप मगर
मौत से कोई नहीं हरगिज़ मफ़र।[33]

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

ज़ोर यह तेरा न बल काम आयेगा
और न यह तूले-अमल[34] काम आयेगा
कुछ न हंगामे अजल काम आयेगा
हाँ मगर अच्छा अ़मल काम आयेगा।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

सरकशी ज़ेरे फ़लक[35] ज़ेबा नहीं
देख जाना है तुझे ज़ेरे ज़मीं
जब तुझे मरना है एक दिन बिल्यक़ीं[36]
छोड़ फ़िक्रे ईं व आँ[37] कर फ़िक्रे दीं।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

बहरे ग़फ़लत[38] यह तेरी हस्ती नहीं
देख जन्नत इस क़द्र सस्ती नहीं

30. बीमारियों 31. फ़ना का सैलाब 32. सोना चांदी 33. भागने की जगह 34. लम्बी उम्मीद 35. आसमान के नीचे 36. निश्चित तौर पर 37 इसकी और उसकी फ़िक्र 38. लापरवाही के लिए।

रह-गुज़र दुनिया है यह बस्ती नहीं
जाय ऐश व इश्रत व मस्ती नहीं।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

ऐश कर ग़ाफ़िल न तू आराम कर
माल हासिल कर न पैदा नाम कर

यादे हक़ दुनिया में सुबह व शाम कर
जिस लिये आया है तू वह काम कर।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

माल व दौलत का बढ़ाना है अ़बस[39]
ज़ायद अज़ हाजत कमाना है अ़बस

दिल का दुनिया से लगाना है अ़बस
रहगुज़र को घर बनाना है अ़बस।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

ऐश व इश्रत के लिये इनसाँ नहीं
याद रख तू बन्दा है मेहमाँ नहीं

ग़फ़लत व मस्ती तुझे शायाँ[40] नहीं
बन्दगी कर तू अगर नादाँ नहीं।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

हुस्ने ज़ाहिर पर अगर तू जाएगा
आ़लमे फ़ानी से धोखा खायेगा

यह मुनक़्क़श[41] साँप है डस जायेगा
रह न ग़ाफ़िल याद रख पछताएगा।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

दफ़न ख़ुद सद्हा[42] किये ज़ेरे ज़मीं
फिर भी मरने का नहीं हक़्क़ुल-यक़ीं[43]

---

39. बेकार 40. मुनासिब 41. बेल बूटे वाला, ख़ूबसूरत 42. सैकड़ों 43. पूरा यक़ीन।

गिरता है दुनिया पे तू परवाना वार
गो तुझे जलना पड़े अन्जाम कार

फिर यह दावा है कि हम हैं होशियार
क्या यही है होशियारों का शिआर।[51]

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

हैफ़[52] दुनिया का तो हो परवाना तू
और करे उक़बा की कुछ परवाह न तू

किस क़द्र है अक़्ल से बेगाना तू
इस पर बनता है बड़ा फ़रज़ाना[53] तू

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

दारे फ़ानी की सजावट पर न जा
नेकियों से अपना असली घर सजा

फिर वहाँ बस चैन की बंसी बजा
इन्नहू क़द फ़ा-ज़ फ़ौज़म् मन नजा।[54]

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

कजुरओं[55] की यह चटक और यह मटक
देखकर हरगिज़ न रस्ते से भटक

साथ उनका छोड़ हाथ अपना झटक
भूल कर हरगिज़ न पास उनके फटक।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

यह तेरी मज्ज़ूब हालत और यह सिन[56]
होश में आ अब नहीं ग़फ़लत के दिन

अब तो बस मरने के दिन हर वक़्त गिन
कस कमर दरपेश[57] है मन्ज़िल कठिन।

---

51. तरीक़ा, चलन। 52. अफ़सोस 53. अक़्लमन्द 54. बेशक जिसकी निजात हो गई उसने बड़ी कामयाबी हासिल कर ली 55. टेढ़ी राह चलने वालों 56. उम्र 57 सामने।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

कर न तू पीरी[58] में ग़फ़लत इख़्तियार
ज़िन्दगी का अब नहीं कुछ एतिबार
हलक़ पर है मौत के ख़न्जर की धार
कर बस अब अपने को मुर्दों में शुमार।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

तर्क[59] अब सारी फ़ुज़ूलियात कर
यूँ न ज़ाया अपने तू औक़ात कर
रह न ग़ाफ़िल यादे हक़ दिन-रात कर
ज़िक्र व फ़िक्र हादिमुल-लज़्ज़ात[60] कर।

एक दिन मरना है आख़िर मौत है
कर ले जो करना है, आख़िर मौत है।

दर्से इब्रत

जहाँ में हैं इब्रत के हर-सू[1] नमूने
मगर तुझको अन्धा किया रंग व बू ने
कभी ग़ौर से भी यह देखा है तूने
जो मामूर[2] थे वे महल अब हैं सूने।
जगह जी लगाने की दुनिया नहीं है
यह इब्रत की जा[3] है तमाशा नहीं है।

मिले ख़ाक में अहले शाँ कैसे-कैसे
मकीं हो गये ला-मकाँ कैसे-कैसे
हुए नामवर बेनिशाँ कैसे-कैसे
ज़मीं खा गई आसमाँ कैसे-कैसे।

58. बुढ़ापे 59. छोड़ दे 60. मौत, तमाम लज़्ज़तों को ख़त्म करने वाली।
1. हर तरफ़ 2. आबाद 3. जगह।

जगह जी लगाने की दुनिया नहीं है
यह इब्रत की जा है तमाशा नहीं है।

ज़मीं के हुए लोग पेवन्द क्या-क्या
लोक व हुज़ूर व ख़ुदावन्द क्या-क्या
दिखायेगा तू ज़ोर ता चन्द क्या-क्या
अजल[4] ने पछाड़े तनूमन्द[5] क्या-क्या।

जगह जी लगाने की दुनिया नहीं है
यह इब्रत की जा है तमाशा नहीं है।

अजल ने न किसरा ही छोड़ा न दारा
इसी से सिकन्दर-सा फ़ातेह भी हारा
हर एक लेके क्या-क्या न हसरत सिधारा
पड़ा रह गया सब यूँ ही ठाठ सारा।

जगह जी लगाने की दुनिया नहीं है
यह इब्रत की जा है तमाशा नहीं है।

यहाँ हर ख़ुशी है मुबद्दल ब-सर्द गर्म[6]
जहाँ शादियाँ[7] थीं वहीं अब हैं ग़म
ये सब हर तरफ़ इन्क़िलाबाते आलम
तेरी ज़ात ही में तग़य्युर[8] हैं हर दम।

जगह जी लगाने की दुनिया नहीं है
यह इब्रत की जा है तमाशा नहीं है।

तुझे पहले बचपन ने बरसों खिलाया
जवानी ने फिर तुझको मजनूँ बनाया
बुढ़ापे ने फिर आके क्या-क्या सताया
अजल[9] तेरा कर देगी बिल्कुल सफ़ाया।

जगह जी लगाने की दुनिया नहीं है
यह इब्रत की जा है तमाशा नहीं है।

यही तुझको धुन है रहूँ सबसे बाला[10]
हो ज़ीनत निराली, हो फ़ैशन निराला

---

4. मौत 5. ताक़तवर 6. सर्दी गर्मी से बदली हुई 7. ख़ुशियाँ 8. बदलाव 9. मौत 10. ऊँचा, बुलन्द।

जिया करता है क्या यूँ ही मरने वाला?
तुझे हुस्ने ज़ाहिर ने धोखे में डाला।

जगह जी लगाने की दुनिया नहीं है
यह इबूरत की जा है तमाशा नहीं है।

वह है ऐश व इश्रत का कोई महल[11] भी
जहाँ ताक में हर घड़ी हो अजल भी
बस अब अपने इस जहल से तू निकल भी
यह तर्ज़े मअ़ीशत[12] अब अपना बदल भी।

जगह जी लगाने की दुनिया नहीं है
यह इबूरत की जा है तमाशा नहीं है।

यह दुनिया-ए-फ़ानी है महबूब तुझको
हुई वाह क्या चीज़ मरग़ूब[13] तुझको
नहीं अ़क़्ल इतनी भी मज्ज़ूब तुझको
समझ लेना अब चाहिये ख़ूब तुझको।

जगह जी लगाने की दुनिया नहीं है
यह इबूरत की जा है तमाशा नहीं है।

बुढ़ापे से पाकर पयामे क़ज़ा[14] भी
न चौंका न चेता न संभला ज़रा भी
कोई तेरी ग़फ़लत की है इन्तिहा भी
जुनूँ ता ब-कै[15] होश में अपने आ भी।

जगह जी लगाने की दुनिया नहीं है
यह इबूरत की जा है तमाशा नहीं है।

न दिल दादा-ए-शे'र गोई[16] रहेगा
न गरवीदा-ए-शोहरा जोई[17] रहेगा
न कोई रहा है न कोई रहेगा
रहेगा तो ज़िक्रे निकोई[18] रहेगा।

जगह जी लगाने की दुनिया नहीं है
यह इबूरत की जा है तमाशा नहीं है।

---

11. जगह 12. जीने का तरीक़ा 13. पसन्दीदा 14. मौत का पैग़ाम 15. ये पागलपन कब तक 16. शायरी को पसन्द करने वाला 17. शोहरत का तालिब 18. अच्छाई का ज़िक्र।

जब इस बज़्म[19] से उठ गये दोस्त अक्सर
और उठते चले जा रहे हैं बराबर
यह हर वक़्त पेशे नज़र[20] जब है मन्ज़र
यहाँ पर तेरा दिल बहलता है क्योंकर।
जगह जी लगाने की दुनिया नहीं है
यह इबूरत की जा है तमाशा नहीं है।

जहाँ में कहीं शोरे मातम बपा है
कहीं फ़क्र व फ़ाक़ा से आह व बुका[21] है
कहीं शिकवा-ए-जोर[22] व मक्र व दग़ा है
ग़र्ज़ हर तरफ़ से यही बस सदा[23] है।
जगह जी लगाने की दुनिया नहीं है
यह इबूरत की जा है तमाशा नहीं है।

मुसद्दस

गुल व गुनचा व सर्व केले रहेंगे
महकते गुलाब और बेले रहेंगे
बहुत से गुरू और चेले रहेंगे
बड़े उर्स होंगे झमेले रहेंगे।
हमें क्या जो तुर्बत[1] पे मेले रहेंगे
तहे ख़ाक[2] हम तो अकेले रहेंगे।

तनेंगे अगर शामियाने हमें क्या
रहेंगे जो गाने-बजाने हमें क्या
बनेंगे जो नक़्क़ार ख़ाने हमें क्या
खुलेंगे अगर क़हवा-ख़ाने[3] हमें क्या।

19. महफ़िल 20. आंखों के सामने 21. रोना पीटना 22. ज़ुल्म व ज़्यादती की शिकायत
23. आवाज़
1. मज़ार, क़ब्र 2. मिट्टी के नीचे 3. चाय व कॉफ़ी का दुकान

हमें क्या जो तुर्बत पे मेले रहेंगे
तहे ख़ाक हम तो अकेले रहेंगे।

अगर दोस्त अहबाब आयें हमें क्या
हुए जमा अपने-पराय हमें क्या
कोई रोये आँसू बहाये हमें क्या
पड़े होंगे हम मुँह छुपाये हमें क्या।

हमें क्या जो तुर्बत पे मेले रहेंगे
तहे ख़ाक हम तो अकेले रहेंगे।

बहन भाई सब आके रोया करेंगे
अज़ीज़ व अक़रबा जान खोया करेंगे
हमें आँसुओं में डुबोया करेंगे
पड़े बेख़बर हम तो सोया करेंगे।

हमें क्या जो तुर्बत पे मेले रहेंगे
तहे ख़ाक हम तो अकेले रहेंगे।

कोई फूल चादर चढ़ाता रहेगा
कोई शमा तुर्बत पर जलाता रहेगा
ताल्लुक़ जो दुनिया से जाता रहेगा
न रिश्ता रहेगा न नाता रहेगा।

हमें क्या जो तुर्बत पे मेले रहेंगे
तहे ख़ाक हम तो अकेले रहेंगे।

हसीनों से डेरे भी गुलज़ार होंगे
रईसों अमीरों के दरबार होंगे
पुर अहले तमाशा से बाज़ार होंगे
हमारे लिये सब ये बेकार होंगे।

हमें क्या जो तुर्बत पे मेले रहेंगे
तहे ख़ाक हम तो अकेले रहेंगे।

किसी ने हमारा किया ग़म तो क्या है
अगर कोई हो चश्मे पुर-नम[4] तो क्या है
करे हश्र तक कोई मातम तो क्या है
नहीं होंगे जब सामने हम तो क्या है।

4. आंख में पानी आना यानी रोने वाला।

हमें क्या जो तुर्बत पे मेले रहेंगे
तहे ख़ाक हम तो अकेले रहेंगे।

ग़नी होंगे अहले तवक्कुल भी होंगे
बहुत बुलबुलें आयेंगी गुल भी होंगे
अगर होंगी क़व्वालियाँ, क़ुल भी होंगे
बड़ी धूम होगी बहुत गुल भी होंगे।

हमें क्या जो तुर्बत पे मेले रहेंगे
तहे ख़ाक हम तो अकेले रहेंगे।

है जैसा अजब ताज-गंज आगरे का
जो अकबर हो अपना भी ऐसा ही रौज़ा[5]
ज़ियारत करे जिसकी आ-आके दुनिया
हो सब कुछ, मगर यह तो फ़रमाइयेगा।

हमें क्या जो तुर्बत पे मेले रहेंगे
तहे ख़ाक हम तो अकेले रहेंगे।

अर्ज़-ए-हाल

ऐ ख़ुदा! ऐ मेरे सत्तारुल-उयूब[1]
मेरे मौला मेरे ग़फ़्फ़ारुज़्-ज़ुनूब[2]

तुझ पे रोशन है मेरा हाले ज़बूँ
पारसा मैं लाख, ज़ाहिर में बनूँ

सच है मुझ सा कोई नाकारा नहीं
जुज़ ब-इक़रारे ख़ता चारा नहीं

मुझ सा कोई नफ़्स का बन्दा नहीं
मुझ सा कोई क़ल्ब[3] का गन्दा नहीं

---

5. मज़ार, क़ब्र

1. ऐबों का छुपाने वाले 2. गुनाहों को बख़्शने वाले 3. दिल।

सख़्त बद-किरदार व बद-अतवार[4] हूँ
सख़्त नालायक़ हूँ सख़्त ना-हन्जार हूँ

मैं बदी में आप हूँ अपनी मिसाल
बद-अ़मल, बद-नफ़्स, बद-ख़ू, बद-ख़िसाल

सर बसर इसयाँ[5] सरापा ऐब हूँ
मुस्तहिक़्क़े नार मैं ला-रैब[6] हूँ

सैकड़ों को तू करेगा जन्नती
एक यह ना-अहल भी उनमें सही

हैं गुनाह बेहद, न ले मुझसे हिसाब
दाख़िले जन्नत मुझे कर बेहिसाब

हूँ तेरा बन्दा, मगर बस नाम का
बन्दा हूँ मैं नफ़्से नाफ़रजाम का

सख़्त तुग़यानी पे है बहरे-जुनूब[7]
ले ख़बर कश्ती मेरी जाये न डूब

बे तेरे दिल क्या है बस एक ख़ौल है
जल्द आ, यह नाव डावाँडोल है

ग़लबा दे दे नफ़्स और शैतान पर
आ बनी है अब तो बस ईमान पर

अब तो हो जाये करम मुझ पर शताब[8]
इससे भी अब हाल क्या होगा ख़राब

थक चुका इस्लाह से मैं नातवाँ[9]
काह[10] से क्या हट सकेगा कोहे-गराँ[11]

मेरी हर कोशिश हुई नाकाम अब
दे चुकी है अब मेरी हिम्मत जवाब

हाल अबतर है दिले बरबाद का
हाँ मदद कर वक़्त है इमदाद का

यास[12] ने बस अब तो हिम्मत तोड़ दी
अब तो ले कश्ती तुझी पर छोड़ दी

---

4. बुरी आ़दत और बुरे तौर तरीक़ों वाला 5. गुनाह व नाफ़रमानी 6. बिला शक 7. गुनाहों का दरिया 8 जल्द 9. कमज़ोर 10. सूखी घास 11 भारी पहाड़ 12. ना उम्मीदी।

लाख टूटी नाव है मंजधार है
नाखुदा तू है तो बेड़ा पार है
ज़ेर होता ही नहीं नफ़्से शरीर
दस्तगीरी कर मेरी ऐ दस्तगीर[13]

नफ़्से सरकश को मेरे पामाल कर
दिल के सब रोगों का इस्तीसाल[14] कर
एक हो तो हो सके अच्छा मर्ज़
हो रहा हूँ मैं तो सर ता पा मर्ज़

मेरे बस की अब यह बीमारी नहीं
कोई सूरत अब बजुज़ ज़ारी[15] नहीं
हर क़दम पर नफ़्से बद है राहज़न[16]
नूर में भी तो यह है ज़ुल्मत-फ़गन[17]

शर[18] मिला देता है यह हर ख़ैर[19] में
काट करता है यह चलते पैर में
तौबा फिर करता हूँ मैं तौबा-शिकन[20]
मुँह नहीं तौबा का गो ऐ ज़ुल-मिनन[21]

अब तो या रब इस्तिक़ामत[22] कर नसीब
मासियत[23] के अब न मैं फटकूँ क़रीब
ज़िन्दगी हो ज़िक्र व ताअ़त में बसर
अब तेरा दामन न छूटे उम्र भर

अ़ब्द[24] हूँ मैं, बख़्श अ़ब्दियत[25] मुझे
वजहे सद इज़्ज़त[26] है यह ज़िल्लत मुझे
दीदा व दिल, दस्त व पा, गोश व ज़बाँ
सब तेरे ताबे रहें ऐ मुस्तआँ[27]

आरज़ूयें जितनी हैं मिट जायें सब
रात दिन बस मैं हूँ और तेरी तलब
कर अ़ता दिल को मेरे ज़ौक़े फ़ना
अ़ब्दे कामिल अपना तू मुझको बना

---

13. मदद करने वाला 14. ख़ात्मा 15. रोने के अलावा 16. लुटेरा 17. अन्धेरा फैलाने वाला 18. बुराई 19. भलाई 20. तौबा तोड़ने वाला 21. एहसान करने वाले 22. जमाव 23. नाफ़रमानी 24. बन्दा 25. बन्दगी 26. यानी यह मेरे लिए सैकड़ों इज़्ज़तों का सबब है 27. मददगार।

ग़ैर से बिल्कुल ही उठ जाये नज़र
तू ही तू आये नज़र देखूँ जिधर

दिल को कर दे पाक सब अग़यार[28] से
सीना भर दे तू मेरा अनवार से

कर दिले तीरह[29] में अब अपना ज़हूर
सर से लेकर ता क़दम हो जाऊँ नूर

उम्र गुज़री ख़्वार[30] फिरते दर-ब-दर
ऐ ख़ुदा! अब तो लगा दे राह पर

तू जो चाहे पाक हो मुझ सा पलीद[31]
फ़ज़्ल से तेरे नहीं कुछ भी बईद

पाक है तू, पाक कर दे दिल मेरा
नूर से इरफ़ाँ के भर दे दिल मेरा

क़ल्ब[32] से धो दे मेरे हर गन्दगी
हो अ़ता पाकीज़ा अब तो ज़िन्दगी

नफ़्स का या रब मेरे कर तज़्किया[33]
कर अ़ता मुझको हयाते तय्यिबा[34]

मेट दिल से हुब्बे दुनिया-ए-दनी[35]
जड़ है बस सारे गुनाहों की यही

चन्द रोज़ा बाग़े दुनिया की बहार
दे न धोखा मुझको ऐ परवर्दिगार!

मैं रहूँ जोयाने ऐशे जाविदाँ[36]
हो नज़र मेरी सू-ए-बाग़े जनाँ[37]

दीन पर तरजीह दुनिया को न दूँ
हिर्स व शहवत से न मैं मग़लूब हूँ

रोक लायानी[38] से अब मेरी ज़बाँ
ज़िक्र में तेरे रहूँ रतबुल-लिसाँ[39]

छोड़ दूँ अब मैं सुख़न-आराईयाँ[40]
अब करूँ दिल की चमन-आराईयाँ

28. ग़ैरों 29. अंधेरे में डूबे दिल, 30 ज़लील 31. नापाक 32. दिल 33. सफ़ाई 34. पाकीज़ा ज़िन्दगी। 35. ज़लील दुनिया की मुहब्बत 36. हमेशा की ऐश का तलबगार 37. जन्नत की तरफ़ 38. बेकार व बेफ़ायदा 39. यानी ज़बान को तर रखूँ 40. बातें बनाना।

दे मुझे बारे अमानत की सहार
कर मुझे तू राज़दाँ व राज़दार

अब तो या रब आख़िरत की फ़िक्र हो
दिल में तेरी याद लब पर ज़िक्र हो

कर इलाही मुझको ख़ुश औक़ात अब
बख़्श पाबन्दी-ए-मामूलात अब

क़ल्ब से उजूब[41] व रिया को दूर कर
हो न ख़ुद पर, और न ग़ैरों पर नज़र

कुछ न सूझे तेरी हस्ती के सिवा
तेरे औज[42] और अपनी पस्ती के सिवा

तुझसे दम भर भी मुझे ग़फ़लत न हो
तेरे ज़िक्र व फ़िक्र से फ़ुर्सत न हो

अब न नाजिन्सों से मैं यारी करूँ
तेरे पास आने की तैयारी करूँ

मिलना जुलना ख़ल्क़[43] से हो कम मेरा
तू ही मूनिस तू ही हो हमदम मेरा

मुत्मईन हो क़ल्ब तेरे ज़िक्र से
दूर हों सब फ़िक्र तेरे फ़िक्र से

तुझसे हो ऐसी क़वी निस्बत मुझे
मानि-ए-ख़ल्वत[44] न हो जल्वत मुझे

उम्र गुज़रे अब मेरी ताआ़त[45] में
रख मुझे मशग़ूल मरज़ियात में

रह गये हैं ज़िन्दगी के दिन भी कम
अब तो हो जाये मेरे ऊपर करम

उम्र का अक्सर हुआ हिस्सा तो तय
हाय ग़फ़लत में रहूँगा ता ब-कै[46]

उम्र सी अनमोल शै की रायगाँ[47]
इससे बढ़कर और क्या होगा ज़ियाँ[48]

41. बड़ाई तकब्बुर 42. बुलन्दी तरक़्क़ी 43. मख़्लूक़ 44. तन्हाई की रुकावट 45. नेकी और अच्छे आमाल 46. कब तक 47. बरबाद और ज़ाया 48. नुक़सान।

है मगर तू भी तो वह्हाब व करीम
कर दे इस नुक़सान को भी नफ़ा-ए-अज़ीम

अब भी हो जाये जो मुझ पर फ़ज़्ले शह
होके तायब हूँ "क-मन् ला ज़म्-ब-लह्"[49]

क्यों हिरासाँ[50] हूँ बड़ा क़ादिर है तू
ज़ाँकि खुद फ़रमूदा ई 'ला तक़्नतू'[51]

ग़र्क़ बहरे मासियत[52] हूँ सर बसर
रहम कर मुझ पर इलाही रहम कर

उम्र जितनी रह गयी है मेरी अब
ज़िक्र व ताअ़त में बसर हो रोज़ व शब[53]

अब बसर हो ज़िन्दगी ताआ़त की
हो तलाफ़ी मा बक़ी मा फ़ात की[54]

हिम्मते तर्के मआ़सी[55] कर अ़ता
बख़्श दे सारे मेरे जुर्म व ख़ता

अब तो ऐसी दे मुझे तौफ़ीक़ तू
तेरे पास आऊँ मैं होकर सुर्ख़-रू

दिल में तेरी याद लब पर नाम हो
उम्र भर अब तो यही बस काम हो

कर दिये तूने वली बन्दे हज़ार
मुझको भी अपना बना ले कर्दगार

मुझ गदा[56] को भी बहक़्क़े शाहे दीं[57]
बख़्श या रब दौलते सिद्क़ व यक़ीं[58]

डिग न जायें फिर कहीं मेरे क़दम
हो करम हाँ हो करम हाँ हो करम

सुन मेरे मौला मेरी फ़रियाद को
आ मेरे मालिक मेरी इमदाद को

---

49. यानी तौबा कर के मैं एसा हो जाऊँ जैसे कोई गुनाह किया ही न हो 50. परेशान 51. क्योंकि आपने खुद फ़रमाया है कि ना-उम्मीद मत हो 52. रात-दिन 53 गुनाहों के समन्दर 54. यानी जो ज़िन्दगी बाक़ी है वह गुज़री हुई की तलाफ़ी कर दे 55. गुनाहों को छोड़ने की हिम्मत 56. फ़क़ीर व मोहताज 57. नबी-ए-करीम के तुफ़ैल में 58. सच्चाई और यक़ीन की दौलत।

हूँ तो मैं मज्ज़ूब लेकिन नाम का
कर मुझे मज्ज़ूब या रब काम का

रात दिन हूँ नशा-ए-ग़फ़लत में चूर
शग़ल है लह्व व लइब फ़िस्क़ व फ़ुजूर[59]

दीनदारों की सी है सूरत मेरी
कर दे या रब वैसी ही सीरत मेरी

दीनदारी में रहूँ मैं उम्र भर
दीनदारों ही में मेरा हश्र कर

तुझ पे रोशन हैं मेरे सारे उयूब
जानता है तू मेरी हालत को ख़ूब

गो तेरे आगे ज़लील व ख़्वार हूँ
हश्र में रुस्वा न ऐ सत्तार हूँ

तेरे आगे ख़्वार हूँ मैं सर-बसर
ग़ैर के आगे मुझे रुस्वा न कर

ऐ ख़ुदा मुझको पिला वह्दत का जाम
मस्त और सरशार रख अपना मुदाम

याद में रख अपनी, मुस्तग़रक़[60] मुझे
हो न होशे मा सिवा मुत्लक़ मुझे

दिल मेरा हो जाये एक मैदाने हू
तू ही तू हो, तू ही तू हो, तू ही तू

और मेरे तन में बजाय आब व गिल[61]
दर्दे दिल हो, दर्दे दिल हो, दर्दे दिल

आख़िरी अर्ज़े गदा है शाह से
ता दमे आख़िर न भटकूँ राह से

सबसे बढ़कर है यह अर्ज़े मुख़्तसर
ख़ात्मा कर दे मेरा ईमान पर

मर्तबों की तो कहाँ है हैसियत
मग़फ़िरत हो, मग़फ़िरत हो, मग़फ़िरत

यह मुनाजात ऐ ख़ुदा मक़बूल हो
दरगुज़र फ़रमा अगर कुछ भूल हो

तम्मत बिलख़ैर

---

59. यानी बुराईयां और गुनाह 60. डूबा हुआ 61. पानी और मिट्टी।

मआख़िज़

इस किताब की तैयारी में निम्न लिखित किताबों और रिसालों से मदद ली गयी है।

1. क़ुरआने करीम (अल्लाह का कलाम)
2. सही बुख़ारी शरीफ़ (इमाम बुख़ारी रह.)
3. सही मुस्लिम शरीफ़ (इमाम मुस्लिम रह.)
4. तिर्मिज़ी शरीफ़ (इमाम तिर्मिज़ी रह.)
5. अबू दाऊद शरीफ़ (इमाम अबू दाऊद सजिस्तानी रह.)
6. फ़तहुल-मुल्हिम शरह सही मुस्लिम शरीफ़ (अ़ल्लामा शब्बीर अहमद उस्मानी रह.)
7. मिश्कात शरीफ़ (शैख़ वलीयुद्दीन मुहम्मद अल-ख़तीब रह.)
8. मिरक़ात शरह मिश्कात (शैख़ मुल्ला अ़ली क़ारी रह.)
9. हिदाया मय इनाया व फ़तहुल-क़दीर (अ़ल्लामा मरग़ीनानी रह.)
10. अलबहरुर्राइक़ (अ़ल्लामा इब्ने नजीम रह.)
11. दुर्रे मुख़्तार व शामी (अ़ल्लामा इब्ने आ़बिदीन शामी रह.)
12. शरह उक़ूदे रस्मुल-मुफ़्ती (अल्लामा इब्ने आ़बिदीन शामी रह.)
13. फ़तहुल-क़दीर (अ़ल्लामा इब्नुल-हुमाम रह.)
14. ज़ादुल-मआ़द (अ़ल्लामा इब्ने क़य्यिम जोज़ी रह.)
15. सिराजी (शैख़ सिराजुद्दीन मुहम्मद बिन अ़ब्दुर्रशीद सजावन्दी रह.)
16. शरीफ़िया शरह सिराजी (मुहक़्क़िक़ सैयद शरीफ़ जुरजानी रह.)
17. मराक़ियुल-फ़लाह शरह नूरुल-ईज़ाह (शैख़ अ़ली शरबुलाली रह.)
18. हाशिया तहतावी अ़ला मराक़ियिल-फ़लाहि (अ़ल्लामा अहमद तहतावी रह.)
19. बदाईउस्सनाए (अ़ल्लामा कासानी रह.)
20. मदारिजुन्नुबुव्वत (हज़रत शैख़ अ़ब्दुल-हक़ मुहद्दिस देहलवी रह.)
21. नूरुस्सुदूर फी शरहिल-क़ुबूर (अ़ल्लमा जलालुद्दीन सुयूती रह. की मशहूर किताब शरहुस्सुदूर का तर्जुमा। हज़रत मौलाना मुहम्मद ईसा साहिब रह.)

22. उस्वा-ए-रसूले अकरम (इस किताब के लेखक)
23. शौक़े वतन (हज़रत मौलाना अशरफ़ अ़ली थानवी रह.)
24. बहिश्ती ज़ेवर (हज़रत मौलाना अशरफ़ अ़ली थानवी रह.)
25. बहिश्ती गौहर व बहिश्ती जौहर (हज़रत मौलाना अशरफ़ अ़ली थानवी रह.)
26. इस्लाहुर्रुसूम (हज़रत मौलाना अशरफ़ अ़ली थानवी रह.)
27. इमदादुल-फ़तावा मुकम्मल (हज़रत मौलाना अशरफ़ अ़ली थानवी रह.)
28. इस्लामे हक़ीक़ी (तक़रीर) (हज़रत मौलाना अशरफ़ अ़ली थानवी रह.)
29. इस्लाहे इन्क़िलाबे उम्मत (हज़रत मौलाना अशरफ़ अ़ली थानवी रह.)
30. दलीलु-ख़ैरात फ़ी तर्किल-मुन्करात (हज़रत मौलाना अशरफ़ अ़ली थानवी रह.)
31. किफ़ायतुल-मुफ़्ती (हज़रत मुफ़्ती किफ़ायतुल्लाह देहलवी रह.)
32. फ़तावा दारुल-उलूम देवबन्द (हज़रत मुफ़्ती अ़ज़ीज़ुर्रहमान साहिब रह.)
33. अ़ज़ीज़ुल-फ़तावा (हज़रत मुफ़्ती अ़ज़ीज़ुर्रहमान साहिब रह.)
34. मुसाफ़िरे आख़िरत (हज़रत मौलाना सैयद मियाँ असग़र हुसैन साहिब मुहद्दिस देवबन्द)
35. मुफ़ीदुल-वारिसीन (हज़रत मौलाना सैयद मियाँ असग़र हुसैन साहिब मुहद्दिस देवबन्द)
36. इमदादुल-अहकाम (हज़रत मौलाना ज़फ़र अहमद उस्मानी रह.)
37. अहसनुल-फ़तावा (मौलाना मुफ़्ती रशीद अहमद साहिब)
38. उलेमा का मुत्तफ़िक़ा फ़ैसला (पाकिस्तान के पन्द्रह उलेमा का फ़तवा)
39. इमदादुल-मुफ़्तीन (मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह.)
40. जवाहिरुल-फ़िक़ा (मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह.)
41. रिसाला हीला-ए-इस्क़ात (मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह.)
42. तस्वीर के शरई अहकाम (मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह.)
43. रिसाला-ए-शबे बराअत (मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह.)
44. औज़ाने शरईया (मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह.)
45. सुन्नत व बिद्अ़त (मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह.)